# शिवमूर्ति का साहित्य : विवेचन एवं विश्लेषण

**पीएच.डी.(हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध**

**शणै गोंयबाब भाषा एवं साहित्य महाशाला**

**हिंदी अध्ययन शाखा**

**गोवा विश्वविद्यालय**

**के द्वारा**

**शोधार्थी**

**अमिता मांद्रेकर**

**गोवा विश्वविद्यालय**

**गोवा**

**सितंबर-2023**

# Declaration

I, Amita Mandrekar hereby declare that this thesis represents work which has been carried out by me and that it has not been submitted, either in part or full, to any other University or Institution for the award of any research degree.

Amita Mandrekar
Research Student
Shenoi Goembab School of Languages &Literature
Goa University
Taleigaon Plateau - Goa

Date-01-09-2023

# Certificate

We hereby certify that the work was carried out under our supervision and may be placed for evaluation.

**Research Guide**

**Dr. Omprakash Tripathi**
**Former H.O.D.**
**Department of Hindi**
**Parvatibai Chowgule College**
**Margao – Goa**

**Co-Guide**
**Prof. Vrushali Mandrekar**
**Vice Dean (Academic)**
**Shenoi Goembab School of Languages &Literature**
**Goa University**
**Taleigao Plateau - Goa**

## प्राक्कथन

भारतीय ग्रामीण समाज में सवर्णों ने हमेशा से धर्म, राजनीति, शिक्षा, साहित्य और संस्कृति पर अपना वर्चस्व कायम रखा, ताकि वे निम्न तबके के दलित समाज का शारीरिक एवं मानसिक शोषण कर सकें। इस शोषण के खिलाफ प्रेमचंद पहले हिंदी कथाकार हैं, जिन्होंने हिंदी कहानी को उसकी सतही मनोरंजकता, कल्पना प्रधानता, रहस्यात्मकता और उसमें निहित कृत्रिमता को हटाकर उसे व्यापक भारतीय जनता की समस्याओं से जोड़ दिया।

वर्तमान समय में शिक्षा के प्रसार से दलित समाज में जागरूकता आयी है। वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हुए हैं। डॉ. बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर द्वारा रचित संविधान ने शिक्षा के द्वार सभी के लिए खोल दिए हैं। शिक्षा के कारण दलितों में आई जागरूकता ने आज के दलित समाज को काफी सक्षम बनाया है, लेकिन इसका दुखद पक्ष यह है कि यह जागरूकता अभी भी पूरी तरह से ग्रामीण समाज में नहीं पहुँच पाई है। आज भी वहाँ सांप्रदायिकता, किसान की त्रासदी, ग्राम पंचायतों की अकर्मण्यता, दलित स्त्री की त्रासदी आदि को देखा जा सकता है। इन सभी का चित्रण आज के कथाकारों ने अपने साहित्य में बखूबी किया है। इन्हीं में एक चर्चित और प्रतिपक्ष की भूमिका निभाने वाले कथाकारों में शिवमूर्ति का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। वास्तव में शिवमूर्ति ग्रामीण जीवन के सशक्त कथाकार हैं। शिवमूर्ति ने जिस ग्रामीण जीवन की समस्याओं का चित्रण किया है, वह मूलतः अस्सी के दशक के बाद का चित्रण है। जिस तरह हम प्रेमचंद के कथा साहित्य में भारत की आज़ादी के पहले का भारतीय समाज देखते हैं, फणीश्वर नाथ रेणु के कथा साहित्य में आज़ादी के बाद का, उसी तरह शिवमूर्ति के कथा साहित्य

में हम अस्सी के दशक के बाद का भारतीय समाज देख सकते हैं। आज भी ग्रामीण समाज उसी रूप में है, जिस रूप में हमने प्रेमचंद एवं रेणु के कथा साहित्य में देखा था। अंतर आया है तो सिर्फ इतना कि गाँवों के दलितों में भी थोड़ी जागरूकता आयी है, लेकिन उनका शोषण अभी भी बदस्तूर हो रहा है।

प्रेमचंद की कहानियों को पढ़ने में हमेशा से मेरी रुचि रही है। इसी क्रम में मैंने फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ भी पढ़ीं। प्रेमचंद और रेणु की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले कथाकारों में शिवमूर्ति का नाम अग्रगण्य है। प्रेमचंद, रेणु और शिवमूर्ति ये तीनों कथाकार गाँव की जमीन से जुड़े हुए कथाकार हैं। इसी दौरान मुझे शिवमूर्ति की कहानी 'तिरिया चरित्तर' भी पढ़ने को मिली, जिसने प्रेमचंद एवं रेणु की कहानियों की याद दिलाते हुए मुझे काफी प्रभावित किया। जिस तरह से शिवमूर्ति ने कहानी में दलित स्त्री 'विमली' के संघर्ष और उसकी त्रासदी को दिखाया है, उससे मुझे लगा कि जिस दौर में स्त्री विमर्श की चर्चा बहुत ज़ोरों से हो रही है, ऐसे में एक पुरुष दलित स्त्री की व्यथा-कथा को इतनी मार्मिकता के साथ लिख रहा है कि वह दिल को झकझोर कर रख दे, और तब शोध का विषय बना - **'शिवमूर्ति का साहित्य : विवेचन एवं विश्लेषण'।** यह शोध प्रबंध कुल पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

शोध प्रबंध का प्रथम अध्याय है -**'शिवमूर्ति का व्यक्तित्व एवं रचना संसार'।** शिवमूर्ति की रचनाओं की गहनता को समझने के लिए उनके पूरे व्यक्तित्व को समझना अति आवश्यक था। अतः उनके व्यक्तित्व और रचना-संसार को जानने के लिए इस अध्याय को मैंने कुल पाँच भागों में विभाजित किया है। अध्याय का पहला भाग 'शिवमूर्ति का व्यक्ति परिचय' नामक शीर्षक से संबंधित है, जिसमें मैंने उनके

बचपन से लेकर अब तक के संघर्षमय जीवन को प्रस्तुत किया है। उनका बचपन, उनकी शिक्षा के साथ-साथ उनके द्वारा जुटाए जाने वाले आजीविका के सभी पहलू, विवाह एवं दाम्पत्य जीवन से जुड़ा उनका संघर्ष, उनकी अभिरुचियाँ, यात्राएँ, उनकी उपलब्धियाँ एवं उनकी प्रेरणा के स्रोत आदि को काफी विस्तार दिया गया है।

अध्याय के दूसरे भाग का शीर्षक है - 'शिवमूर्ति का स्वभाव'। इसमें शिवमूर्ति के स्वभाव का वैशिष्ट्य, अपने साथियों, सहपाठियों, परिवार जनों एवं शोधार्थियों के प्रति उनकी स्नेह भावना आदि का चित्रण किया गया है। अध्ययन के दौरान पाया गया कि आस्तिक पिता से नास्तिक माँ का प्रभाव उन पर अधिक पड़ा है। यही कारण है कि वे कभी किसी धार्मिक कर्म-कांड के चक्कर में नहीं पड़े। उन्होंने हमेशा जाति, धर्म एवं संप्रदाय से ऊपर उठकर मानवता को ही श्रेष्ठ समझा और माना। उनका यही स्वभाव और दृष्टिकोण उनके लेखन के क्षेत्र में सहायक सिद्ध हुआ।

अध्याय के तीसरे भाग में शिवमूर्ति के 'व्यक्तित्व निर्माण एवं लेखन की शुरुवात' की चर्चा की गई है। स्वनिर्मित शिवमूर्ति के जीवन से जुड़े अनेक संदर्भ, उनके जीवनानुभवों से बनी उनकी अवधारणाएँ एवं मान्यताएँ, प्रशासनिक नौकरी में रहते हुए भी स्वभाव में सादगी और सौम्यता आदि को बताते हुए यह रेखांकित किया गया है कि ये ही वे प्रमुख बिन्दु हैं, जिनके कारण वे लेखन के क्षेत्र में प्रवृत्त हुए।

अध्याय के चौथे भाग में 'शिवमूर्ति का रचना संसार' के अंतर्गत उनके सम्पूर्ण साहित्य का संक्षिप्त परिचय दिया गया है, जिसमें उनके कहानी संग्रह, उपन्यास, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, उनके साहित्य का नाट्य एवं सिने-रूपांतरण आदि

सभी शामिल हैं। अध्याय के अंतिम पाँचवें भाग में शिवमूर्ति को दिये जाने वाले सम्मान एवं पुरस्कार की चर्चा करते हुए निष्कर्ष रूप में बताया गया है कि शिवमूर्ति आठवें दशक के बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी रचनाकार हैं। उन्होंने जिस जीवन को जिया, उसको उसी रूप में कलमबद्ध  किया। उनका पूरा साहित्य यथार्थ की भूमि पर लिखा गया है। इसी कारण वे पाठकों के बीच लोकप्रिय हैं। उनका कृतित्व उनके व्यक्तित्व की भाँति ही गंभीर है। वे बहुत ही सक्षम और समर्थ लेखक हैं।

शोध प्रबंध के द्वितीय अध्याय '**शिवमूर्ति की कहानियाँ : संवेदना एवं दृष्टि**' पर विचार करते हुए साठोत्तरी हिंदी कहानी की पृष्ठभूमि को शोध परक दृष्टि से समझाया गया है। तत्पश्चात् शिवमूर्ति के दो कहानी संग्रह -**'केशर-कस्तूरी'** और **'कुच्ची का कानून'** की कुल दस कहानियों को केंद्र में रखकर उनकी संवेदना और संवेदना से उपजी उनकी दृष्टि को वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और युवा वर्ग, पुरानी व नयी पीढ़ी-संघर्ष, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, टूटता दाम्पत्य जीवन, अवैध यौन संबंध, मानवीय मूल्यों का ह्रास, समाज में व्याप्त कुरीतियों का दुष्परिणाम, प्रशासन एवं न्यायतंत्र की संवेदनहीनता, राजनीतिक संदर्भ और नारी का संत्रास, पंचायती चुनाव एवं न्याय व्यवस्था में आई गिरावट, दलित संवेदना आदि उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है।

पहले उपशीर्षक 'वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और युवा वर्ग' के अंतर्गत **'भरतनाट्यम्', 'कसाईबाड़ा', 'बनाना रिपब्लिक'** आदि कहानियों को केंद्र में रखकर शिक्षकों की मानसिकता, शिक्षित बेरोजगार की छटपटाहट, शिक्षा का व्यवसायीकरण और मूल्यहीनता पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसमें प्रमुखतः वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और युवा वर्ग की छटपटाहट को केंद्र में रखकर विचार किया गया है। दूसरे

उपशीर्षक 'पुरानी व नयी पीढ़ी - संघर्ष में वर्तमान समय में पावन एवं आदरणीय रिश्तों को ठगने का सच और वृद्ध जीवन के यथार्थ को बड़ी बारीकी से चित्रित किया गया है। इस चित्रण में अनेक उदाहरणों के माध्यम से बताया गया है कि लेखक की पूरी संवेदना पुरानी पीढ़ी के साथ है।

तीसरे उपशीर्षक 'पितृसत्तात्मक व्यवस्था' से उत्पन्न लक्ष्यहीन भटकाव को रेखांकित करते हुए पुत्र प्राप्ति की मानसिकता और पुत्रियों के प्रति उपेक्षा भाव को **'भरतनाट्यम्'** और **'केशर कस्तूरी'** कहानियों के माध्यम से वर्तमान समय के साथ जोड़ा गया है और पुत्र-पुत्रियों के अंतर के कारण समाज में फैलने वाले अंधविश्वास एवं लक्ष्यहीन भटकाव को सामने रखा गया है। चौथे उपशीर्षक 'टूटता दाम्पत्य जीवन' में पति की महत्वाकांक्षा, पत्नी की इच्छा, पति-पत्नी धर्म की अवहेलना आदि को उनके कारणों सहित विवेचित-विश्लेषित किया गया है। पाँचवें उपशीर्षक 'अवैध यौन संबंध' पर विचार करते हुए शिवमूर्ति की कहानियों में यह देखा गया है कि यहाँ अवैध यौन संबंध कहीं मजबूरी में किया गया है, तो कहीं स्वेच्छा से भी। कहीं धोखे से, तो कहीं पद पाने के लालच में। वर्तमान समय में अवैध और वैध संबंध के क्या मायने हैं, इसे शोध-परक दृष्टि से जाना और परखा गया है। छठे उपशीर्षक 'मानवीय मूल्यों का ह्रास' में यह बताया गया है कि आज के समय में मानवीय मूल्यों का ह्रास किस सीमा तक हो चुका है। इस ह्रास को नौकरशाह की मानसिकता तथा ओढा हुआ शहरी चोला के माध्यम से समझाया गया है।

इसी क्रम के अंतर्गत सातवें उपशीर्षक 'समाज में व्याप्त कुरीतियों का दुष्परिणाम में समाज को, विशेषकर ग्रामीण समाज को ये कुरीतियाँ किस प्रकार कमजोर कर रहीं हैं, इसे स्पष्ट किया गया है। आठवें उपशीर्षक 'प्रशासन एवं न्यायतंत्र की

संवेदनहीनता' में बताया गया है कि आज हमारी प्रशासन और न्याय व्यवस्था को किस तरह अनैतिकता, जातिवाद, सांप्रदायिकता, अकर्मण्यता एवं भ्रष्टाचार आदि ने पूरी तरह से हिलाकर रख दिया है। नौवें उपशीर्षक 'राजनीतिक संदर्भ और नारी का संत्रास के अंतर्गत षड्यंत्र की राजनीति, नेताओं की स्वार्थपरता, सत्ता लोलुपता एवं चुनाव के समय में अपनाए गए हथकंडों का परदाफाश किया गया है। 'पंचायती राज में आई गिरावट' नामक दसवें उपशीर्षक में पंचों का बदला हुआ रूप और पंचायत में पुरुष वर्चस्व के यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही लेखक की कहानियों में उसकी दलित संवेदना का विवेचन-विश्लेषण करते हुए सारतः बतलाया गया है कि शिवमूर्ति की कहानियाँ आधुनिक जीवनबोध के व्यापक फ़लक को अपने भीतर लेकर चलती हैं और ये कहानियाँ मानव जीवन की जीवंत दास्तान हैं।

शोध प्रबंध का तृतीय अध्याय '**शिवमूर्ति के उपन्यासों का वस्तुगत यथार्थ**' में शिवमूर्ति के 'त्रिशूल', 'तर्पण', और 'आखिरी छलांग' उपन्यासों को केंद्र में रखकर उनका अनुसंधानात्मक दृष्टि से विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इस विवेचन-विश्लेषण के लिए इस अध्याय को 'सांप्रदायिकता', 'वर्णवादी व्यवस्था', 'दलित अस्मिता', 'किसान जीवन की समस्या', 'पशु एवं प्रकृति चित्रण' और 'समसामयिक अन्य स्थितियाँ' आदि उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है।

पहले उपशीर्षक 'सांप्रदायिकता' के अंतर्गत मंदिर-मस्जिद विवाद, रुग्ण धार्मिकता, अल्पसंख्यकों में अविश्वास एवं असुरक्षा की भावना, धर्म की राजनीति, वर्चस्ववादी हिंसक प्रवृत्ति, उदारीकरण के दौर की वस्तुस्थिति, अफवाहों का मनोविज्ञान आदि बिन्दुओं को केंद्र में रखकर सांप्रदायिकता के सच को उद्घाटित किया गया है। दूसरे उपशीर्षक 'वर्णवादी व्यवस्था' के अंतर्गत ब्राह्मणों का सोच,

समाज में सवर्णों का घटता प्रभाव एवं ऊँच-नीच की भावना को बड़ी तार्किकता के साथ दर्शाया गया है। तीसरे उपशीर्षक 'दलित अस्मिता' पर विचार करते हुए दलित चेतना एवं वर्ग संघर्ष, दलित स्त्री की समस्या आदि मुद्दों को उठाकर दलित संघर्ष की वास्तविकता पर विचार किया गया है। चौथे उपशीर्षक 'किसान जीवन की समस्या' में महँगी शिक्षा, दहेज की समस्या, सरकारी कर्ज और उसकी वास्तविकता, भूमंडलीकरण के दौर में किसान आदि ज्वलंत मुद्दों को 'आखिरी छलांग' उपन्यास के माध्यम से चित्रित किया गया है और बताया गया है कि किसानों की समस्याओं को लेकर लड़ने वाली राजनीतिक पार्टियाँ और किसान यथार्थ रूप में एक नहीं हैं।

प्रस्तुत अध्याय के पाँचवें उपशीर्षक 'पशु एवं प्रकृति चित्रण' में पशुओं का स्वभाव, पशुओं का मनोविज्ञान एवं पेड़ों की सुरक्षा के प्रश्न पर लेखक के विचार को संवेदनात्मक दृष्टि से जाँचा-परखा गया है। 'समसामयिक अन्य स्थितियाँ' के अंतर्गत समाज में व्याप्त भ्रष्ट प्रशासन, पति-पत्नी संबंध, पूँजीवादी व्यवस्था, न्याय पालिका का सच आदि मुद्दों को गंभीरता के साथ उठाया गया है और इन मुद्दों के माध्यम से इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि ये सभी वे मुद्दे हैं, जो समाज के विकास में बाधक बने हुए हैं। यदि समाज में विकास की गति तेज़ करनी है तो इन मुद्दों पर विजय पानी होगी। इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि 'सांप्रदायिकता', 'वर्णवादी व्यवस्था', 'दलितों का प्रश्न', 'किसानों की समस्या', 'धर्म के नाम पर हिंसा' आदि इन सभी से मुक्त होना होगा। अपने उपन्यासों के माध्यम से लेखक ने इसी सच की ओर हमारा ध्यान खींचा है।

शोध प्रबंध के चतुर्थ अध्याय **'शिवमूर्ति का कथेतर साहित्य एवं नाट्य-सिने रूपांतरण'** में शिवमूर्ति के कथेतर साहित्य - उनके संस्मरण '**सृजन का रसायन'** और

यात्रा वृत्तांतों - **'जैक लंडन के देश में'** और **लू शुन के देश में'** को अध्ययन का आधार बनाया गया है। इसके साथ ही उनकी कहानियों पर आधारित नाट्य-सिने रूपांतरण पर भी विचार किया गया है। '**सृजन का रसायन'** संस्मरण में शिवमूर्ति के जीवन के संघर्षों को रेखांकित करते हुए उनके दोनों यात्रा वृत्तांतों - **'जैक लंडन के देश में'** और '**लू शुन के देश में'** को समीक्षात्मक दृष्टि से समझा-परखा गया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि शिवमूर्ति का **'सृजन का रसायन'** संस्मरण उनके जीवन एवं उनसे जुड़े हुए लोगों की पूरी कथा-गाथा है। साथ ही यह पुस्तक उनकी रचना प्रक्रिया को भी समझने में सहायक सिद्ध होती है। यात्रा वृत्तांत **'जैक लंडन के देश में'** में शिवमूर्ति अपने प्रिय लेखक जैक लंडन की समाधि पर जाने से अपने को नहीं रोक पाते। अपने दूसरे यात्रा वृत्तांत '**लू शुन के देश में'** में वे अपने चीन-यात्रा से संबंधित अनुभवों को पाठकों के साथ साझा करते हैं। यहाँ लेखक का मानना है कि अमेरिका और चीन में वहाँ के साहित्यकारों का बहुत ही आदर और सम्मान है। काश, उसके देश में भी ऐसा ही होता। नाट्य रूपान्तरण में शिवमूर्ति की कहानियों के आधार पर बने नाटक 'कसाईबाड़ा', 'तिरिया चरित्तर', आदि की चर्चा की गई है और सिने-रूपांतरण में उनकी कहानी 'तिरिया चरित्तर' पर आधारित फिल्म का विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इस तरह यह पूरा अध्याय शिवमूर्ति के संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, नाट्य-रूपांतरण और सिने-रूपांतरण को ध्यान में रखकर चार उपभागों में विभाजित किया गया है।

शोध प्रबंध का पंचम् अध्याय '**शिवमूर्ति का साहित्य : भाषिक एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य'** में शिवमूर्ति के साहित्य में प्रयुक्त भाषा के विभिन्न रूपों एवं उनके शिल्पगत वैशिष्ट्य का विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इस अध्याय को चार

उपशीर्षक - ‘भाषा पक्ष’, ‘शैली पक्ष’, ‘कथेतर साहित्य में भाषा का प्रयोग’, ‘नाट्य - सिने रूपांतरण’ में भाषा का प्रयोग’ में विभाजित कर भाषा एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य का शोधपरक दृष्टि से अध्ययन किया गया है। पहले उपशीर्षक ‘भाषा पक्ष’ के अंतर्गत शिवमूर्ति के साहित्य में प्रयुक्त शब्द प्रयोग, पात्रानुकूल भाषा, वाक्य विन्यास, बिम्ब योजना, प्रतीक विधान, मुहावरे, कहावतें, अफवाहें एवं लोकोक्तियाँ, गीत योजना एवं शीर्षक की सार्थकता आदि पर गहराई से विचार किया गया है। दूसरे उपशीर्षक ‘शैली पक्ष’ के अंतर्गत शिवमूर्ति के साहित्य में प्रयुक्त विभिन्न शैलियों का शोध परक दृष्टि से विचार किया गया है। वर्णनात्मक शैली के प्रयोग से जहाँ उनके साहित्य में दृश्य, घटनाएँ एवं परिवेश सचित्र एवं जीवंत हो उठे हैं, वहीं आत्मकथात्मक शैली में पात्र ‘मैं’ के माध्यम से लेखक अपने साथ-साथ अन्य पात्रों के बाह्य एवं आंतरिक मन की स्थितियों एवं समस्याओं से गुजरता है।

लेखक कहीं-कहीं शैली पक्ष के अंतर्गत मानव जीवन की विडंबनाओं की वास्तविक व्यंजना के लिए व्यंग्यात्मक शैली के माध्यम से व्यक्ति और समाज में व्याप्त विद्रूपताओं एवं कमजोरियों को भी उजागर करने का प्रयास करता है। इसी तरह संवाद शैली, नाटकीय शैली, चित्रात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, मिथक एवं विचारपरक शैलियों के माध्यम से लेखक ने पात्रों की व्यक्तिगत संवेदना, उनके क्रिया-कलाप, पात्रों की काम वासना, उनकी हीन भावना, अतीत की यादों से उपजा उनका मोह आदि को बारीकी के साथ उभारा है। तीसरे उपशीर्षक ‘कथेतर साहित्य में भाषा का प्रयोग’ में यह पाया गया है कि शिवमूर्ति के संस्मरण में जहाँ कुछ गँवई भाषा का प्रयोग किया गया है, वहीं यात्रा वृत्तांतों में शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग मिलता है। चौथे उपशीर्षक ‘नाट्य-सिने रूपांतरण’ में कहानी से नाट्य-सिने रूपांतरण

करते समय भाषा में कहीं-कहीं, बहुत अधिक नहीं, नाटकीयता एवं सिनेमाई अंदाज़ आ गया है, लेकिन सच तो यह है कि शिवमूर्ति की कहानियाँ अपनी शैली और विन्यास में लगभग तीन-चौथाई भाग पटकथा ही हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शिवमूर्ति की भाषा में सर्वत्र अवध क्षेत्र की मिट्टी की गूँज एवं गंध महसूस की जाती है। उनका शिल्प लाजवाब है।

शोध प्रबंध के अंत में 'उपसंहार' के अंतर्गत बताया गया है कि शिवमूर्ति का रचना काल काफी दीर्घ रहा है। सन् 1968 में प्रकाशित उनकी पहली कहानी **'पानफूल'** से लेकर आज तक वे रचनारत हैं। कम लिखकर अधिक चर्चा में रहने वाले शिवमूर्ति अपने समय के महत्वपूर्ण कथाकार हैं। उनकी यही विशेषता उन्हें अन्य से विशिष्ट बनाती है। उपसंहार के अंतर्गत यह भी बताया गया है कि शिवमूर्ति का रचना संसार - कहानी, उपन्यास, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत आदि साहित्य की विविध विधाओं में फैला हुआ है। उनका साहित्य किसी वाद या विशेष विमर्श में बँधा न होकर स्वतंत्र रूप से वंचितों के हक में खड़ा होता है। साहित्य जगत में शिवमूर्ति का अवदान यह है कि वे प्रेमचंद और रेणु की परंपरा को आगे बढ़ाते हैं और यह वह परंपरा है, जिसमें गाँव की उपेक्षित, शोषित एवं अशिक्षित स्त्रियाँ बड़ी मजबूती के साथ अपने संघर्ष में खड़ी दिखाई देती हैं। शिवमूर्ति के रचना संसार को समझने में मेरा यह शोध कार्य '**शिवमूर्ति का साहित्य : विवेचन एवं विश्लेषण'** आने वाली पीढ़ी के लिए किंचित भी सहायक सिद्ध हुआ, तो मैं अपना यह प्रयास सार्थक समझूँगी।

शोध का यह विषय कितनी नवीनता एवं मौलिकता लिए हुए है, इसकी परख एक सहृदय अध्येता ही कर सकता है। यद्यपि शिवमूर्ति का रचना संसार साहित्य

की विविध विधाओं में फैला हुआ है, अतः शोध प्रबंध की विशदता एवं व्यापकता को दृष्टि में रखते हुए शोध की सीमा में शिवमूर्ति की कहानियों पर बने धारावाहिक एवं वृत्तचित्र नहीं आ सके हैं। मैं अपना शोध प्रबंध उसकी सीमाओं और उपलब्धियों सहित प्रस्तुत करती हूँ।

मेरे शोध-निर्देशक श्रद्धेय गुरुवर डॉ. ओमप्रकाश त्रिपाठी जी के आत्मीय सहयोग एवं असीम स्नेह ने मुझे हमेशा बल दिया है। शोध निर्देशक के रूप में उन्होंने हर अध्याय का सूक्ष्म निरीक्षण और परीक्षण बड़ी निष्ठा के साथ किया है। मैं उनके सफल मार्गदर्शन एवं उत्साहवर्धन के लिए सदैव ऋणी रहूँगी।

मेरे शोध-प्रबंध की सह-निर्देशिका प्रो. वृषाली मांद्रेकर जी (विभागाध्यक्ष एवं उप अधिष्ठाता शेणै गोयंबाब भाषा एवं साहित्य महाशाला, गोवा विश्वविद्यालय) के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिनका समय-समय पर उचित मार्गदर्शन मेरे शोध कार्य को गति देने में सहायक सिद्ध हुआ। साथ ही मैं अपने शोध-कार्य की विषय-विशेषज्ञ प्रो. सोनिया सिरसाट जी (उपप्राचार्य (शैक्षिक), अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कला, विज्ञान एवं वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय, साखळी-गोवा) के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके द्वारा दिए गए सुझावों से मेरे शोध-कार्य को एक उचित दिशा मिली। मैं कला संकाय के पूर्व अधिष्ठाता प्रो. के. एस. भट एवं वर्तमान अधिष्ठाता प्रो. प्रकाश परयींकर के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करती हूँ, जिनका निरंतर सहयोग एवं मार्गदर्शन मुझे मिलता रहा।

गोवा विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष स्वर्गीय प्रो. रवीन्द्रनाथ मिश्र, सेवानिवृत्त प्रो.इशरत बी. खान, डॉ. विपिन तिवारी, श्रीमती श्वेता गोवेकर एवं अन्य सभी प्राध्यापकों के सहयोग के लिए मैं हृदय से धन्यवाद देती हूँ।

पार्वतीबाई चौगुले महाविद्यालय, मडगाँव के शोध केंद्र की सभी सुविधाओं से मैं लाभान्वित हुई हूँ। अतः मैं महाविद्यालय के प्राचार्य जी, पुस्तकालयाध्यक्षा एवं वहाँ के सभी कर्मचारियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

गोवा विश्वविद्यालय के पूर्व ग्रंथपाल डॉ. गोपा कुमार व्ही. जी, वर्तमान ग्रंथपाल डॉ. संदेश देसाई जी, सहायक ग्रंथपाल श्री नंदकुमार बांदेकर एवं डॉ. कार्लोस फर्नांडिस (सहायक प्रोफेसर, ग्रंथालय, गोवा विश्वविद्यालय) जी का मेरे शोधकार्य के दौरान विशेष सहयोग रहा। मैं उन सभी महानुभावों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

गोवा विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग की पूर्व लिपिक स्वर्गीया संजना म्हामल तथा वर्तमान लिपिक दीपाली आरोस्कर का मुझे हमेशा कार्यालयीन सहयोग मिलता रहा। उनके प्रति भी आभार।

मैं डॉ. आशा गहलोत, डॉ. अर्चना शर्मा, श्रीमती दीप्ति हलदोणकर तथा श्रीमती प्रिया गोसावी को धन्यवाद देना चाहूँगी, जिन्होंने मेरी शोध संबंधी छोटी-बड़ी समस्याओं का निकारण कर मुझे आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया।

मैं अपने सहकर्मी अंजली कामत, शलाका पेडणेकर, प्रवीण मोरजकर, एवं आलोक बर्वे के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मुझे हर तरह की तकनीकी मदद की। इस अवसर पर मैं नरेंद्र परब को विशेष रूप से

धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावजूद समय निकालकर मेरी मदद की।

मैं अपने पति श्री रमेश रामनाथ हुमरस्कर एवं दोनों पुत्रों - राज और आरव को हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ, जिनके सहयोग के बिना मेरा यह शोध कार्य पूर्ण न हो पाता। इसी क्रम में मैं अपनी देवरानी कुमुद हुमरस्कर और सहेली सुलक्षा नाईक के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुझे मुक्त किया और मेरी जिम्मेदारियों को स्वयं लेकर मेरे शोध कार्य को पूरा करने में भरपूर सहयोग किया।

अंत में मैं उन समस्त रचनाकारों, संपादकों एवं समीक्षकों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिनकी रचनाओं, पत्रिकाओं एवं आलेखों से मैं प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित हुई हूँ और अपने शोध प्रबंध को अंतिम रूप दे सकी हूँ। श्रद्धावनत्।

**दिनांक; 01/09/2023** **अमिता मांद्रेकर**

# शिवमूर्ति का साहित्य : विवेचन एवं विश्लेषण

## अनुक्रमाणिका


**प्रथम अध्याय: शिवमूर्ति का व्यक्तित्व एवं रचना संसार 1-54**

**प्रस्तावना**

**1.1 शिवमूर्ति का व्यक्ति परिचय**

1.1.1 जन्म ................................
1.1.2 बाल्यकाल ...............................
1.1.3 शिक्षा ..............................
1.1.4 आजीविका ..............................
1.1.5 विवाह एवं दाम्पत्य जीवन ............................
1.1.6 परिवार ...........................
1.1.7 अभिरुचियाँ ...........................
1.1.8 यात्राएँ ...........................
1.1.9 उपलब्धियाँ ..........................
1.1.10 प्रेरणा ...........................

**1.2 शिवमूर्ति का स्वभाव ............................**

**1.3 व्यक्तित्व निर्माण एवं लेखन की शुरुआत....................**

**1.4 शिवमूर्ति का रचना संसार .............................**

1.4.1 शिवमूर्ति का कहानी साहित्य .............................

1.4.2 शिवमूर्ति का उपन्यास साहित्य ............................

1.4.3 शिवमूर्ति का कथेतर साहित्य ...........................

1.4.4 शिवमूर्ति के साहित्य का सिने-रूपांतरण ......................

**1.5 शिवमूर्ति को सम्मान एवं पुरस्कार ..........................**

**निष्कर्ष**

**संदर्भ सूची**

**द्वितीय अध्याय: शिवमूर्ति की कहानियाँ: संवेदना एवं दृष्टि 55-138**

**प्रस्तावना**

**2.1 वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और युवा वर्ग ....................**

2.1.1 शिक्षकों की मानसिकता ....................

2.1.2 शिक्षित बेरोजगार की छटपटाहट ...................

2.1.3 शिक्षा का व्यवसायीकरण ...................

**2.2 पुरानी व नयी पीढ़ी-संघर्ष ...................**

2.2.1 रिश्तों को ठगने का सच ..................

2.2.2 वृद्ध जीवन ...................

**2.3 पितृसत्तात्मक व्यवस्था ...................**

2.3.1 पुत्र प्राप्ति की मानसिकता ...................

2.3.2 पुत्रियों के प्रति उपेक्षा भाव ....................

**2.4 टूटता दाम्पत्य जीवन ....................**

2.4.1 पति की महत्वाकांक्षा .....................

2.4.2 पत्नी की आकांक्षा ....................

2.4.3 पति-पत्नी धर्म की अवहेलना ....................

**2.5 अवैध यौन संबंध .....................**

2.5.1 ससुर व बहू संबंध ....................

2.5.2 जेठ व भयहू संबंध ....................

2.5.3 सरकारी कर्मचारी, ग्राम प्रधान और दलित स्त्री ..................

**2.6 मानवीय मूल्यों का ह्रास ...................**

2.6.1 नौकरशाह की मानसिकता ...................

2.6.2 ओढ़ा हुआ शहरी चोला ...................

**2.7 समाज में व्याप्त कुरीतियों का दुष्परिणाम ...................**

2.7.1 बाल विवाह ...................

2.7.2 विधवा जीवन ...................

2.7.3 अवैज्ञानिक सोच ...................

**2.8 प्रशासन एवं न्यायतंत्र की संवेदनहीनता ...................**

2.8.1 राहत के नाम पर अनैतिकता ...................

2.8.2 जाति व संप्रदायवादी मानसिकता ...................

2.8.3 अकर्मण्यता एवं भ्रष्टाचार ...............................

**2.9 राजनीतिक संदर्भ और नारी का संत्रास ..........................**

2.9.1 षड्यंत्र की राजनीति .............................

2.9.2 नेताओं की स्वार्थपरता ...............................

2.9.3 सत्ता लोलुपता ...............................

**2.10 पंचायती चुनाव एवं न्याय व्यवस्था में आई गिरावट ...............................**

2.10.1 पंचों का बदला हुआ रूप ...............................

2.10.2 पंचायत में पुरुष वर्चस्व ...............................

**2.11 दलित संवेदना** ..............................

2.11.1 दलित पुरुष ..............................

2.11.2 दलित स्त्री ..............................

**निष्कर्ष**

**संदर्भ सूची**

**तृतीय अध्याय: शिवमूर्ति के उपन्यासों का वस्तुगत यथार्थ 139-191**

**प्रस्तावना**

**3.1 सांप्रदायिकता** ......................................

3.1.1 मंदिर-मस्जिद विवाद ......................................

3.1.2 रुग्ण धार्मिकता ......................................

3.1.3 अविश्वास एवं असुरक्षा की भावना ......................................

3.1.4 धर्म एवं राजनीति ......................................

3.1.5 उदारीकरण के दौर का परिवेश ......................................

3.1.6 अफवाहों का मनोविज्ञान ......................................

**3.2 वर्णवादी व्यवस्था** ..........................................

3.2.1 ब्राहमणवादी सोच ..........................................

3.2.2 सवर्णों का घटता प्रभाव ..........................................

3.2.3 ऊंच-नीच की भावना ..........................................

**3.3 दलित अस्मिता** ..........................................

3.3.1 दलित चेतना एवं वर्ग संघर्ष ..........................................

3.3.2 पुरानी परंपरा एवं नयी चेतना का संघर्ष ..........................................

3.3.3 दलित स्त्री की समस्या ..........................................

**3.4 किसान जीवन की समस्या** ..........................................

3.4.1. महँगी शिक्षा ..........................................

3.4.2 दहेज की समस्या ..........................................

3.4.3 सरकारी कर्ज और उसकी वास्तविकता ..........................................

3.4.4 भूमंडलीकरण के दौर में किसान ..........................................

**3.5 पशु एवं प्रकृति चित्रण** ..........................................

3.5.1 पशुओं का स्वभाव ..........................................

3.5.2 पशुओं का मनोविज्ञान ..........................................

3.5.3 पेड़ों की सुरक्षा का प्रश्न ..........................................

**3.6 समसामयिक अन्य स्थितियाँ** ..........................................

3.6.1 भ्रष्ट प्रशासन ..........................................

3.6.2 पति-पत्नी संबंध ..........................................

3.6.3 पूंजीवादी व्यवस्था ..........................................

3.6.4 न्याय पालिका का सच ..........................................

**निष्कर्ष**

**संदर्भ सूची**

**चतुर्थ अध्याय: शिवमूर्ति का कथेतर साहित्य एवं नाट्य - सिने रूपांतरण**

**192-232**

**प्रस्तावना**

**4.1 शिवमूर्ति का संस्मरण साहित्य** ..................................

4.1.1 संस्मरण में वर्णित लेखक एवं उससे जुड़े लोगों का जीवन......................

4.1.2 संस्मरण में वर्णित लेखक की रचना प्रक्रिया ...................

**4.2 शिवमूर्ति का यात्रा साहित्य** ....................

4.2.1 'जैक लंडन के देश में" का विवेचन-विश्लेषण ....................

4.2.2 'लू शुन के देश में' का विवेचन-विश्लेषण ....................

**4.3 शिवमूर्ति के साहित्य का नाट्य रूपांतरण** ....................

4.3.1 कहानियों का नाट्य रूपांतरण ....................

**4.4 शिवमूर्ति के साहित्य का सिने रूपांतरण** ....................

4.4.1 कहानियों का सिने रूपांतरण ....................

**निष्कर्ष**

**संदर्भ सूची**

**पंचम् अध्याय: शिवमूर्ति का साहित्य : भाषिक एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य 233-277**

**प्रस्तावना**

**5.1 भाषा पक्ष** ..................

5.1.1 शब्द प्रयोग ..................

5.1.2 पात्रानुकूल भाषा ...................

5.1.3 वाक्य-विन्यास ...................

5.1.4 बिम्ब योजना ...................

5.1.5 प्रतीक विधान ...................

5.1.6 मुहावरे, कहावतें, अफवाहें एवं लोकोक्तियाँ ...................

5.1.7 गीत योजना ..................

5.1.8 शीर्षक की सार्थकता ..................

**5.2 शैली पक्ष ..................**

5.2.1 वर्णनात्मक शैली ..................

5.2.2 आत्मकथात्मक शैली ..................

5.2.3 संवाद शैली ..................

5.2.4 नाटकीय शैली ..................

5.2.5 चित्रात्मक शैली ..................

5.2.6 व्यंग्यात्मक शैली ..................

5.2.7 पूर्वदीप्ति शैली ..................

5.2.8 मिथक कथात्मक शैली ..................

5.2.9 विचारपरक शैली ..................

**5.3 कथेतर साहित्य में भाषा का प्रयोग ..................**

**5.4 नाट्य एवं सिने रूपान्तरण में भाषा का प्रयोग ..................**

निष्कर्ष

संदर्भ सूची

**उपसंहार 278-285**

**संदर्भ ग्रंथ-सूची 286-288**

1. **आधार ग्रंथ**
2. **सहायक ग्रंथ**
3. **शब्द-कोश**
4. **पत्र-पत्रिकाएँ**
5. **वेबसाईट्स**

# प्रथम अध्याय

# शिवमूर्ति का व्यक्तित्व एवं रचना संसार

## प्रस्तावना

किसी भी रचनाकार के व्यक्तित्व के निर्माण में उसके परिवार एवं समाज का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसी कारण भिन्न-भिन्न व्यक्ति एक ही प्रसंग को भिन्न-भिन्न कोणों से देखते हैं, या उस प्रसंग पर उनका व्यवहार अलग-अलग होता है। साहित्यकार भी एक व्यक्ति है और उसका सृजन जाने-अनजाने उसके व्यक्तित्व से गहरा संबंध रखता है। इसीलिए किसी भी साहित्यकार की कृतियों का अध्ययन करते हुए उसके व्यक्तित्व का अध्ययन भी महत्वपूर्ण हो जाता है। व्यक्तित्व में व्यक्ति का न केवल बाह्य रूप-रंग, पोशाक आदि शामिल हैं, बल्कि उसकी सम्पूर्ण प्रकृति, स्वभाव, रुचि-अरुचि, प्रमुख इच्छाएँ, उसके विचार, आदर्श एवं स्थायी भाव आदि सभी कुछ उसमें सम्मिलित हैं। जैसे-जैसे व्यक्ति के साथ हमारा परिचय बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म पहलू उद्घाटित होते जाते हैं और हम उसके आंतरिक व्यक्तित्व से परिचित होते हैं।

रचनाकार के आंतरिक व्यक्तित्व को जानने के लिए उसकी रचनाएँ महत्वपूर्ण साधन हैं। उसकी रचनाएँ उसके आंतरिक व्यक्तित्व का 'एक्स रे' होती हैं। व्यक्तित्व के परिचय की दृष्टि से अध्ययन का एक क्रम निश्चित किया जा सकता है, जिससे रचनाकार से संबंधित स्थूल तथा शिक्षा-दीक्षा, आरंभिक जीवन और सामाजिक परिवेश से परिचित होने में मदद होती है। रचनाकार की एकाध कृति पढ़ने के बाद अनजाने ही पाठक के मन में उस रचनाकार के प्रति अधिक

जानकारी प्राप्त करने की इच्छा प्रबल होती है कि लेखक का व्यक्तित्व कैसा होगा? उसकी रचनाओं में मात्र कल्पना है या यथार्थ भी? विवेच्य कथाकार शिवमूर्ति का व्यक्तित्व भी इसी सच की पुष्टि करता है।

## 1.1 शिवमूर्ति का व्यक्ति परिचय

**"सादा जीवन उच्च विचार"** में विश्वास रखने वाले कथाकार शिवमूर्ति एक अदभुत व्यक्तित्व के धनी रचनाकर हैं। वे हिन्दी साहित्य में अपने आज के समय के ऐसे रचनाकार हैं, जिनकी हर नयी रचना का पाठकों को हमेशा इंतज़ार रहता है। यह उनके लेखन की गुणवत्ता है। उनके यहाँ कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। जो है जैसा है, सबकुछ सामने है। आशय यह कि शिवमूर्ति के यहाँ यथार्थ के सिवा और कुछ नहीं है। शिवमूर्ति का अधिकांश जीवन बड़े महानगरों में नहीं, बल्कि उत्तर प्रदेश के छोटे गाँवों में बीता है। गाँव को उन्होंने अनुभव किया है। उन्होंने प्रेमचंद और रेणु की परंपरा को आगे बढ़ाया है। प्रेमचंद का गाँव आज़ादी के पहले का गाँव है और रेणु का गाँव स्वतंत्रता संघर्ष के साथ-साथ आज़ाद हुए भारत का भी गाँव है। शिवमूर्ति ने इसी बदलते समय के गाँव को देखा है। यह सत्तर-अस्सी के दशक का गाँव है, जिसमें टूटन है, बिखरन है और अपना अस्तित्व बचाए रखने की चुनौती भी है।

### 1.1.1 जन्म

हिन्दी के प्रख्यात कथाकार शिवमूर्ति का जन्म 11 मार्च सन् 1950 को कुरंग गाँव, जिला सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश में एक सीमांत किसान परिवार में हुआ। वर्तमान समय में यह गाँव छत्रपति शाहूजी महाराज नामक जिले में परिवर्तित हो गया है। शिवमूर्ति के जन्म के समय का किस्सा बड़ा मजेदार एवं रोचक है। शिवमूर्ति की माँ को जब कई साल तक कोई संतान नहीं हुई, तब उनकी दादी ने

हिन्दू धर्म में पवित्र मानी जाने वाली नदी गंगा जी से मनौती माँगी। यह उनके इस कथन से साफ स्पष्ट होता है - **"हे गंगा माई, हमें पोता दीजिए। उसे आपकी लहरों को अर्पित करूँगी। आप की अमानत, आप की भिक्षा के रुप में रहेगी मेरे पास।"**[1] शिवमूर्ति के गाँव कुरंग में यह मान्यता थी कि जिन परिवारों में पुत्र प्राप्ति नहीं होती, उन परिवारों की स्त्रियाँ गंगा जैसी पवित्र नदी से पुत्र प्राप्ति की याचना करतीं हैं और पुत्र प्राप्ति के पश्चात् उसे गंगा नदी को सौंपने निकल पड़तीं हैं। शिवमूर्ति की दादी को यही यकीन था कि उनका पोता गंगा जी की कृपा से पैदा हुआ है। मन्नत के अनुसार पैदा हुए पुत्र को गंगा माँ के हवाले करना था, जिसके लिए शिवमूर्ति की माँ बिलकुल राज़ी नहीं थी, क्योंकि गंगा को पुत्र सौंपने की एक अजीब सी प्रक्रिया थी। इस प्रक्रिया में मल्लाह नाव में माँ-बेटे को लेकर नदी के बीचोबीच जाता है, बच्चे को गंगा के पानी में रखता है और फिर तुरंत निकाल लेता है। इसके पश्चात् मल्लाह गंगा नदी के प्रतिनिधि के रूप में उस माँ से कुछ पैसे लेकर बच्चा माँ के हवाले कर देता है। इस तरह खरीदा हुआ बच्चा आधिकारिक रूप से अपनी माँ का हो जाता है, किन्तु बच्चे को पानी में डालने के बाद अगर मल्लाह उस बच्चे को पकड़ नहीं पाता और वह लहरों में समा जाता है तो बच्चे की माँ को यह कहकर दिलासा दिया जाता कि गंगा नदी अपने बच्चे को बेचना नहीं चाहती थीं, इसलिए बच्चे को अपने साथ बहा ले गयीं। ऐसे कई किस्से शिवमूर्ति की माँ ने भी सुन रखे थे। इसी डर के कारण वह हर बार अपनी सास की बात का विरोध करती रहीं। यह सुनकर उनकी सास उन्हें गंगा नदी के प्रकोप से डराती थीं, किन्तु वह अपनी बात पर ताजिंदगी अड़ी रहीं। शिवमूर्ति की दादी चाहती थीं कि उनके पोते को भी मन्नत के अनुसार गंगा नदी को सौंपा जाए, किन्तु शिवमूर्ति की माँ का यह मानना था कि **"गंगा माई खुद तो पचीस कोस चलकर यहाँ अपनी अमानत लेने के लिए**

**आने से रहीं। हम खुद बेटे को खतरे में डालने के लिए उनके पास क्यों जाएं?"**[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि शिवमूर्ति की माँ को किसी भी प्रकार के अंधविश्वास में कतई विश्वास नहीं था।

असल में शिवमूर्ति की माँ अपनी जिंदगी में कभी भी मंदिरों में सिर झुकाने नहीं गयी थीं। उन्होंने न तो कभी उपवास किया और न ही कभी कोई तीर्थ में गई। कह सकते हैं कि शिवमूर्ति की माँ नास्तिक थीं और अपनी ही बनाई हुई लीक पर जीवन भर चलती रहीं, जो धार्मिक आडंबरों से पूरी तरह मुक्त था। इस तरह का जीवन गाँव में रहकर जीना आसान नहीं होता है। गाँव में रहने वाला हर दूसरा-तीसरा व्यक्ति आस्तिक होता है और एक-दूसरे को हमेशा भगवान का डर दिखाता रहता है। गाँव के बूढ़े - बुजुर्ग अक्सर पुत्र प्राप्ति के लिए इस तरह की मनौतियाँ मानते हैं। गाँव के ही क्यों? शहर के  लोग भी जब दवा-दारू से संतान की प्राप्ति नहीं कर पाते, तो हारकर इस तरह की मनौतियों में विश्वास करने लगते हैं। वे ग्रामीण टोने-टोटके अपनाते हैं, लेकिन शिवमूर्ति की माँ इन सबसे अलग नये विचारों से परिपूर्ण थीं। माँ-बाप के विचारों का एवं संस्कारों का असर बच्चों पर पड़ता है। अतः शिवमूर्ति पर भी अपनी माँ का प्रभाव अवश्य पड़ा है।

### 1.1.2 बाल्यकाल

शिवमूर्ति का बाल्यकाल उनके 'कुरंग' गाँव में बीता। बचपन में वे बहुत ही नटखट थे। गाँव के अन्य लड़कों के साथ जंगलों में घूमना, नदी-तालाबों में डुबकियाँ लगाना, स्कूल से भागकर अपनी नानी के यहाँ चले जाना आदि नटखटी स्वभाव में शिवमूर्ति को महारत हासिल थी। कई बार तो वे नदी में डूबते-डूबते बचे हैं। इस संदर्भ में वे स्वयं कहते हैं - **"यद्यपि लगभग डूब जाने या पानी के**

**बहाव में बह जाने की घटनाएँ जीवन में कई बार घटीं पर नहर, तालाब, और नदी के रूप में जल स्रोतों से बचपन से इतना परिचय रहा कि पानी से डर नहीं लगता। अथाह-अगम जल स्रोत देख कर उसमें उतर पड़ने के लिए मन ललक उठता है।"**[3] शिवमूर्ति को महानगरों की चकाचौंध और वहाँ की सड़कों से तो डर लगता रहा, लेकिन अपने गाँव की अंधेरी-वीरान गलियों से वे कभी नहीं डरे। वहाँ उनका मन रमता था। शिवमूर्ति बताते हैं - **"इसी जंगल झाड़, महुवारी-अमराई के बीच से आना-जाना। इन्हीं के बीच खेलना। यह परिवेश बचपन का संघाती बन गया। परिचित और आत्मस्थ। आज भी मुझे अंधेरी रात के वीराने से डर नहीं लगता। डर लगता है महानगर की नियान लाइट की चकाचौंध वाली लंबी सुनसान सड़क पर चलने में।"**[4] इससे साफ पता चलता है कि शिवमूर्ति को शहर नहीं, गाँव प्रिय है। वे अपने गाँव-प्रेम के विषय में लिखते हैं - **"मेरी रचनाओं में गाँव-गरीब, खेत-खलिहान-बाग, गाय-बैल, वर्ग-संघर्ष, फ़ौजदारी और मुकदमेबाज़ी आते हैं तो यह केवल मेरी मरजी या मेरे चुनाव से नहीं होता। मेरे समय ने जिन अनुभवों को प्राथमिकता देकर मेरे अन्तःकरण में संजोया है, स्मृति के द्वार खुलते ही उन्हीं की भीड़ पन्नों पर निकलकर फैल जाती हैं।"**[5] शिवमूर्ति मानते हैं कि उनके लेखन में गाँव का चित्र बार-बार इसलिए आता है, क्योंकि उनके बचपन का गाँव उनके रोम-रोम में बसा हुआ है। यही कारण है कि गाँव उनके साहित्य का अहम् हिस्सा है।

शिवमूर्ति के पिताजी वर्ष 1927-28 के छठी कक्षा पास थे। यह उस समय के लिए बड़ी बात थी। वे काफ़ी साहसी, निडर और पहलवान किस्म के व्यक्ति थे। खेत के विवाद में गाँव के एक जमींदार से उन्हें लंबी मुकदमे बाजी करनी पड़ी, जिसके चलते उन्हें अपने घर से बाहर निकलकर छिपकर रहने के लिए मजबूर होना पड़ा। उस समय जमींदारी प्रथा थी। इसी रंजिश के कारण गाँव के

जमींदार ने शिवमूर्ति का अपहरण कराया था और उनकी हत्या भी करानी चाही थी, लेकिन संयोग से बड़े नाटकीय अंदाज़ में शिवमूर्ति वहाँ से भागने में सफल हो गए थे। हुआ यह कि जिस कोठरी में शिवमूर्ति को कैद करके रखा गया था, उस कोठरी में संयोगवश जमींदार की पत्नी राशन लेने आयीं। अपने हाथ और पैर के बंधन शिवमूर्ति ने पहले ही खोल रखे थे और वह दरवाजे के पीछे छिप गए थे। अंदर किसी के होने की खबर से अनजान जमींदार की पत्नी जब राशन लेने के लिए आगे बढ़ीं तो दरवाजे के पीछे छिपे शिवमूर्ति दबे पाँव भाग खड़े हुए और सीधे अपने घर पहुँच गए। जमींदार के उन मुश्टंडों की पकड़, वह बंधन और जिस कोठरी में उन्हें कैद करके गया रखा था, वह कोठरी आज भी उन्हें भली-भाँति याद है। यह विडंबना ही थी कि जिस जमींदार ने बचपन में शिवमूर्ति का अपहरण कराया था, वही जमींदार बाद में चलकर अपने नाती की नौकरी की सिफ़ारिश के लिए शिवमूर्ति के पास आया था। उस समय शिवमूर्ति ग्रामीण बिक्री कर विभाग में अधिकारी के पद पर नियुक्त थे।

शिवमूर्ति के मन-मस्तिष्क में बचपन की कई यादें आज भी तरो ताजा रहती हैं जो स्मृति के किवाड़ खुलते ही सामने आ जाती हैं। अपने घर के बचपन के बैल 'मकरा' को वे आज भी नहीं भूले हैं। यह दुखद पक्ष है कि जब शिवमूर्ति सातवीं कक्षा में पढ़ रहे थे, तभी उनके पिता घर-गृहस्थी छोड़कर साधु बन गए और घर-गृहस्थी का सारा बोझ अचानक शिवमूर्ति के नाजुक कंधों पर आ गया। कद-काठी में छोटे होने के कारण हल की मूठ उनके कंधे तक आती थी। उस समय वह 'मकरा' ही था, जिसने खेत जोतने में शिवमूर्ति की मदद की थी। शिवमूर्ति बताते हैं **"अभ्यास न होने के कारण पहली साल तो हराई फनाते समय हर का मुँह सीधा रखना ही कठिन था। ऐसे में मेरे 'मकरे' ने हलवाहे की भूमिका निभाई। वह खुद ही निर्णय लेता था कि कहाँ मुड़ना है और कहाँ सीधे चलना**

**है।"**[6] यहाँ कहना पड़ेगा कि यह शिवमूर्ति की ही दृष्टि है जो बैल को भी अपना मार्गदर्शक मानती है। शिवमूर्ति के पिताजी  अपने गृहत्याग के उपरांत गोरखपुर के एक बाबाजी के आश्रम में रहने लगे थे। वहीं पर उन्हें गाँजा पीने की लत लगी। शिवमूर्ति और उनकी माँ घर वापसी के लिए कई बार उन्हें बुलाने गए, पर वे नहीं आए। जब कभी वे अपनी मर्जी से घर आते, तब साधुओं की पूरी टोली साथ लेकर आते और घर में जो कुछ  होता, वह भी समाप्त करके जाते थे। जाने के बाद वे कर्ज का बोझ छोड़ जाते थे। गाँजा पीने की लत उन्हें इतनी तीव्र हो गयी थी कि जिस पिता ने अपने बेटे को पढ़ाई न करने पर सज़ा दी थी, बाद में उसी पिता ने पुत्र शिवमूर्ति से कहा कि **"पढ़ाई-लिखाई जाए भाड़ में, साले। मुझे अठन्नी रोज़ गांजे के लिए दो, नहीं तो खेती-बाड़ी बेच डालूँगा। तुम मांगोगे भीख।"**[7] यह था शिवमूर्ति का बचपन, मुश्किलों एवं संघर्षों से घिरा हुआ। इसी के चलते एक दिन शिवमूर्ति ने अपने पिता को जान से मारने की योजना भी बनाई, जो सफल नहीं हो सकी, क्योंकि उस रात वह अपने पिता से पहले ही सो गए। बचपन की अनेक मुसीबतों को झेलते हुए शिवमूर्ति आज अपने जीवन को एक उच्च मुकाम पर ले जाने में समर्थ हुए हैं।

### 1.1.3 शिक्षा

शिवमूर्ति की प्राथमिक से लेकर स्नातक तक की शिक्षा सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश में हुई। उन्होंने सन् 1966 में हाईस्कूल की परीक्षा उतीर्ण की और सन् 1968 में महात्मा गांधी इंटर कॉलेज, सुल्तानपुर से इंटरमीडिएट की परीक्षा। पहले वे बी.एससी. करने के लिए इलाहाबाद के सी. एम. पी. डिग्री कॉलेज में गए, किन्तु घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण दो महीने में ही सुल्तानपुर वापस आ गए और फिर सन् 1970 में सुल्तानपुर के महात्मा गांधी

डिग्री कॉलेज से बी. ए. की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् कुछ समय तक घर से दो किलोमीटर दूर आसल देव माध्यमिक विद्यालय, पिपरपुर में अध्यापन कार्य किया और फिर सन् 1972 में उसे छोड़कर रेलवे में वह तार बाबू की नौकरी करने लगे। सन् 1977 में उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग की पी. सी. एस. (पब्लिक सर्विस कमीशन) की परीक्षा उतीर्ण कर ग्रामीण बिक्री कर विभाग में अधिकारी बने।

कथाकार शिवमूर्ति को बचपन में पढ़ाई को लेकर कुछ खास दिलचस्पी नहीं थी, किन्तु पिताजी के सख्त रवैये और अनुशासन की वजह से वे बी. ए. तक की शिक्षा हासिल कर पाए। पिताजी हमेशा अपने बच्चों को पढ़ने के लिए कहा करते थे, ताकि वे पढ़-लिखकर इतने काबिल बन जाएँ कि किसी के आगे उन्हें कभी हाथ न फैलाना पड़े। फिर भी शिवमूर्ति की रुचि पढ़ाई की तरफ कुछ ज्यादा नहीं बढ़ी। गाँव के बच्चों के साथ स्कूल से भाग जाना, बस्ता किसी पेड़ पर छिपा देना और अपनी नानी के घर चले जाना इन्हीं सब मौज-मस्ती में उनका मन रमता था। नानी के घर जाकर अपने मामा के साथ वह जानवर चराने भी जाया करते थे। यह सब देखकर उनके पिताजी उन पर बहुत गुस्सा करते थे और उन्हें बहुत पीटते भी थे। हर गलती की सज़ा पहले से निश्चित होती थी। अगर वह स्कूल के रास्ते में कहीं छिपे हुए पकड़े जाते तो दस गोदों की सज़ा मिलती थी और शाम का खाना उन्हें नहीं दिया जाता था। स्कूल जाने के बजाय नानी के घर भागने पर वापस लाते समय गोदों की मार के साथ-साथ नीम के पेड़ से या कुएँ में उल्टा लटकाकर उन्हें सज़ा दी जाती थी। शिवमूर्ति इस बात को स्वीकार करते हुए कहते हैं **"इतना कठोर विधान न होता तो पढ़ने जैसा नीरस और कमर तोड़ काम मैं हरगिज न शुरू करता।"**[8] कहने का आशय यह कि पिताजी के कठोर अनुशासन के कारण ही शिवमूर्ति अपनी शिक्षा हासिल कर पाए

और उच्च पद पर नियुक्त हुए। कठिन परिश्रम के साथ अनुशासन का जुड़ जाना बड़ी बात है। परिणाम तो अच्छा होना ही था।

शिवमूर्ति को उनके पिताजी ने गाँव के ही एक जियावान दर्ज़ी के यहाँ कपड़ों में काज-बटन के काम में लगाया था, ताकि वह कोई हुनर सीख सकें जो आगे चलकर आर्थिक रूप से मदद में सहायक हो। कहते हैं परिस्थितियाँ व्यक्ति को जिम्मेदार और कम उम्र में ही बड़ा बना देती हैं। पिताजी के गृहत्याग के बाद शिवमूर्ति भी कम उम्र में ही जिम्मेदार हो गए। यह ज़िम्मेदारी का अहसास ही था कि पिताजी के गृहत्याग के बाद शिवमूर्ति ने छोटे-बड़े कई काम किए। उन्हीं में से एक था - मजमा लगाना। यह अपने-आप में अकल्पनीय है कि जीवन के शुरुआती दौर में सड़क पर मजमा लगाने वाला व्यक्ति बाद में चलकर बिक्री कर विभाग में एक अधिकारी बनता है। हाईस्कूल की पढ़ाई के लिए शहर जाते समय रास्ते में कचहरी पड़ती थी। वहीं पर कुछ मजमेबाज अपना धंधा जमाने के लिए बैठा करते थे। शिवमूर्ति ने भी हाईस्कूल की पढ़ाई के साथ-साथ इस कला को आत्मसात किया। मजमेबाजों की बोलने की कला, उनके संवादों की अदायगी और एक घंटे के अंदर पंद्रह-बीस रुपए कमाने के हुनर में शिवमूर्ति को अपनी आर्थिक समस्या का हल मिल गया। शिवमूर्ति को यह भली-भाँति पता था कि एक दिन में मजमेबाज़ों की कला को सीखा नहीं जा सकता। इस कला में निपुण होने के लिए काफी अभ्यास की जरूरत होगी। इसलिए वह बार-बार मजमेबाज़ों का श्रवण-अनुश्रवण करते थे और खेतों में जाकर उनके भाषणों की नकल किया करते थे। इस तरह कई दिनों के अभ्यास के बाद शिवमूर्ति इस कला में निपुण हो गए। इतना ही नहीं, अपनी कड़ी मेहनत के बल पर स्कूल की छुट्टी होने के बाद शिवमूर्ति सांडे का तेल, तरह-तरह की वनौषधियाँ आदि बेचकर पैसा कमाते थे। उस समय तक उनकी उम्र इतनी नहीं थी कि कोई उनके बनाए हुए उत्पाद

को खरीदता। अतः अपने उत्पाद को बेचने के लिए उन्होंने कैलेंडर में छपे एक लंबी जटाजूट वाले बाबा के चित्र का सहारा लिया। इस बात की पुष्टि उनके इस कथन से होती है- **"मजमे की शुरुवात ही मैं बाबा जी के चित्र को जरी की माला पहनाकर और उनके आगे अगरबत्ती सुलगाकर करता। साथ में यह घोषणा कि हरिद्वार के अपने आश्रम से बाहर न निकलने का व्रत ले चुके गुरु जी ने मुझे और मेरे जैसे दर्जनों शिष्यों को जनता-जनार्दन के कल्याण के लिए भेजा है।"**[9] इस तरह अपनी कम उम्र के बावजूद शिवमूर्ति अपने बनाए हुए उत्पाद को बेचने में सफल हुए। शिवमूर्ति ने मजमा लगाने का हुनर बखूबी आत्मसात किया और अपनी आर्थिक स्थिति का समाधान भी ढूंढ लिया। आज भी यह देखने को मिलता है कि यदि किसी सिद्ध पुरुष की ख्याति का सहारा लिया जाता है तो समाज के लोग विश्वास करने लगते हैं। शिवमूर्ति ने इसी विश्वास का फायदा उठाते हुए हाईस्कूल की पढ़ाई के साथ-साथ अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ किया था ।

### 1.1.4 आजीविका

शिवमूर्ति को अपने पिताजी के असमय गृहत्याग के कारण तेरह साल की कच्ची उम्र में ही घर की ज़िम्मेदारी उठानी पड़ी। पढ़ाई के साथ-साथ घर-परिवार सम्हालने के लिए उन्हें तरह-तरह के काम करने पड़े। यह अपने-आप में अदभुत है कि कक्षा तीन की किताबें शिवमूर्ति ने मास्टर जियावन दर्जी के यहाँ काज-बटन का काम करके मिले पैसे से खरीदी थीं। जियावन मास्टर वास्तव में किसी स्कूल के मास्टर नहीं थे, बल्कि एक दर्जी थे, जिनका काम कपड़े सिलना था। उत्तर प्रदेश में उस समय और कहीं-कहीं आज भी दर्जी को शिक्षक की तरह मास्टर कहकर संबोधित किया जाता है। इंटर मीडिएट में पढ़ते वक्त शिवमूर्ति ने

मजमा लगाया, स्वयं बनायी हुई बीड़ी बेची, कैलेंडर बेचे, गर्भ निरोधक बटी बेची, बकरियाँ पाली व बेची, मेलों में साइकिल स्टैंड लगाया आदि आदि। क्या नहीं किया? इस तरह गृहस्थी की गाड़ी खींचते रहे। इस काम में उनकी पत्नी ने उन्हें पूरा सहयोग दिया। अपनी पत्नी के विषय में शिवमूर्ति बताते हैं - **"मेरी उम्र के उन्नीसवें वर्ष में जब बारहवीं में पढ़ रहा था, वे आईं और वर्ष भर के अंदर ही खेती-बारी, घर-गृहस्थी, चूल्हा-चौका, गाय-गोरू की ज़िम्मेदारी कैसे धीरे-धीरे अपने सिर ले ली, कुछ पता ही नहीं चला।"**[10] निश्चित रूप से शिवमूर्ति के आगे पढ़ने और बढ़ने में उनकी पत्नी जी का विशेष योगदान रहा है।

बी. ए. उतीर्ण करने के बाद शिवमूर्ति ने ट्यूशन पढ़ाना शुरू किया। इसी समय पिपरपुर गाँव के स्कूल में उन्होंने मास्टरी की, जहाँ 150 रुपये पर दस्तखत कराकर उन्हें सिर्फ 70 रुपये वेतन दिया जाता था। इसके पश्चात् उन्होंने सन् 1971 में रेलवे में स्टेशन मास्टर की नौकरी की। दृष्टि दोष के कारण जब उन्हें स्टेशन मास्टर से तार बाबू बना दिया गया तो उनके मन पर इसकी गहरी चोट लगी। परिणाम यह हुआ कि अपने कठिन परिश्रम के बल पर सन् 1977 में कंपीटीशन की परीक्षा पास करके वे ग्रामीण बिक्री कर विभाग में अधिकारी के रूप में कार्य करने लगे। सन् 2010 में वे बिक्री कर कमिश्नर के ओहदे से सेवा निवृत हुए और फिर अपने स्वतंत्र लेखन के कार्य में जुट गए। शिवमूर्ति का अधिकांश जीवन आर्थिक तंगी और संघर्षों से घिरा रहा। फिर भी उन्होंने अपना और अपनी बहन के परिवार का उदर निर्वाह किया और अपने बच्चों तथा अपनी बहन के बच्चों को उच्च शिक्षा दी। सरकारी नौकरी ने जहाँ उन्हें आर्थिक रूप से संपन्न बनाया, वहीं स्वतंत्र लेखन ने उन्हें एक आंतरिक स्वर दिया, जिसके जरिए वे पाठकों के पहले चहेते बने, उनके पसंदीदा लेखक बने ।

### 1.1.5 विवाह एवं दाम्पत्य जीवन

विवाह दो व्यक्तियों का, दो परिवारों का पवित्र बंधन होता है। इतना ही नहीं, विवाह दो व्यक्तियों के भावों, विचारों एवं उनके आत्मविश्वास का मिलन भी होता है, किन्तु शिवमूर्ति के साथ इन सबसे अलग हटकर कुछ और ही हुआ। उनकी उम्र इन सब बातों को समझने-बूझने की एकदम नहीं थी, जब सन् 1957 में उनका विवाह हुआ। विवाह के समय शिवमूर्ति सिर्फ साढ़े छह साल के थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम सरिता है। आमतौर पर दूल्हा शादी में घोड़ी पर सवार होकर ससुराल जाता है, किन्तु शिवमूर्ति के साथ ऐसा नहीं हुआ। शिवमूर्ति के ससुर ने शादी की दो शर्तें रखी थीं - पहली शर्त यह थी कि दूल्हा बारात लेकर उनके दरवाजे पर नहीं जाएगा और दूसरी शर्त यह कि शादी में दहेज नहीं दिया जाएगा। शिवमूर्ति के साँवले रंग के होने के कारण उनकी माँ को उनकी शादी की चिंता सता रही थी, इसलिए ससुराल वालों की सारी शर्तों को मानकर बचपन में ही शिवमूर्ति की शादी कर दी गयी। लगभग ग्यारह साल बाद शिवमूर्ति का गौना आया। गौना यानी शादी के बाद पहली बार पत्नी ससुराल आयी। उनकी पत्नी ने एक कुशल गृहिणी की तरह ससुराल आते ही परिवार की सारी जिम्मेदारियाँ सम्हाल ली और अपने बच्चों को संस्कारशील व विवेकशील बनाया। वे खुद अशिक्षित रहीं, लेकिन अपने सभी बच्चों को उच्च शिक्षा देकर समाज में इज़्ज़त से रहने के काबिल बनाया। इतना ही नहीं, वे खुद भी पढ़ीं। गाँव की एक साधारण सी दिखने वाली लड़की आज इतनी कुशल गृहिणी बन गयी है कि खुद गाड़ी चलाकर एक 'स्मार्टवाइफ़' की तरह अपनी घर-गृहस्थी सम्हालती हैं। अपने घर-परिवार की ज़िम्मेदारी जब से सरिता जी ने सम्हाली है, तब से शिवमूर्ति ने बड़ी राहत की सांस ली है। यही कारण है कि सारी चिंताओं से मुक्त होकर शिवमूर्ति अपने लेखन कार्य में प्रवृत्त रहते हैं।

### 1.1.6 परिवार

कथाकार शिवमूर्ति का परिवार गड़ेरिया बिरादरी से संबंध रखता है, जिसका मुख्य व्यवसाय भेड़ पालना होता है। इसी कारण उनकी बिरादरी के लोगों को 'पाल' कहते हैं। शिवमूर्ति का कुलनाम 'पाल' है, किन्तु उन्होंने इसका उपयोग कभी नहीं किया। पिता महावीर और माँ रामरती की दो संतानें हुईं - पुत्र शिवमूर्ति और पुत्री रानी। शिवमूर्ति की बहन रानी एक कुशल गृहिणी हैं। शादी के पश्चात् शिवमूर्ति और सरिता के सात बच्चे - रेखा पाल (पेशे से डॉक्टर और लखनऊ के लोहिया हॉस्पिटल में चिकित्सक के रूप में कार्यरत), पूनम पाल (पेशे से डॉक्टर और कोइम्बातोर में चिकित्सक के रूप में कार्यरत), नीलम पाल (एम. बी. ए. और घर पर ही फ़ैशन डिजाइनर), श्वेता पाल (एम.ए.,बी.एड. और दूर संचार विभाग में प्रशासनिक अधिकारी), मधुलिका पाल (पेशे से डॉक्टर और घर पर निजी प्रेक्टिस), शिवानी पाल (पेशे से डॉक्टर और घर पर निजी प्रेक्टिस) तथा बेटा प्रतीक पाल (कम्प्युटर इंजिनीयर और ऑस्ट्रेलिया में कार्यरत) हुए। इस तरह उनका एक भरा-पूरा परिवार है। ध्यातव्य है कि शिवमूर्ति का अपना खुद का बड़ा परिवार होते हुए भी उन्होंने अपनी बहन के बच्चों का भी लालन-पालन किया और खुद की बच्चियों की तरह उन्हें पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया। शिवमूर्ति की तीनों भांजियाँ शिवमूर्ति के लिए अपनी बच्चियों से किसी भी मायने में कमतर नहीं थीं। तीनों भाँजियों की पढ़ाई-लिखाई तथा उनकी शादी-ब्याह की पूरी ज़िम्मेदारी शिवमूर्ति ने खुद उठाई। अपने कठिन परिश्रम और नेक नीयती के बल पर वे खुद तो बड़े बने ही, साथ ही अपने परिवार और परिवार से जुड़े लोगों को भी बड़ा और ऊँचा उठाया। यह अपने-आप में एक बड़ा उदाहरण है।

### 1.1.7 अभिरुचियाँ

शिवमूर्ति के जीवन का अधिकांश समय गाँव में बीता। ग्रामीण मिट्टी में जन्मे, उसके परिवेश में बड़े हुए और वहाँ का जीवन भोगे हुए शिवमूर्ति ने अपने अनुभवों से ग्रामीण जन-जीवन का चित्र साकार किया है। कहना गलत न होगा कि शिवमूर्ति यानि गाँव। शिवमूर्ति का नाम लेते ही पूरा गाँव प्रत्यक्ष हो उठता है। गाँव के प्राकृतिक सौन्दर्य का आस्वाद लेना, दोस्तों के साथ नदी-नालों की सैर करना, पेड़ पर चढ़कर आती-पाती का खेल खेलना आदि उनका शौक रहा। इतना ही नहीं, बचपन में अपने मित्र भीष्म प्रताप सिंह के साथ शिवमूर्ति नाटक या नौटंकी का खेल भी देखने जाते थे, लेकिन बिना टिकट के। शिवमूर्ति और उनके मित्र के पास कभी इतने पैसे नहीं होते थे कि वे टिकट खरीदकर नाटक या नौटंकी देखें। दोनों मित्र नाटक मंडली के इर्द-गिर्द इस तरह मँडराते हुए देखते थे कि बाहर का परदा कहाँ से फटा हुआ है। नाटक शुरू होने से पहले जब मंच पर प्रार्थना शुरू होती थी और निगरानी कुछ कम हो जाती थी, तब सबसे नज़र बचाकर फटे हुए परदे को जरूरत से ज्यादा फाड़कर तंबू में दोनों मित्र प्रवेश करते थे और नाटक देखते थे। जवान होने पर शिवमूर्ति और उनके मित्र भीष्म जी नाटक देखने जाने के बजाय नाटक देखनेवालियों को देखने जाने लगे। इन सभी से शिवमूर्ति के नाटक-प्रेम का पता चलता है और साथ ही उनके रोमानी अंदाज़ का भी पता चलता है।

शिवमूर्ति को कुत्तों से बड़ा लगाव है। उनके दरवाजे पर हमेशा कुत्ते-कुतियों की भीड़ लगी रहती। इस संबंध में उनके मित्र भीष्म जी कहते हैं - **"कार्तिक के महीने में वहाँ ढेर सारे कुत्तों का जमावड़ा हो जाता तो भाई साहब अपनी दीवार पर लिख देते --'पिल्ले निर्माणाधीन हैं। तीन महीने बाद संपर्क करें।' तीन महीने**

**बाद वास्तव में कुतिया कहीं दिखाई न देती। तीन-चार दिन तक गायब रहती। तब भाई साहब उसे ढूँढकर उसके पिल्लों की गिनती करते और उसी वक्त उनका नामकरण भी कर देते।"**[11] कुत्तों के प्रति शिवमूर्ति का लगाव आज भी उतना ही है, जितना कि पहले था। अपने गाँव और शहर के घरों में उन्होंने आज भी कुत्ते पाल रखे हैं। इसके साथ-साथ फुफेरी बहन रंजना से सुनी हुई कहानियों और पिता द्वारा पढ़ाए गए रामचरितमानस के पाठ ने उनकी कहानी पढ़ने-लिखने की अभिरुचि को बढ़ावा दिया। शिवमूर्ति ने कक्षा सात से कहानियाँ लिखना शुरू किया था, जो आज तक निरंतर नियमपूर्वक चल रहा है।

### 1.1.8 यात्राएँ

शिवमूर्ति को बचपन से ही घूमने का बड़ा शौक रहा है। बचपन में उन्होंने साधु सुग्रीमदास के साथ पैदल प्रयाग की यात्रा की। दूर-दूर की दुर्गम पहाड़ी इलाकों की सैर करना उन्हें बहुत पसंद है। उन्होंने भारत के कई राज्यों का भ्रमण अपनी नौकरी के कार्यकाल में सपरिवार किया है। शिवमूर्ति स्कूल की छुट्टियों में पूरे परिवार को लेकर अलग-अलग राज्यों की सैर करते थे। यह वह पल था जिसमें शिवमूर्ति अपने परिवार के साथ 'क्वालिटी टाइम' बिताया करते थे। यह सिलसिला आज भी बंद नहीं हुआ है, बदस्तूर जारी है। पूरा परिवार कम-से-कम साल में एक बार एक साथ इकट्ठा होकर देश-विदेश की यात्रा जरूर करता है। नौकरी से सेवा निवृत होने के बाद अपनी जीवन संगिनी के संग शिवमूर्ति ने अमेरिका, चीन, नेपाल, म्यानमार, केनिया, यूरोप, साउथ अफ्रीका, जर्मनी, न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों का भी भ्रमण किया है। शिवमूर्ति ने केवल इन देशों की यात्राएँ हीं नहीं कीं, बल्कि इनमें से कुछ देशों के संबंध में अपनी यात्रा पर लेख भी लिखे हैं। **'जैक लंडन के देश में'** और **'लू शुन के देश**

**में'** उनके प्रसिद्ध यात्रा लेख हैं। अतः यात्राओं से उनका गहरा लगाव है। यात्राओं से उन्हें निरंतर ऊर्जा मिलती रहती है।

### 1.1.9 उपलब्धियाँ

कथाकार शिवमूर्ति ने अपने उत्कृष्ट लेखन के माध्यम से अपना एक पाठक वर्ग बनाया है। उनका पाठक उनकी नयी रचनाओं का बेसब्री से इंतजार करता है। यही कारण है कि उनके कथा-साहित्य पर नाटक एवं फिल्मों का काफी निर्माण हुआ। उनके साहित्य की उपलब्धि यह है कि उनकी कहानियों में फिल्म की पटकथा एवं संवाद स्वयं मिल जाते हैं। इसके लिए फिल्म निर्माताओं को कुछ खास करने की जरूरत नहीं पड़ती। शिवमूर्ति की कहानियों का चित्रांकन इतना स्पष्ट और सुदृढ़ होता है कि नाटक के पात्रों एवं फिल्म के कलाकारों को भावाभिव्यक्ति की चरम सीमा तक जाने में निर्देशक को बड़ी सुविधा होती है। शिवमूर्ति का **'कसाईबाड़ा'** नाटक सन् 1984 में प्रकाशित हुआ। इस नाटक का मंचन देशभर में अनेक नाट्य मंडलियों द्वारा किया गया। बंबई के प्रसिद्ध पृथ्वी थियेटर में भी इस नाटक का मंचन हुआ। एक हजार से भी अधिक इसके प्रयोग हुए हैं। कहानी के रूप में शिवमूर्ति की यह रचना केवल शिक्षित समाज तक सीमित रही, किन्तु इसके मंचन से यह कृति जन-जन तक भी अपना संदेश लेकर गयी। नाटक के साथ-साथ यह कृति टेलीफिल्म के रूप में भी दर्शकों तक पहुँची है।

दूरदर्शन में काम करते हुए सुशील कुमार ने अनेक दिक्कतों का सामना करते हुए 'कसाईबाड़ा' कहानी को टेलीफिल्म के रूप में दर्शकों तक पहुँचाया। वास्तविकता का बयान करती हुई यह कहानी कभी सत्ताधारियों के कारण तो कभी सुशील कुमार के तबादलों के कारण टलती गयी। जब भी सुशील कुमार ने

'कसाईबाड़ा' पर फिल्म बनाने की बात सोची, वे हर बार असफल रहे। उन्होंने सोचा कि कसाईबाड़ा में पाँच अक्षर हैं जो ज्योतिष के अनुसार उनके लिए अनुकूल नहीं है। वे इस संदर्भ में कहते हैं **"मैंने यह नोट किया कि मेरे द्वारा लिखे गए नाटकों या निर्मित किए गए सीरियल-टेलीफ़िल्मों में, जिनके शीर्षक सात अक्षरों के थे, वो काफी लोकप्रिय हुए ---'सिंहासन खाली है', 'चार यारों के यार', 'अलख आज़ादी की', जैसे मेरे पूर्णकालिक नाटक या 'बीवी नातियों वाली' धारावाहिक। मैंने तय किया कि 'कसाईबाड़ा' में दो अक्षर जोड़ दूँ।"**[12] आखिरकार उन्होंने '**कसाईबाड़ा**' कहानी के शीर्षक को **'कथा कसाईबाड़ा'** शीर्षक देकर इस फिल्म को पूरा किया। सामाजिक एवं राजनीतिक सच का परदाफाश करती शिवमूर्ति की यह कहानी अपने-आपमें अदभुत है। इस कहानी पर बनी फिल्म के बारे में खुद शिवमूर्ति कहते हैं -**"स्थानीय कलाकारों के साथ आपने इतनी अच्छी फिल्म बना ली। बासु चटर्जी, ओम पुरी, नसीरुद्दीन शाह जैसे बड़े-बड़े कलाकारों को लेकर भी मेरी कहानी 'तिरिया चरित्तर' के साथ न्याय नहीं कर सके।"**[13] यह है - कसाईबाड़ा कहानी की उपलब्धि। और उससे भी बड़ी उपलब्धि है कहानी का फिल्मांतरण। स्थानीय कलाकारों ने जी-जान से अपना काम किया और इस फिल्म को कामयाब बनाया। यही कारण है कि इस फिल्म को सभी ने पसंद किया। '**कसाईबाड़ा' कहानी** आने वाले दिनों में हमेशा प्रासंगिक बनी रहेगी, क्योंकि उसमें उठाई गयी समस्या सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक है।

शिवमूर्ति की **'तिरिया चरित्तर'** कहानी पर सन् 1994 में विख्यात सिने निर्माता बासु चटर्जी ने फिल्म बनायी। इस फिल्म निर्माण से हिन्दी सिनेमा के जाने-माने कलाकार ओम पुरी, नसीरुद्दीन शाह, राजेश्वरी, विजय कश्यप, एस. एम. जहीर आदि जुड़े हुए थे, किन्तु **'कथा कसाईबाड़ा'** फिल्म की तुलना में यह उतनी ज्यादा चर्चित नहीं हुई। **'कथा कसाईबाड़ा'** फिल्म सिर्फ 96 मिनट की एक

टेली फिल्म थी, जबकि **'तिरिया चरित्तर'** बड़े पैमाने पर बनाई गयी फिल्म थी। एन.एफ.डी.सी (नेशनल फिल्म डेवल्प्मेंट कॉरपोरेशन) के हॉल में जब पहला शो शिवमूर्ति ने देखा तो वे प्रसन्न नहीं हुए। फिल्म देखने के पश्चात् उन्होंने पत्रकारों के सामने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा - **"आगे किसी फ़िल्मकार को कहानी तभी दूँगा जब फिल्म निर्माण में मेरी भी दखलंदाजी होगी।"**[14] दरअसल साहित्यिक कृतियों पर बनाई जाने वाली फिल्मों के लिए आवश्यकता इस बात की होती है कि साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनाने वाले निर्देशक का साहित्य से गहरा संबंध हो और वे खुद उस कृति में पूर्ण रूप से डूबें और फिर इस तरह उभरकर बाहर निकलें कि मानो वे खुद कहानी को जिये हों। निर्देशक की दृष्टि सिर्फ आर्थिक उपलब्धियों तक सीमित न रहे। फिल्म निर्माण का कार्य दुधारी तलवार पर चलने जैसा होता है - कहानी की मूल संवेदना भी नष्ट न हो और फिल्म अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचकर उनके दिलों में अपनी जगह बनाए। **'तिरिया चरित्तर'** के साथ यह नहीं हुआ। फिर भी शिवमूर्ति के लिए यह कम उपलब्धि नहीं थी कि उनकी कहानी पर, बड़े परदे पर फिल्म बनी और बड़े-बड़े कलाकारों ने उसमें काम किया। इससे भी बड़ी उपलब्धि यह मान सकते हैं कि फिल्म के असफल होने के बावजूद मूल कहानी अपने शीर्षक एवं कथ्य के बल पर जन-जन तक पहुँचने में सफल रही।

शिवमूर्ति की कहानी 'कसाईबाड़ा' के नाट्य रूपांतरण का अनुवाद देश की अनेक भाषाओं में तो हुआ ही, साथ ही **'केशर-कस्तूरी'** कहानी संग्रह की कुछ कहानियों का अनुवाद प्रसिद्ध बँगला लेखक तथा अनुवादक समरचंद जी ने 'कसाईखाना' नामक शीर्षक से किया। प्रसिद्ध अनुवादक आर. पी. हेगड़े द्वारा 'कोनेया जिगिथा' नामक शीर्षक से शिवमूर्ति का 'आखिरी छलाँग' उपन्यास कन्नड भाषा में अनुवादित किया गया। उड़िया, मराठी और उर्दू भाषाओं में भी

उनके साहित्य का अनुवाद हुआ है। इन सबके बावजूद जर्मनी की **'गूंथनबर्ग युनिवरसिटी'** में उनका **'त्रिशूल'** उपन्यास विदेशी भाषा के अंतर्गत हिन्दी पढ़ने वालों के पाठ्यक्रम में लगाया गया है और इस उपन्यास को पढ़ाने वाली अध्यापिका का नाम है - इनस फोर्नेल, जो एक विदेशी महिला हैं। इनस फोर्नेल ने ही 'तिरिया चरित्तर' कहानी का अनुवाद जर्मन भाषा में किया है। इससे हिन्दी की गरिमा तो बढ़ी ही है, साथ ही रचनाकार शिवमूर्ति की भी गरिमा बढ़ी है। असल में मूल भाषा को छोड़कर जब किसी रचनाकार की कृति का अनुवाद दूसरी भाषा में होता है, तब यह उस रचना तथा रचनाकार की सबसे बड़ी उपलब्धि होती है।

शिवमूर्ति हिन्दी साहित्य के ऐसे रचनाकार हैं, जिन पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं, जैसे - 'संवेद', 'लमही', 'मंच', 'इंडिया इनसाइड', आदि ने विशेषांक प्रकाशित किए हैं। किसी भी रचनाकार पर विशेषांक प्रकाशित होना इस बात का प्रमाण है कि उसके साहित्य का पाठकों एवं आलोचकों द्वारा मंथन किया जा रहा है। उसके साहित्य को रुचि के साथ पढ़ा जा रहा है। वह आम और खास लोगों के बीच चर्चा का विषय बना हुआ है।

### 1.1.10 प्रेरणा

किसी भी रचनाकार की रचना के सृजन में उसके परिवार, परिवेश तथा समसामयिक परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। शिवमूर्ति भी इससे अछूते नहीं हैं। उनके साहित्य का भी प्रेरणास्रोत यही रहा है। जिस माहौल में शिवमूर्ति रहे-पले-बढ़े-जिए उसी को उन्होंने अपने साहित्य का विषय बनाया। शिवमूर्ति ने तेरह वर्ष की उम्र में अपनी एक कहानी लिखी थी, किन्तु उसे प्रकाशित नहीं किया। उस कहानी का नाम उन्हें याद नहीं, लेकिन उस कहानी का

चरित्र उन्हें याद है - मंगली। मंगली लेखक के ही गाँव का एक लड़का था, जिसकी कहानी उन्होंने लिखी थी। शिवमूर्ति अपनी फुफेरी बहन रंजना से रोज रात के समय राक्षसों और राजकुमारों की कहानियाँ सुनते थे तथा अपने पिताजी से नियमित 'रामचरितमानस' का पाठ सुनते थे। ये दोनों ही बाद में चलकर उनके लेखन की प्रेरणा बने। यह प्रेरणा भी ऐसी कि सुने काल्पनिक और लिखे वास्तविक।

जियावन दर्जी के साथ काम करते हुए शिवमूर्ति ने अपनी तीसरी कक्षा की पुस्तकें अपनी कमाई से खरीदी थीं। नई-नई- किताबें अक्सर बच्चों को लालायित करती हैं। शिवमूर्ति भी अपनी किताबें लेकर जियावन दर्जी की दुकान पर बैठे ही थे कि उनके हाथ में एक हिन्दी भाषा की किताब लग गई। उस किताब की एक कहानी 'काठ का घोड़ा' ने शिवमूर्ति के होश उड़ा दिए थे। कहानी कुछ इस तरह थी -**"राजकुमारी हेलेन के लिए वर्षों तक चलने वाली लड़ाई में ट्राय पर विजय पाने के लिए विपक्षी सेना ने काठ का घोड़ा बनाकर उसके पेट में एक रात पहले अपने सैनिकों को छिपा दिया था, जिसे ट्राय के लोग किले में खींच ले गये थे। इन्हीं सैनिकों ने रात में घोड़े के पेट से निकलकर किले का फाटक खोला था।"**[15] इस कहानी को पढ़कर बालक शिवमूर्ति सोच में पड़ गए कि काठ के घोड़े में बैठे सैनिकों ने अपनी दिशा-मैदान की समस्या को कैसे निपटाया होगा? शिवमूर्ति इस बारे में सोच ही रहे थे कि जियावन मास्टर ने आकर उनके दोनों कानों के नीचे एक साथ सिटका लगाया। फिर भी उन्होंने सोचना बंद नहीं किया। कई दिनों तक लेखक इसी खयाल में उलझा रहा। इस बारें में लेखक बताता है - **"उस्ताद ने मेरे दोनों कानों में एक साथ 'सिटका' लगाया। इसके बाद भी सैनिकों की समस्या में मैं कई दिन उलझा रहा। अर्थात् दूसरे देश-काल और पात्र की समस्या को अपनी समस्या मान लेने वाली कोई रग जग चुकी थी। यही**

**रग जिम्मेदार होती है लेखन के लिए।"**[16] लेखक को लगता है कि शायद उसके मन में लेखन का बीज यही से अंकुरित हुआ हो। जो भी हो, इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि इस घटना ने लेखक को बेचैन जरूर कर दिया।

पढ़ने-लिखने की जिज्ञासा जब शिवमूर्ति के मन में थोड़ी और बढ़ गयी तब उन्होंने एक बार एक जासूसी उपन्यास की चोरी की। हुआ यह कि शिवमूर्ति जब पाँचवीं कक्षा में पढ़ते थे, तब वे एक शादी में गए थे। वहाँ पर कुछ लोग पैसे और लोगों के नामों का हिसाब लिख रहे थे, जिसके नीचे वह जासूसी उपन्यास था। शिवमूर्ति ने लोगों की नज़रों से बचकर उस उपन्यास को धीरे से अपनी कमीज़ के अंदर छिपा लिया और उसे घर ले आए। घर में आने के बाद उन्होंने उस उपन्यास को अपनी किताबों के साथ नहीं रखा, बल्कि घर के एक कोने में उसे छिपा दिया, ताकि वह पुस्तक अपने असली मालिक के हाथ कभी न लगे। उस उपन्यास को लेखक ने आद्यंत पढ़ा। उस उपन्यास में एक स्त्री की हत्या की गयी थी। इस हत्या ने लेखक के बालमन पर इस कदर प्रभाव डाला कि कई दिनों तक वह रात में सो नहीं पाया। वह बार-बार डर जाता था। उस उपन्यास की कहानी ने शिवमूर्ति के मन-मस्तिष्क को इस तरह झकझोर दिया था कि उनके भीतर और कुछ पढ़ने की ललक पैदा हो गयी।

शिवमूर्ति के गाँव कुरंग में उस समय मुश्किल से चार-पाँच लोग पढे-लिखे थे। उन्हीं पढे-लिखे लोगों में से एक बुजुर्ग किसान थे, जिनका नाम नकछेद पांडेय था। नकछेद पांडेय को पढ़ने का बड़ा शौक था। उनका अपना निजी पुस्तकालय भी था। गर्मी की छुट्टियों में लेखक और उसके साथी जानवरों को चराते हुए सीधे नकछेद पांडेय के कुएँ पर जाते थे। वहाँ इन लोगों ने पांडेय जी को चारपाई पर बैठकर कोई मोटा ग्रंथ पढ़ते हुए देखा। पाण्डेय  जी के पास

रामायण, महाभारत, वेद, पुराण आदि कई धार्मिक ग्रंथ थे। इनके अलावा प्रेमचंद, वृंदावनलाल वर्मा, रांगेय राघव आदि का भी साहित्य उनके पास मौजूद था। शिवमूर्ति ने अपनी पढ़ने की जिज्ञासा पाण्डेय जी के समक्ष व्यक्त की। बहुत मिन्नतें करने के बाद आखिरकार पाण्डेय जी राजी हुए, किन्तु इस शर्त पर कि वह बिना किताब को मोड़े और फाड़े ज्यों की त्यों उसी रूप में अगले दिन वापस करेंगे। शिवमूर्ति राज़ी हो गये, मानो उन्हें उड़ने के लिए पूरा आसमान मिल गया हो। इन्हीं दिनों शिवमूर्ति ने प्रेमचंद द्वारा लिखित '**सेवासदन, 'प्रेमाश्रम', 'गबन'**, '**कायाकल्प'** आदि उपन्यासों को भी पढ़ा। इसके साथ-साथ '**मानसरोवर'** कहानी संग्रह के कई भाग और उपेन्द्रनाथ अश्क का '**गिरती दीवारें'** उपन्यास भी पढ़ डाला। ये सभी ग्रंथ कथाकार शिवमूर्ति के लिए प्रेरणा स्रोत बने।

हाई स्कूल की पढ़ाई के लिए जब शिवमूर्ति सुल्तानपुर गये तो वहाँ की मेहता लाइब्रेरी से किताबें लेकर पढ़ने लगे। इसके पश्चात् जब वह आगे की पढ़ाई के लिये महात्मा गांधी डिग्री कॉलेज, सुल्तानपुर गये, तब कॉलेज की लाइब्रेरी से किताबें और तरह-तरह की पत्र-पत्रिकाएँ, जैसे -'**सारिका', 'नई कहानियाँ', 'दिनमान'** आदि उन्हें पढ़ने को मिलीं। तरह-तरह की कहानियाँ पढ़ने के बाद अब उन्हें लगने लगा कि पढ़ी हुई कहानियों में कुछ जोड़-घटाव करके वह खुद भी कहानी लिख सकते हैं। शिवमूर्ति ने सन् 1968 में इंटरमीडिएट में पढ़ते वक्त अपनी पहली कहानी 'युवक' नामक पत्रिका में प्रकाशित करने के लिए भेजी, जिसका शीर्षक था **'मुझे जीना है'।** अलग-अलग पत्रिकाओं के पते कॉलेज की लाइब्रेरी से उन्हें बड़ी आसानी से मिल जाते थे। इसी के जरिए वह अलग-अलग पत्रिकाओं में अपनी नयी-नयी कहानियाँ प्रकाशित होने के लिए भेजने लगे।

जब शिवमूर्ति की पत्नी का गौना हुआ और वह ससुराल आईं, तब उन्होंने शिवमूर्ति को पूरी तरह से घर की जिम्मेदारियों से मुक्त कर दिया। साथ ही उन्हें आगे पढने के लिए प्रोत्साहित भी किया। हालाँकि उनकी पत्नी सरिता जी पढ़ी-लिखी नहीं थीं, किन्तु परिस्थितियों को समझने तथा उन्हें विश्लेषित करने की उनमें विलक्षण क्षमता थी। खुद अशिक्षित रहकर पति को पढ़ने के लिए हमेशा प्रेरित करना, यह अपने-आप में बड़ी बात है। यहाँ यह बात पक्की हो जाती है कि परिस्थितियों को समझने की समझ स्कूली ज्ञान से नहीं, सामाजिक ज्ञान से होती है। यहाँ तक कि शिवमूर्ति के मजमा लगाने के काम में भी शीशियाँ धोना, गोलियाँ बनाना, पैक करना, लेबल लगाना आदि कार्यों में सरिता जी काफी उत्साह दिखाती थीं। कहते हैं पुरुष की सफलता के पीछे किसी स्त्री का हाथ अवश्य होता है। इस अर्थ में शिवमूर्ति काफी भाग्यशाली थे कि किसी स्त्री के रूप में कोई और नहीं, उनकी अपनी पत्नी ही थी।

कोई भी बड़ा रचनाकार अपने परिवेश से कटकर नहीं रह सकता। एक सामान्य परिवार में जन्मे-पले-बढ़े शिवमूर्ति पर भी अपने परिवेश का गहरा प्रभाव था। इसमें कोई दो राय नहीं कि शिवमूर्ति की रचनाधर्मिता, उनके जीवनवृत, व्यक्तित्व एवं परिवेश से गहरी जुड़ी हुई है। उनका जीवन अत्यंत कठिन एवं संघर्षपूर्ण रहा है। उन्होंने अपना जीवन और समाज का जीवन खुली आँखों से देखा था। उनका बचपन, किशोरावस्था, युवावस्था काफी संकट से भरा हुआ था। यही कारण है कि अपने आस-पास का परिवेश एवं वहाँ के पात्र शब्दरूप में उनके कथा साहित्य में हमेशा दृष्टिगोचर होते हैं। कहा जा सकता है कि शिवमूर्ति के साहित्य का प्रेरणास्रोत उनका अपना परिवार, विशेष रूप से पत्नी तथा उनका अपना परिवेश रहा है, जिसने उन्हें लिखने के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित किया।

## 1.2 - शिवमूर्ति का स्वभाव

बचपन से ही शिवमूर्ति बड़े शरारती स्वभाव के थे, किन्तु बचपन का वह शरारतीपन लेखक के तेरह साल के होते-होते तब लुप्त हो गया, जब पिताजी ने गृहत्याग कर संन्यास ग्रहण कर लिया। शिवमूर्ति के स्वभाव की प्रशंसा में जय नंदन जी लिखते हैं - **"शिवमूर्ति भाई के स्वभाव का सूक्ष्म अध्ययन करें तो लगता नहीं कि वे इस युग के आदमी हैं। ऐसा लगता है कि रामराज्य का कोई आदमी किसी वरदान के कारण अब तक जीवित रह गया और पास ही के अयोध्या से सरकता हुआ कुरंग गाँव में आ बसा।"**[17] जय नंदन जी का शिवमूर्ति के बारें में यह कथन उनके स्वभाव के कई मुख्य पहलुओं को खोलने का काम करता है, जैसे - शिवमूर्ति बड़े विनम्र स्वभाव के व्यक्ति हैं जो जाने-अनजाने भी किसी को तकलीफ नहीं देते, वे जब भी अपने गाँव कुरंग जाते हैं तो वहाँ जाकर तुरंत अपनी शहरी पोशाक को राम-राम कहते हैं और सीधे लुंगी लपेटकर गाँववालों के बीच उनकी जैसी पोशाक धारण कर लेते हैं और अपने पढ़े-लिखे होने का या फिर अपने ओहदे का रोआब कभी नहीं झाड़ते आदि। कहने का आशय यह कि शिवमूर्ति के स्वभाव में न तो ऊँच-नीच का भाव रहता है और न किसी प्रकार का बनावटीपन। उनके स्वभाव में सिर्फ समर्पण का भाव रहता है। गाँव में जाकर गाँव के लोगों जैसा रहना, उनका दुख-दर्द सुनना, पूरे परिवार को एक सूत्र में बाँधे रखना और सगे-संबंधियों की मदद करना आदि उनके स्वभाव की खास विशेषताएँ हैं।

एक बार 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास के लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह जब शिवमूर्ति से मिले तो उनके व्यक्तित्व से वे काफ़ी प्रभावित

हुए। अब्दुल बिस्मिल्लाह की शिवमूर्ति से यह पहली मुलाक़ात मऊनाथ भंजन में हुई थी। उस समय मऊनाथ भंजन उत्तर प्रदेश का एक कस्बा था, परंतु आज वह एक जिला बन चुका है। मऊनाथ भंजन के कार्यक्रम के बाद अब्दुल बिस्मिल्लाह शिवमूर्ति के घर पर रुके थे। शिवमूर्ति के घर पर उन्होंने परायेपन का जरा-सा भी अनुभव नहीं किया। लोग यह सोचेंगे कि अब्दुल बिस्मिल्लाह एक जाने-माने लेखक हैं, इसलिए उनकी खातिरदारी हुई? किन्तु ऐसा नहीं है। सच तो यह है कि उनके यहाँ जो भी जाता है, सबकी खातिरदारी होती है, शिवमूर्ति हैं ही ऐसे। चाहे कोई शोध-छात्र हो या प्राध्यापक, सभी का वे समान रूप से सम्मान करते है। उनके लिए छोटा -बड़ा कोई नहीं है।

कथा-पटकथा एवं संवाद लेखक कमल पांडेय के लिए शिवमूर्ति 'गॉड फादर' से कम नहीं हैं। शिवमूर्ति की **'कसाईबाड़ा'** कहानी जब कमल पांडेय जी ने पढ़ी तो उनके दिलो-दिमाग पर यह कहानी इस कदर छा गयी कि वे अपने प्रिय लेखक से किसी भी हाल में मिलना चाहते थे। जब उन्हें पता चला कि शिवमूर्ति इलाहाबाद में सेल्स टैक्स अधिकारी हैं, तो वे उनसे मिलने उनके निवास स्थान पर गये। फिर मिलने का यह सिलसिला इतना बढ़ा कि जब फिल्म निर्देशक बासु चटर्जी शिवमूर्ति की कहानी 'तिरिया चरित्तर' पर फिल्म बनाने इलाहाबाद आये, तब शिवमूर्ति के साथ कमल पांडेय भी थे। बहुत डरते हुए शिवमूर्ति से कमल पांडेय जी ने कहा था - **"मुझे फिल्म लिखना है...फिल्में बनानी हैं.....और तब उन्होंने कहा था कि यही आपकी मंजिल है, मुझे पता है... मेरी पहली कहानी पढ़ी थी शिवमूर्ति जी ने....और उन्हें लगा था कि मैं सिनेमा के लिये ही बना हूँ..... "**[18] कमल पांडेय की बी.ए. की पढ़ाई पूर्ण होते ही शिवमूर्ति अपने खर्चे पर कमल पांडेय को दिल्ली लेकर गए और अपने एक दोस्त चंद्रदेव यादव के साथ अब्दुल बिस्मिल्लाह जी के फ्लैट में पंद्रह दिनों तक ठहरने का प्रबंध किया। वहाँ

से मुंबई का रास्ता खुद तय करने को कहकर शिवमूर्ति वापस इलाहाबाद लौट आए। दिल्ली में लेखक उदय प्रकाश के साथ कमल पांडेय किराए के मकान में रहने लगे। कुछ समय पश्चात् जब कमल पांडेय अपनी आर्थिक तंगी के कारण मकान का किराया देने में असमर्थ हुए, तब उदय प्रकाश ने उस मकान में ताला लगा दिया और गाँव चले गये। उदय प्रकाश कमल पांडेय को उनका सामान भी नहीं दे रहे थे। बाद में बड़ी मुश्किल से उदय प्रकाश ने उनका सामान लौटाया। कमल पांडेय की इन सभी मुसीबतों को सुनकर शिवमूर्ति ने कमल पांडेय से कहा कि **"ऐसी ही बातें, ऐसे ही आँसू....ऐसी ही ठोकरें आपको वह बनाएँगे जो आप बनने गये हैं....दुख माँजता है, ठोकरें मजबूत बनाती हैं .....और अभाव सोचने पर विवश करता है.... "**[19] राग-द्वेष से मुक्त होकर दिया हुआ शिवमूर्ति का यह ढाढ़स किसी का भी हौसला बुलंद कर सकता है। ढाढ़स के इन शब्दों का कमल पांडेय पर गहरा असर हुआ। उदय प्रकाश के बारे में जो भी मलाल उनके मन में था, सब धुल गया। आज कमल पांडेय एक जाने-माने कथा-पटकथा एवं संवाद लेखक बन गए हैं और उन्हें कई पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं। इन सबका श्रेय कमल पांडेय शिवमूर्ति को देते हैं। दूसरों की मदद करने का जो भाव और उत्साह शिवमूर्ति में है, वह आज की दुनिया में अन्यत्र देखने को कम मिलता है।

शिवमूर्ति ने बचपन से अपने घर में पूजा-पाठ, हवन, रामचरितमानस का पाठ आदि का वातावरण देखा, सुना और जिया है। फिर भी अपनी माँ की तरह वे किसी धार्मिक कर्म-कांड के प्रपंच में पड़ना नहीं चाहते थे। शिवमूर्ति की माँ पूर्ण रूप से नास्तिक विचारों वाली थीं और पिता आस्तिक विचारों वाले, किन्तु शिवमूर्ति पर अपनी माँ का प्रभाव पड़ा था। शिवमूर्ति धर्म, जाति और ज्योतिष आदि से ऊपर उठे हुए रचनाकार हैं। इस संदर्भ में अपने एक साक्षात्कार में ओमा शर्मा से बातचीत करते हुए उन्होंने कहा है **"मेरे भीतर किसी के धर्म या जाति**

**को लेकर कोई गाँठ नहीं है। मैं किसी पूजा स्थल पर नहीं जाता। ज्योतिष में नहीं पड़ता।"**[20] देखा जाता है कि लोग अक्सर अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये धार्मिक आडंबरों का सहारा लेते हैं, किन्तु शिवमूर्ति का बचपन ऐसे माहौल में बीता है, जिसके कारण उन्हें असमय ही कई जिम्मेदारियों को उठाना पड़ा। यही कारण है कि धर्म के प्रति उनका दृष्टिकोण बदला हुआ है। सच तो यह है कि वे ईश्वर को भी नहीं मानते। उनका कहना है कि ईश्वर मनुष्य की ईजाद की हुई अवधारणा है। उनका यह भी कहना है कि अगर ईश्वर कहीं होता तो दुनिया में हो रहे अन्याय के खिलाफ वह खड़ा होता, लेकिन ऐसा कुछ नहीं है। यह शिवमूर्ति की धर्मनिरपेक्षता की दृष्टि है। उन्होंने हमेशा जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय से ऊपर उठकर मानवता को श्रेष्ठ माना है।

### 1.3 व्यक्तित्व-निर्माण एवं लेखन की शुरुआत

शिवमूर्ति बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाकार हैं। रंग साँवला, विशाल ललाट, स्मित-हास्य और सीधे-सरल स्वभाव के शिवमूर्ति भावुक, मिलनसार, उदार और स्वाभिमानी व्यक्ति हैं। उनमें लेशमात्र भी अहं भाव विद्‌यमान नहीं है। असमय घर की गृहस्थी का बोझ, एक सरकारी अधिकारी, एक पति, सात बच्चों के पिता और इन सबके ऊपर एक लेखक मन, इन सभी भूमिकाओं को शिवमूर्ति ने बखूबी निभाया है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में वर्तमान समय के वे एक सशक्त कथा लेखक के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने औरों की तुलना में कम लिखा है, पर जितना लिखा है, वह **'गागर में सागर'** के समान है। आमतौर पर किसी भी साहित्यकार की कुछ गिनी-चुनी कहानियाँ ही या एकाध उपन्यास चर्चा में आते हैं, किन्तु शिवमूर्ति ऐसे लेखक हैं जिनकी हर कहानी और हर उपन्यास चर्चा के केंद्र में रहे हैं। एक कथाकार के रूप में हिन्दी साहित्य को उन्होंने अपनी

कालजयी कृतियों से संपन्न किया है। शिवमूर्ति के पहले कहानी संग्रह 'केशर-कस्तूरी' के प्रकाशित होने से पहले उनकी कहानियाँ अलग-अलग पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं हैं और उन्हें एक उत्कृष्ट  कहानीकार की गरिमा प्राप्त होती रही है। एक अच्छा-खासा पाठक वर्ग शिवमूर्ति ने बनाया है, जो सदैव उनके लेखन की राह देखता है और कुछ नया पढ़ने की उम्मीद रखता है।

शिवमूर्ति के यदि व्यक्तित्व की बात करें, तो कह सकते हैं कि वे अत्यंत सीधे-सादे, मिलनसार और सरल व्यक्तित्व के धनी रचनाकार हैं। वे बड़े ही सहज रूप से हर-एक के साथ मिलते हैं और वार्तालाप करते हैं। उनकी इस मिलनसारिता में उनकी दृढ़ता भी छिपी रहती है। कभी-कभी यह दृढ़ता 'विनम्र ज़िद' का भी रूप ले लेती है। शिवमूर्ति की अवधारणाएँ एवं मान्यताएँ अपने जिए, देखे और पढ़े के आधार पर विकसित हुई हैं। उनके साथ बातचीत में जब उनकी किसी अवधारणा पर आक्रमण होता है, तब वे जी-भर कर उसका प्रतिरोध करते हैं और अंत में यह कहकर कि **'आप वह मानिए, मैं यह मानता हूँ'** के भाव पर बात को टिका देते हैं। अक्सर देखा गया है कि कामयाबी लोगों के सिर पर चढ़कर बोलती है, किन्तु शिवमूर्ति के साथ ऐसा  नहीं है। एक उच्च सरकारी अधिकारी और एक कामयाब लेखक होने का अभिमान उन्होंने कभी नहीं पाला। शिवमूर्ति के व्यक्तित्व की एक और खास पहचान है, उनकी दोस्ती। अपने मित्रों की सहायता के लिए वे हमेशा तत्पर रहते हैं। नौकरी में जब भी उनका स्थानांतरण होता है, तब वे अपना सामान मित्रों में बाँटकर वहाँ से निकलते हैं। एक बार तो वे अपने मित्र कथाकार संजीव को अपना स्कूटर ही देकर चले गए। इससे शिवमूर्ति के बड़े दिल का पता चलता है। इससे यह भी पता चलता है कि अपने सामान के प्रति उन्होंने कभी मोह नहीं पाला। बस, अपने दोस्तों को हमेशा याद रखा, उनसे दोस्ती निभाई। अपने मधुर व्यवहार, विनम्र एवं मिलनसार

व्यक्तित्व के कारण शिवमूर्ति अपने पाठकों के बीच सदा नामचीन हस्ती के रूप में जाने जाते हैं।

### 1.4 - शिवमूर्ति का रचना संसार

कथाकार शिवमूर्ति के बहुआयामी व्यक्तित्व पर विचार करने के पश्चात् अब हम उनके रचना संसार पर विचार करते हैं। शिवमूर्ति जब सन् 1968 में इंटरमीडिएट में पढ़ रहे थे, तब उनकी पहली कहानी 'युवक' नामक पत्रिका में छपी थी, जिसका शीर्षक था **'मुझे जीना है'।** कहानी एक सिपाही और व्यापारी से संबंधित है। व्यापारी दो नंबर का अर्थात् गैर कानूनी काम करता है। एक पुलिस चौकी पर कार्यरत सिपाही उसके ट्रक को रोक देता है। रिश्वत देकर व्यापारी उस सिपाही से अपनी जान छुड़ा लेता है। शिवमूर्ति के मतानुसार उनकी यह कहानी 'म्यॅचूअर्ड' कहानी नहीं थी। उन्होंने उसी समय एक उपन्यास भी लिखा था, जिसका नाम था **'माटी की महक'** जो लगभग साढ़े चार सौ पृष्ठों का था, किन्तु लेखक ने उसे अब तक प्रकाशित नहीं कराया है। शायद शिवमूर्ति अपनी इस कृति से संतुष्ट नहीं हैं, जिसकी वजह से अब तक यह कृति प्रकाशित नहीं हो सकी। इसके पश्चात् सन् 1969 में 'पान-फूल' नामक कहानी बीकानेर की **'वातायन'** पत्रिका में छपी। इस कहानी में एक मातहत अपने बॉस को भेंट स्वरूप एक ट्रांजिस्टर देता है, ताकि बॉस की कृपा दृष्टि हमेशा उस पर बनी रहे। सन् 1970 में लखनऊ की 'कात्यायनी' नामक पत्रिका के 'ग्राम-कथा' विशेषांक में उनकी **'उड़ि जाओ पंछी'** कहानी छपी। इस कहानी में होली का चित्रण है, जिसमें गाँव में फगुआ गाया जाता है। एक मज़दूरनी कट चुके खाली खेत में गिरी हुई बालियाँ बीन रही है। असल में वह खेत उसी मज़दूरनी का ही है, जिस पर गाँव के एक दबंग ने जबरदस्ती कब्जा कर रखा है। वह मज़दूरनी अपने ही खेत से

बेदखल हो गयी है। इतने में अचानक उसे एक बिल दिखाई देती है, जिसमें कुछ बालियाँ गिरी पड़ी हैं। वह मज़दूरनी बिना सोचे-समझे उस बिल में हाथ डालती है। बिल में छिपा सांप उसे डस लेता है। उस मज़दूरनी का छोटा बच्चा पेड़ के नीचे लेटा पड़ा है। वह दौड़कर अपने बच्चे के पास जाती है और उसे उठाती है। थोड़ी दूर तक वह अपने बच्चे को लेकर चलती है और फिर वहीं पर गिर जाती है। इस तरह शिवमूर्ति की रचनाओं पर जब हम विचार करते हैं तो पाते हैं कि उनके मन में गरीबों के शोषण के प्रति वितृष्णा का भाव भरा हुआ है।

सन् 1977 में जब शिवमूर्ति बिक्री कर विभाग की नौकरी के लिए चुने गए, तब उन्होंने **'कसाईबाड़ा'** और **'भरतनाट्यम्'** कहानियों को अपने मित्र बलराम जी के द्वारा **'धर्मयुग'** में छापने के लिए भेजा। उस समय **'धर्मयुग'** के संपादक धर्मवीर भारती थे। इन दोनों कहानियों में से **'कसाईबाड़ा'** कहानी को तो धर्मवीर भारती ने पत्रिका में छाप दिया, परंतु **'भरतनाट्यम्'** कहानी नहीं छापी। उन्होंने **'भरतनाट्यम्'** कहानी को यह कहकर लौटा दिया कि इसमें गालियाँ बहुत हैं। कहानी में औरत के भाग जाने वाली घटना पर उन्हें आपत्ति थी। उनका कहना था कि 'धर्मयुग' में वे गालियाँ नहीं छाप सकते। फिर शिवमूर्ति के मित्र बलराम जी ने इस वापस की गयी कहानी को 'सारिका' पत्रिका में छपवाया। सन् 1965-66 में और सन् 1967-68 में देश में भयानक सूखा पड़ा था। इसी को केंद्र में रखकर शिवमूर्ति ने **'अकाल-दंड'** नामक कहानी लिखी। सन् 1977 में अपने मित्र बलराम जी के कहने पर उन्होंने 'भूमिका' पत्रिका के लिए **'तिरिया चरित्तर'** कहानी लिख डाली, जो सन् 1991 में फिर से 'हंस' पत्रिका में प्रकाशित की गयी। इन्हीं प्रारम्भिक भावभूमि की नींव पर शिवमूर्ति के आगे के साहित्य की इमारत खड़ी की गयी है।

कथाकार शिवमूर्ति के अब तक दो कहानी संग्रह - **'केशर कस्तूरी' (1991)** और **'कुच्ची का कानून' (2017)।** प्रकाशित हुए हैं। उनके तीन उपन्यास– '**त्रिशूल' (1995), 'तर्पण' (2004)** और '**आखिरी छलाँग' (2008)** अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। उनके 'कसाईबाड़ा' कहानी का नाट्य रूपांतरण भी हुआ है। **'सृजन का रसायन'(2014)** नामक उनका एक संस्मरण प्रकाशित हुआ है। इनके साथ ही **'जैक लंडन के देश में'** और **'लू शुन के देश में'** उनके यात्रा वृतांत भी हैं। इस तरह शिवमूर्ति ने अपने लेखन के माध्यम से गद्य की प्रायः सभी विधाओं को समृद्ध किया है।

### 1.4.1 शिवमूर्ति का कहानी साहित्य

**'केशर कस्तूरी'** सन् 1991 में प्रकाशित शिवमूर्ति का पहला कहानी संग्रह है। इस कहानी संग्रह में कुल छह कहानियाँ हैं, जिनके क्रमशः नाम इस प्रकार हैं - **'कसाईबाड़ा', 'अकाल-दंड', 'सिरी उपमा जोग', 'भरतनाट्यम्', 'तिरिया चरित्तर'** और **'केशर कस्तूरी'।** इस संग्रह के संदर्भ में श्री विजय बहादुर सिंह लिखते हैं **"शिवमूर्ति की कहानियों को पढ़ते हुए मुझे अवध के लोक-समाज की गहरी अनजानी किन्तु मार्मिक जीवन झाँकियों से गुजरने का मौका हाथ लगता है, साथ ही आज़ादी के बाद की लोकतंत्र के नाम पर सक्रिय संस्थाओं के करतब और कमाल का भी साक्षात्कार होता है।"**[21] **'केशर कस्तूरी'** कहानी संग्रह की पहली कहानी **'कसाईबाड़ा'** है। इस कहानी की शुरुआत प्रधान के दरवाजे पर शनिचरी के धरने पर बैठने से होती है। कहानी की शनिचरी शोषित समाज की नारी पात्र है। वह परिस्थिति और व्यवस्था की शिकार होती है। जिस तरह कसाई अपने व्यवसाय के नाम पर जानवरों को हलाल करता है, ठीक उसी प्रकार शनिचरी के गाँव का प्रधान सामूहिक विवाह की आड़ में गाँव की बेटियों को वेश्या व्यवसाय

में ढकेलता है, जिसमें शनिचरी की बेटी भी है। इस कार्य के लिये प्रधान का विरोध करने वाला लीडर शनिचरी के जरिए अपने स्वार्थ की पूर्ति करना चाहता है। लीडर असल में एक स्कूल का मास्टर है। प्राइमरी स्कूल की मास्टरी से वह ऊब चुका है। उसे ब्लॉक प्रमुख, फिर एम. एल. ए. और उसके बाद मिनिस्टर बनकर देश-विदेश की यात्रा  करने का भूत सवार है। शनिचरी के माध्यम से उसे बैठे-बिठाए एक मौका मिल जाता है, जिससे वह अपना उल्लू सीधा करता है। लीडर शनिचरी को गांधीजी का फोटो देकर उनके अनशन के बारें में जानकारी देता है और उसे अनशन करने के लिए भड़काता है। सही मौका पाकर लीडर कोरे सरकारी कागज़ पर शनिचरी के अंगूठे का निशान लेकर उसकी जमीन हडप लेता है।

**'कसाईबाड़ा'** कहानी में एक अधपगला पात्र है, जिसका नाम अधरंगी है। यह पात्र शनिचरी का अंत तक साथ देता है। प्रधान की पत्नी प्रधाइन  और लीडर की पत्नी लीडराइन दोनों अपने-अपने पतियों के खिलाफ आवाज़ उठाती हैं, किन्तु उनकी आवाज़ें उनके घरों की चारदीवारी तक ही सीमित रह जाती हैं। प्रधान धोखे से शनिचरी को अपनी पत्नी के हाथों जहर दिलवाकर मार डालता है। प्रधाइन को जब पता चलता है कि उसके पति ने उसके साथ छल किया है, तब वह अपने बेटे को लेकर अपने पति का घर त्याग देती है। इसी तरह लीडर की पत्नी को भी जब पता चलता है कि उसके पति ने धोखे से शनिचरी के अंगूठे का निशान सरकारी कागज़ पर लेकर उसकी जमीन अपने नाम करवा ली है, तब वह भी यह कहकर अपने पति का घर त्याग देती है -**"तुम लोग कसाई हो। सारा गाँव कसाईबाड़ा है। मैं नहीं रहूँगी इस गाँव में।"**[22] प्रस्तुत कहानी में प्रधाइन और लीडराइन के विचार पुरुषवादी सोच पर स्त्रियों की जागरूकता का प्रमाण है। दोनों स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों के अमानवीय कृत्य का विरोध करती हैं। शासन

व्यवस्था के भ्रष्ट रूप को कहानी का दारोगा साकार करता है, जो लीडर और प्रधान जैसे गलत लोगों का साथ देता है। इस कहानी में पूरा गाँव कसाई की निर्मम भूमिका निभाता हुआ दिखाई देता है। यदि कोई इस निर्मम भूमिका से अछूता है तो वह है - अधरंगी। अधरंगी भचक-भचक कर  चलता है। अधरंगी की तरह ही हमारी न्याय व्यवस्था भी भचक-भचक कर चल रही है। इस प्रकार **'कसाईबाड़ा'** कहानी में शिवमूर्ति ने बहुत ही दयनीय अवस्था में पहुँची भारतीय ग्रामीण नारी की दशा, भ्रष्ट शासन व्यवस्था एवं आज की उपभोक्तावादी संस्कृति का यथार्थ चित्रण किया है।

**'केशर कस्तूरी'** संग्रह की दूसरी कहानी है - **'अकाल-दंड'**। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने सन् 1966-68 में उत्तर भारत में पड़े अकाल का चित्रण किया है। कहानी की सुरजी विद्रोह और विरोध की नई संस्कृति का निर्माण करनेवाली स्त्री है। अकाल के कारण गाँव में राहत सामग्री बाँटनेवाला सेक्रेटरी गाँव के रंगी बाबू से मिलकर राहत सामग्री की काला बाजारी करता है और गाँव की औरतों पर बुरी नज़र रखता है। एक तरफ सुरजी इसका विरोध करती हुई स्वयं सेक्रेटरी को दंड देती है, तो दूसरी तरफ रंगी बाबू की बेटी माला सेक्रेटरी के साथ दैहिक संबंध स्थापित करके अपने लिए सरकारी नौकरी हासिल करती है। सेक्रेटरी सुरजी को शारीरिक रूप से पाने के लिये रंगी बाबू का साथ लेता है। वह झूठी कहानी बनाकर रंगी बाबू के जरिए सुरजी को अपने तम्बू में बुलाता है। सुरजी को सेक्रेटरी की हरकत का आभास पहले से था, क्योंकि एक बार पहले सेक्रेटरी उसे पाने की कोशिश कर चुका था। इसमें सुरजी ने सेक्रेटरी को धक्का देकर उसके दाँत तोड़ दिये थे। इस बार सुरजी सेक्रेटरी के शरीर का सबसे नाजुक हिस्सा ही काटकर उसे ऐसी सज़ा देती है कि वह फिर गाँव की किसी दूसरी स्त्री पर बुरी

नज़र न डाले। इस कहानी में शिवमूर्ति ने ग्रामीण परिवेश की स्त्री में आई जागरूकता को उजागर किया है।

संग्रह की तीसरी कहानी **'सिरी उपमा जोग' में** एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जो अपने पति को पढ़ा-लिखाकर इतना काबिल बनाती है कि उसका पति एक बड़ा सरकारी अफसर बन जाता है, किन्तु बड़ा अफसर बनने के बाद वह अपने गाँव की उस पत्नी को छोड़कर शहर में एक नयी गृहस्थी बसा लेता है। गाँव से शहर में आए लोग किस तरह अपने गाँव तथा वहाँ के लोगों को भुला देते हैं, इसका ज्वलंत चित्रण इस कहानी में हमें देखने को मिलता है। नये बने धनाढ्यों की आज यही वस्तुस्थिति है। यही इस कहानी का कथ्य है। कहानीकार ने इस कहानी में ग्रामीण नारी की संवेदना को स्पष्ट करते हुए उसकी असहायता का मार्मिक चित्रण किया है। कहानी के अंत में अफसर बना पिता अपने ग्रामीण बेटे को अपने घर के बाहर न पाकर चैन की साँस लेता है। असल में यह उसकी मानसिकता पर तीखा व्यंग्य है कि उसने उस पत्नी के साथ धोखा किया, जिसने अपना सब कुछ लुटाकर उसे काबिल बनाया। लेखक बताना चाहता है कि गाँव से शहर में विस्थापित हुए या नव-शहराती बने समाज में आज गाँव की सादगी लुप्त होती जा रही है। शहर की बनावटी संस्कृति ऐसे समाज पर इस कदर छा जाती है कि यह समाज पीछे मुड़कर गाँव की तरफ देखना नहीं चाहता। वर्तमान दौर में आदमी इतना महत्वाकांक्षी और नकली हो गया है कि वह अपनी जड़ों से अलग होता जा रहा है। अपनों को धोखा देकर वह अपने आप को सभ्य कहलाता है। शिवमूर्ति ने इस कहानी में जहाँ एक स्त्री के त्याग और समर्पण को पाठकों के समक्ष रखा है, वहीं पुरुष के स्वार्थ की चरम सीमा को भी दिखाया है।

**'केशर कस्तूरी'** संग्रह की **'भरतनाट्यम्'** कहानी भ्रष्टाचार, बेरोजगारी एवं बेवफाई आदि समाज में व्याप्त कई समस्याओं को उद्घाटित करती है। साथ ही यह कहानी बेटा-बेटी में किये जानेवाले भेदभाव को भी उजागर करती है। इसमें कहानी के नायक का परिस्थितिवश ईमानदारी से बेईमानी पर उतरना और फिर उस परिस्थिति में अपने आप को अकेला पाना, दिखाया गया है। **'भरतनाट्यम्'** कहानी में एक पिता भी है, जिसकी अपने पढे-लिखे बेटे से काफ़ी उम्मीदें हैं। यह वह परिवार है जो घर के एक बेरोजगार सदस्य का सम्मान करना नहीं जानता। बेरोजगार व्यक्ति की पत्नी, पुत्र प्राप्ति की चाहत में अपने जेठ से अनैतिक संबंध रखती है, फिर भी वह चुप रहता है। इस प्रकार अपने बेरोजगार होने का अहसास उसे अपने उसूलों के खिलाफ चलने के लिये मजबूर करता है। अंत में कहानी का नायक 'मैं' यानी ज्ञान अपनी नैतिकता और आत्मा की आवाज़ को दबाकर अपने घर में सुख-शांति बनाए रखने के लिए मिट्टी के तेल का लाइसेंस पाने के लिए घूस देता है। जब ज्ञान खुश होकर अपने घर लौटता है, तब वह पाता है कि उसकी पत्नी गाँव के एक दर्जी के साथ घर छोड़कर भाग गयी है। शिवमूर्ति ने इस कहानी में एक पढे-लिखे बेरोजगार युवक की त्रासदी, भ्रष्टाचार, शिक्षा का व्यवसायीकरण एवं शिक्षकों पर होनेवाले शोषण आदि पर कुठाराघात किया है। साथ ही स्त्री की अतृप्त वासना, एक संयुक्त परिवार की विसंगतियाँ, सरकारी कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार आदि को भी हमारे समक्ष रखा है।

**'तिरिया चरित्तर'** कहानी **'केशर कस्तूरी'** संग्रह की पाँचवीं कहानी है। यह कहानी हमारे समक्ष उस पुरुष-प्रधान समाज का चरित्र उजागर करती है, जो किसी न किसी तरह से स्त्री को सिर्फ भोगना चाहता है। कहानी के प्रारंभ में लगता है कि यह कहानी स्त्री अस्मिता की दास्तान है, किन्तु जैसे-जैसे यह कहानी आगे बढ़ती है, इसमें पितृसत्ता के प्रतिमानों की स्थापना दिखाई देने

लगती है। कहानी की नायिका 'विमली' में अपने पति के प्रति एकनिष्ठ प्रेम है। वह अपने अनदेखे पति के प्रति बहुत ही ईमानदार है, जबकि उसका अपना ससुर बिसराम उसे धोखे में रखकर उसका बलात्कार करता है। विमली इसके विरोध में आवाज़ तो उठाती है, परंतु ससुर बिसराम उसे चरित्रहीन साबित करके पंचायत की सहमति से उसके माथे को दागकर उसे सज़ा देता है। यहाँ लेखक द्वारा पितातुल्य ससुर के दुश्चरित्र को उजागर किया गया है। लेखक बताना चाहता है कि आज बहू-बेटियाँ अपने घरों में सुरक्षित नहीं हैं। कहानी के अंत में गाँव के पुजारी जी बड़े ही भारी मन से कहते हैं -**"तिरिया चरित्र समझना आसान नहीं। बाबा भरथरी ने झूठ थोड़े कहा है। तिरिया चरित्रम् पुरुखष्य भाग्यम्.....बीसों सिर एक साथ सहमति में हिलते हैं।"**[23] ध्यातव्य है कि ये वही पुजारी जी हैं जिन्होंने विमली को दंड के रूप में यह प्रस्ताव रखा था कि यदि विमली किसी बाल ब्रह्मचारी की सेवा करे या शिवाले पर छह महीने तक झाड़ू लगाए तो वह अपने पाप का प्रायश्चित कर सकती है। कहा जा सकता है कि पूर्वार्द्ध में जो यह कहानी स्त्री चेतना की लहर के साथ आगे बढ़ती है, वही यह कहानी उत्तरार्द्ध में स्त्री चेतना की लहर को नेस्तनाबूद कर देती है। नारी सुरक्षा के मुद्दे से जुड़ी यह कहानी हमारी पंचायती व्यवस्था पर एक प्रश्न चिह्न् खड़ा करती है।

**'केशर कस्तूरी'** कहानी संग्रह की छठी और अंतिम कहानी स्वयं **'केशर कस्तूरी'** है। यही इस कहानी संग्रह का शीर्षक भी है। कहानी की नायिका केशर एक बाल-विवाहिता है। केशर ऐसी लड़की का प्रतिनिधित्व करती है, जिसे अगर उचित अवसर मिले तो वह अपनी काबिलीयत की कस्तूरी चारों ओर बिखेर सकती है। अपनी दीन-हीन परिस्थितियों के बावजूद केशर में आत्म-सम्मान कूट-कूटकर भरा है। वह नारी सशक्तीकरण की मिसाल है। पारिवारिक आपसी बँटवारे

में केशर के साथ उसके जेठ-जेठानी छल करते हैं। बूढ़ी सास और कर्ज दोनों का बोझ केशर और उसके पति पर थोप दिया जाता है। इन सबसे परेशान केशर पर उसका पति भी अविश्वास करता है और काम का बहाना बनाकर घर से दूर चला जाता है। केशर अपनी बूढ़ी, बीमार सास की तीमारदारी करती है। सिलाई की मशीन चलाकर अपनी बिगड़ी गृहस्थी को संभालती है। केशर के पिता उसकी हालत देखकर जब उसे अपने साथ ले जाने की बात करते हैं, तब वह कहती है - **"दुख तो काटने से ही कटेगा। बप्पा'। केशर चूल्हे की आग तेज करते हुए बोली, 'भागने से तो और पिछुआएगा।"**[24] इस कहानी में गृहस्थी के बोझ से घिसती-पिसती अपने शांत व करुण स्वभाव से परिस्थितियों का सामना करती केशर को दिखाया गया है, जो आज के समाज में जहाँ-तहाँ देखने को मिल जाती हैं। यही नारी का सच है।

**'कुच्ची का कानून'** सन् 2017 में प्रकाशित शिवमूर्ति का दूसरा कहानी संग्रह है। इस संग्रह में कुल चार कहानियाँ संकलित हैं। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं – **'ख्वाजा, ओ मेरे पीर !'**, **'बनाना रिपब्लिक'**, **'कुच्ची का कानून'**, और **'जुल्मी'**। इस संग्रह के संबंध में कथाकार एवं समीक्षक विनय दास जी कहते हैं - **"अगर शिवमूर्ति आज भी अपने उन तमाम सम उम्र, नये-पुराने कहानीकारों के बीच आकर्षण का केंद्र हैं तो इसका मूल कारण उनके कथा की वह जमीन है, जो देश की 75 प्रतिशत आबादी का प्रतिनिधित्व करती है। आज भी उनकी कहानी 'ख्वाजा, ओ मेरे पीर!', 'बनाना रिपब्लिक', 'कुच्ची का कानून', तथा 'जुल्मी' उसी जमीन, उन्हीं अनुभवों के संवेदनात्मक प्रत्याख्यान हैं।"**[25] आशय यह कि शिवमूर्ति की अधिकांश कहानियाँ गाँव के लोगों के जीवन की समस्याओं और गाँव के तथाकथित विकास के सच का खुलासा करतीं हैं।

**'कुच्ची का कानून'** संग्रह की पहली कहानी **'ख्वाजा, ओ मेरे पीर!'** है। इस कहानी में लेखक ने अपने मामा-मामी के दाम्पत्य जीवन को प्रमुखता से प्रस्तुत किया है। लेखक के मामा-मामी विवाह के पश्चात् एक छत के नीचे कभी नहीं रहे। फिर भी अपनी गृहस्थी वे दोनों आजीवन चलाते रहे। परिस्थितियों के चलते अलग रहनेवाले मामा-मामी अपनी-अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहण बखूबी करते थे। मामी अपने माँ-बाप की अकेली संतान थीं। उनका विवाह इस शर्त पर किया गया था कि मामा घर जमाई बनकर अपने ससुराल में रहेंगे, किन्तु मामा मृत्यु के समय अपने पिता को अपनी माँ और अपने छोटे भाइयों की ज़िम्मेदारी उठाने का वचन देते हैं। इसी वचन की पूर्ति के लिए वे अपनी ससुराल नहीं जाते। ऐसे में लेखक की मामी की पहल से दोनों के दाम्पत्य जीवन की शुरुआत होती है। मामी मायके का सब काम निपटाकर, अपने माता-पिता को खाना खिला-पिला कर अपने पति से मिलने डेढ़-दो घंटे का रास्ता पैदल तय करके उनके खेतों पर आती हैं। इससे वह अपने परिवार के वंश को आगे बढ़ाती हैं। पति-पत्नी दोनों ही आजीवन एक-दूसरे के साथ नहीं रह पाते, फिर भी अपने वंश की वृद्धि करते हैं। ध्यातव्य है कि इस कहानी की प्रमुख पात्र 'मामी' का ही लगातार 'मामा' के पास भाग-भागकर जाना और वह भी रात्रि के कुछ पलों के लिये, यह अपने-आपमें अदभुत प्रसंग है। इसे मात्र संतान प्राप्ति तक सीमित करके नहीं देखा जा सकता। मामी का नदी, रेत, ऊसर रात-बिरात दौड़ते-भागते मामा के पास जाना उस आदम और हव्वा की दास्तान है, जो सदियों पहले सुनी गयी थी और सृष्टि के आखिरी क्षणों तक सुनी जाती रहेगी।

**'कुच्ची का कानून'** संग्रह की दूसरी कहानी **'बनाना रिपब्लिक'** है। इस कहानी में जग्गू हरिजन के माध्यम से आज दलित समाज में आयी चेतना को उजागर किया गया है। कहानी में खुलासा किया गया है कि आज का दलित

समाज उच्च जाति के द्वारा किए गये भेदभाव को अच्छी तरह जानता व समझता है। हम सभी जानते हैं कि जाति-भेद भारतीय समाज का कड़वा सच है। हम यह भी जानते हैं कि संविधान ने दलित समाज के लिए शिक्षा, सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्रों में नौकरी एवं चुनाव प्रणाली में आरक्षण देकर इस समाज को मजबूती के साथ खड़ा होने का अवसर प्रदान किया है। फिर भी उच्च वर्ग के लोग चुनाव के आरक्षित सीटों पर अपने मनोनुकूल प्रत्याशी खड़ा कराते हैं, ताकि वे उनपर अपना प्रभुत्व बरकरार रखें। प्रस्तुत कहानी में ठाकुर द्वारा प्रायोजित प्रत्याशी जग्गू जब प्रधानी का चुनाव जीत जाता है, तब वह ठाकुर की ड्योढ़ी पर नहीं जाता। इस बात की अपेक्षा ठाकुर को पहले बिलकुल नहीं थी। ठाकुर को अब समझ में आ जाता है कि उस **'गधे को बाप बनाना पड़ेगा',** इसलिए वे खुद माला लेकर चुनाव जीतने के जश्न को मनाने के लिए जग्गू के द्वार पर पहुँच जाते हैं। उसे अपने हाथ से माला पहनाते हैं और उसका पानी भी पीते हैं। कहानी का संदेश है कि उच्च जाति के लोगों को अब जाति-पाति की दीवार को तोड़कर ही दलित समाज  का साथ प्राप्त हो सकता है। दलितों में अब जागरूकता आ गयी है, इसका प्रमुख कारण है उनमें शिक्षा का प्रचार-प्रसार। साथ ही लेखक यह भी बताना नहीं भूलता कि चुनाव के पहले ही जग्गू ने यह सोच लिया था कि प्रधानी जीतने के बाद वह भी 'ठाकुर-बाभन' की तरह अपने और दूसरे लोगों का शोषण करेगा। कहानी में दलित समाज की इस मानसिकता और उसके अंतर्विरोध को भी वाणी दी गयी है।

**'कुच्ची का कानून'** संग्रह की तीसरी कहानी **'कुच्ची का कानून'** है। यही इस कहानी का शीर्षक भी है। शिवमूर्ति की यह कहानी एक 'बोल्ड लूक' लेकर आयी कहानी है। विधवा कुच्ची मायके की शरण न लेकर बूढ़े सास-ससुर की सेवा का बीड़ा उठाती है। वह स्त्री-विरोधी समाज में अपने परिवार की सेवा-सुरक्षा के

लिए खड़ी होती है। कुच्ची विधवा है, फिर भी वह दूसरे के बीज से गर्भ धारण कर अपना वारिस पैदा करना चाहती है। गाँव की पंचायत के सामने वह अपनी कोख पर अपना हक माँगती है और इसमें वह कामयाब भी होती है। कहानी की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि शिवमूर्ति ने अपनी इस कहानी में आधुनिक विमर्श को पढ़ी-लिखी स्त्री के माध्यम से आगे नहीं बढ़ाया है, बल्कि गाँव की एक साधारण सी स्त्री के जरिए आगे बढ़ाया है। अपने आंतरिक एवं वैचारिक बल पर गाँव की कुच्ची शहर के अस्पताल की परिचारिका 'कुट्टी' के संपर्क में आकर परिवर्तन की मशाल जलाती है। वह अपने तथा अपने सास-ससुर पर हो रहे अन्याय के खिलाफ खड़ी होती है। **'कुच्ची का कानून'** गाँव के गहरे कुएँ से बाहर जाते रास्ते की कहानी है, जिसे कुच्ची नाम की एक युवा विधवा अपनी कोख पर अपने अधिकार की अभूतपूर्व घोषणा के साथ प्रशस्त करती है।

**'जुल्मी'** इस संग्रह की चौथी और अंतिम कहानी है। **'जुल्मी'** कहानी कुछ हद तक **'ख्वाजा, ओ मेरे पीर!'** कहानी से मेल खाती नज़र आती है। नव-विवाहिता कोइली को उसका ससुर उसके मरणासन्न अवस्था में पड़े भाई को आखिरी बार देखने जाने की इजाजत नहीं देता और न ही उसका पति इस प्रसंग में उसका साथ देता है। कोइली बिना अपने पति को साथ लिये अपने मायके चली जाती है। उसके ससुर उसके भाई की तेरहवीं में आते जरूर हैं, लेकिन अपनी बहू कोइली की बिदाई के बारें में एक शब्द भी नहीं बोलते। उधर कोइली के माता-पिता भी इकलौते पुत्र के जाने के गम में बेटी की विदाई के बारें में नहीं सोचते। दिन बीतते जाते हैं और कोइली के माता-पिता इस इंतज़ार में रहते हैं कि उसके ससुराल से कोई तो संदेशा आएगा। असल में उसका पति उसे लेने आना तो चाहता है, किन्तु बिना भात खाने की रस्म निभाए वह ससुराल आ नहीं सकता था। दोनों पक्षों की जिद और नासमझी के कारण एक सुखी दाम्पत्य जीवन

तहस-नहस हो जाता है। आठ साल के बाद घर में आए मेहमानों को देखकर कोइली बहुत खुश होती है। उसे लगता है कि आठ साल के लंबे इंतज़ार के बाद उसका पति उसे लेने आया है। असल में घर में आए मेहमानों के साथ उसका पहला पति नहीं, बल्कि उसके लिये पिता द्वारा खोजा गया दूसरा वर था। उसके पहले पति ने दूसरी शादी कर ली है, यह जानकर उस पर जैसे दुखों का पहाड़ टूट पड़ता है। बड़े भारी मन से वह अपने दूसरे पति के साथ ससुराल जाती है। करीब पंद्रह साल के बाद कोइली की बुआ एक मेले में उसके पहले पति से उसे मिलवाती है। दोनों एक-दूसरे से गले मिलते हैं और अपनी जिंदगी के पिछले पंद्रह सालों का हिसाब-किताब लगाते हैं। इसी मोड़ पर आकर कहानी समाप्त हो जाती है। प्रस्तुत कहानी पति-पत्नी के रिश्तों में विघटन की समस्या का परदाफ़ाश करती है। कैसे 'राई का पहाड़' बनाकर एक सुखी परिवार नष्ट हो जाता है, इसका ज्वलंत उदाहरण इस कहानी में देखा जा सकता है। रिश्तों में अहं के लिये कोई स्थान नहीं है। यही इस कहानी का मूल कथ्य है। यहाँ **'जुल्मी'** शब्द कोइली ने अपने पति के लिये संबोधित किया है।

वस्तुतः शिवमूर्ति की कहानियाँ स्त्री जीवन की व्यथा-कथा हैं। साथ ही उनमें आज़ादी के बाद का भारतीय ग्रामीण जीवन, वहाँ की उठा-पटक, उच्च वर्ग के तमाम तरह के दाँव-पेंच, दलित वर्ग की राजनीतिक चेतना और उसका प्रतिरोधी स्वर आदि सब कुछ भरा पड़ा है।

### 1.4.2 शिवमूर्ति का उपन्यास साहित्य

कथाकार शिवमूर्ति ने अपने उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया है। वे उपन्यासों में एक नयी दृष्टि और एक नये तेवर के साथ पाठकों के समक्ष उपस्थित होते हैं। उनके उपन्यासों की विषय-वस्तु हमेशा ऐसे समाज के

चित्रण की होती है, जो अन्याय के खिलाफ छटपटा रहा है और उसके खिलाफ खड़ा होने का प्रयास कर रहा है। लेखक का हर उपन्यास अलग-अलग पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर लिखा गया है। **'त्रिशूल'** उपन्यास में लेखक ने सांप्रदायिकता और जातिवाद को बहुत ही व्यापक स्तर पर उठाया है और उन दोनों की वास्तविकता को बेनकाब किया है। **'त्रिशूल'** प्रतीक है, धार्मिक उन्माद का, जिसमें तीन शूल हैं जो समाज को गहरे जख्म करते हैं। अपने दूसरे उपन्यास **'तर्पण'** में लेखक ने जाति व्यवस्था को बड़ी बारीकी और मनोवैज्ञानिक तरीके से व्यक्त किया है। लेखक ने पूरे उपन्यास में दलितों के भीतर जागने वाली स्वाभाविक चेतना को पकड़ने की कोशिश की है, जबकि सवर्ण लोग इस चेतना और विद्रोह को स्वीकार करना नहीं चाहते। वे पुरानी परंपरा को बनाये रखना चाहते हैं। यह उपन्यास पुरानी परंपरा और नयी चेतना की लड़ाई को व्यक्त करता है और बताता है कि दलित की मुक्ति उनके संघर्ष करने में ही है। लेखक के तीसरे उपन्यास **'आखिरी छलांग'** का नायक इक्कीसवीं सदी के अवध का किसान है। वह पहलवान भी है, लेकिन उसकी पहलवानी उसके किसी काम नहीं आती। अपनी सभी सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को ठेंगा दिखाते हुए यह पहलवान किसानों की आत्महत्या के विरुद्ध आखिरी छलांग लगाता है। मौत के खिलाफ लगायी गयी पहलवान की यह छलांग अदम्य साहस और जिजीविषा का प्रतीक है।

**त्रिशूल :-** बाबरी मस्जिद की पार्श्वभूमि में लिखा गया **'त्रिशूल'** उपन्यास शिवमूर्ति का पहला और चर्चित उपन्यास है। यह उपन्यास सन् 1995 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के केंद्र में बाबरी मस्जिद का ध्वंस है, जो काफ़ी विवादित भी रहा। बाबरी मस्जिद के ध्वंस ने देश विभाजन की त्रासदी को पुनर्जीवित कर दिया था और एक बार फिर हमारा देश उस भयावहता को भुगत

रहा था। जातिवाद, धर्मांधता एवं सांप्रदायिकता हमारे समाज में कूट-कूटकर भरे हुए हैं। इस आग को सांप्रदायिकता के धुएँ से सुलगाकर सदियों से इसका फायदा कुछ लोगों ने उठाया है और आज भी उठा रहें हैं। धर्म, जाति और उच्च वर्ग के ठेकेदार आदमी-आदमी के बीच की खाई को कम करने की बजाय और बढ़ा रहें हैं। ध्यातव्य है कि यह उपन्यास केवल मंदिर-मस्जिद के मसले की ही सचाई नहीं कहता, अपितु समाज में व्याप्त उथल-पुथल और टूटन को भी दर्शाता है। इस उपन्यास की कथा एक साथ कई मुद्दों को लेकर आगे बढ़ती है। नफरत, धोखा, जाति-पाति, धर्म आदि के घेरे में बंधी-फँसी जनता के लिये यह रचना आपसी सौहार्द और भाईचारे को बढ़ावा देने का मार्ग प्रशस्त करती है। असल में यह उपन्यास अन्याय तथा असमानता के खिलाफ एक आवाज है, जिसका उदेश्य समाज को जागरूक करना है। उपन्यास की कथा केवल महमूद और 'मैं' यानी लेखक के बीच की नहीं है, बल्कि ऐसे कितने ही भारतीयों की है, जो चाहते हैं कि समाज से हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव एवं वैमनस्य समाप्त हो और दोनों धर्मों के लोग सदभाव से एक साथ रहें। उपन्यास में ऐसे अनेक चरित्रों का उद्घाटन किया गया है, जो समाज में धर्म और जाति के नाम पर लोगों को भड़काते हैं तथा अशांति को बढ़ावा देते हैं। उपन्यास की घटनाएँ, सामयिक जीवन की हलचलों के साथ कदम से कदम मिलाकर इस प्रकार चलती हैं कि पाठक किसी भूल-भुलैया में नहीं फँसता, बल्कि वह  सीधे उपन्यास के कथ्य तक पहुँचता है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने हिन्दू-मुस्लिम के बीच दबी मानवता को उभारकर समाज तक पहुँचाने का प्रयास किया है ।

**तर्पण :- 'तर्पण'** लेखक का दूसरा चर्चित उपन्यास है, जो सन् 2004 में प्रकाशित हुआ। लेखक ने इस उपन्यास में भारतीय उच्च वर्गीय समाज के खिलाफ शोषित, दलित और पीड़ित वर्ग के प्रतिरोध को प्रस्तुत किया है। इसमें

एक तरफ हजारों वर्षों से शोषितों के दुख, अभाव और उन पर होने वाले अत्याचार का चित्रण है, तो दूसरी तरफ समाज में बढ़ रहे अधिकारों के प्रति उनकी जागरूकता को भी स्वर दिया गया है। उपन्यास की कथा में ब्राह्मण समाज के अत्याचारों का मुक़ाबला दलित वर्ग की जातियाँ करती हैं, जो अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं। 'अब और नहीं, बस्स, बहुत हो चुका' के सिद्धांत को यहाँ वाणी दी गयी है। दलित समाज बहुत कुछ सह चुका है, अब उसकी बहू-बेटियाँ उच्च वर्णों के हवस का शिकार नहीं होंगी। इसी की पुष्टि यह उपन्यास करता है। भविष्य में दलित समाज की बहू-बेटियाँ सुरक्षित रहें, इसके लिए लेखक चंदर जैसे ब्राह्मण युवक को सज़ा दिलाना चाहता है। चंदर गाँव के धरमू पंडित का बेटा है जो दलित लड़की रजपतिया का बलात्कार करना चाहता है। संभवतः वह अपने मनसूबे में कामयाब भी हो जाता, अगर ऐन मौके पर खेत में काम करने वाली स्त्रियाँ आकर रजपतिया को न बचातीं। इसी बात पर जागरूक दलित समाज चंदर को सज़ा दिलाना चाहता है। **'तर्पण'** भारतीय समाज और राजनीति में दलितों की नयी करवट या यूं कहिए कि उनमें शिक्षा के कारण आयी जागरूकता का संकेत है। दलित समाज में जो अन्याय, अत्याचार अथवा दलित स्त्रियों की इज़्ज़त आदि को लेकर जो प्रश्न उठते हैं, उसी का तर्पण करना इस उपन्यास में लेखक की कामयाब कोशिश है।

**आखिरी छलांग** :- लेखक का **'आखिरी छलांग'** उपन्यास सन् 2008 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास आज के किसान की त्रासदी को एक स्वर देता है। उपन्यास में किसान की आर्थिक स्थिति, उसकी खाद, पानी, बीज़ की समस्याएँ, बेटी का विवाह, बेटे की पढ़ाई का खर्च आदि सभी से जूझते किसान का यथार्थ चित्रण मिलता है। मूल रूप से इस उपन्यास के केंद्र में किसान और उसकी त्रासदी है। भारतीय इतिहास में किसानों का स्वर्ण युग कभी नहीं रहा, जबकि

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ किसान का जीवन हमेशा संघर्षों से भरा हुआ रहा। शिवमूर्ति ने किसानों की इसी वास्तविकता का बड़ा मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। सरकार इस संदर्भ में दावे तो बहुत करती है, किन्तु असलियत में किसानों की कोई नहीं सुनता। बैंक से कर्ज के रूप में लिये गये चंद हजार रुपये न चुकाने पर स्वाभिमान की रक्षा में देश का किसान आत्महत्या करने को विवश है। उपन्यास का नायक एक पहलवान है, जो मौत के साथ समझौता नहीं करता और वह जीवन से हार नहीं मानता। उसे मालूम है कि आत्महत्या किसी भी समस्या का समाधान नहीं है। इस प्रकार **'आखिरी छलांग'** जीवन के प्रति सकारात्मक सोच रखनेवाले 'पहलवान' का प्रतीक है जो उपन्यास के अंत में निडर होकर अखाड़े की छलांग लगाता है। पहलवान की यह छलांग मात्र अखाड़े में की गयी उसकी क्रीड़ा नहीं है, बल्कि यह किसानों की आत्महत्या एवं उनकी तकलीफ़ों के खिलाफ की गई छलांग है। पहलवान की यह छलांग किसानों में आशा का संचार करती है। उपन्यास का पहलवान किसान अपनी समस्याओं से दो-दो हाथ करने का सामर्थ्य रखता है। वह मौत से समझौता नहीं करता और न ही अपनी परिस्थिति से हार मानता है। शिवमूर्ति का **'आखिरी छलांग'** उपन्यास जीवन के प्रति सकारात्मक सोच रखने की एक पहल करता है।

### 1.4.3 शिवमूर्ति का कथेतर साहित्य

शिवमूर्ति ने सिर्फ एक नाटक लिखा है जो वास्तव में उनकी कहानी 'कसाईबाड़ा' का ही नाट्य-रूपांतरण है। यह नाटक सन् 1984 में प्रकाशित हुआ। 'कसाईबाड़ा' का मंचन देश भर में अनेक नाट्य मंडलियों द्वारा किया गया। कहानी के रूप में शिवमूर्ति की यह रचना केवल पढे-लिखे लोगों तक ही सीमित

रही, किन्तु इसके मंचन से यह कृति अशिक्षित व आम जन तक भी अपना संदेश लेकर गई। यह इस रचना की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

शिवमूर्ति की 'तिरिया चरित्तर' नामक कहानी का भी मंचन हुआ है, किन्तु इसके नाट्यरूपांतरण का एक दिलचस्प किस्सा भी है। एक बार पटना के प्रसिद्ध क्रांतिकारी नाटककार गुरुशरण जी ने पटना के रंगकर्मियों के लिए पटना सायंस कॉलेज के जिम्नाजियम हॉल में 'नाटक-वर्कशॉप' का आयोजन किया। यह वर्कशॉप केवल बातचीत या भाषणबाजी का नहीं था, बल्कि यहाँ पर असलियत में एक नाटक भी खेला जाना था। गुरुशरण जी ने जब रंगकर्मियों से पूछा कि **"कौन-सा नाटक करना चाहते हो? सभी ने एक स्वर से उत्तर दिया, 'तिरिया चरित्तर' और लड़कों (रंगकर्मियों) ने 'हंस' की प्रति आगे बढ़ा दी।"**[26] गुरुशरण जी ने सबकी बात मानते हुए एक लड़के से कहानी का पाठ प्रस्तुत करने के लिये कहा। कहानी के पाठ के बाद दृश्यों को बाँटा गया और पात्रों का चयन किया गया। इसके पश्चात् सभी को अपने-अपने हिस्से का संवाद बोलने के लिये कहा गया। जैसे-जैसे रंगकर्मी अपने 'डायलॉग' बोलते, वैसे-वैसे एक लड़का उसे लिखता जाता। इस तरह मंचीय प्रस्तुति के लिए 'तिरिया चरित्तर' कहानी का नाटक तैयार किया गया। पटना के वरिष्ठ कहानीकार एवं आलोचक राणा प्रताप के समक्ष इस नाटक की प्रस्तुति शुरू से अंत तक हुई। वे इस संदर्भ में खुद कहते हैं **"अंतिम दिन देखा, सभी लड़के-लड़कियों के चेहरे पर एक ताजगी थी। खुद से नाटक तैयार करने की जो खुशी थी, उनके चेहरे पर साफ झलक रही थी। इतनी सहजता से कोई कैसे नाटक तैयार कर सकता है? यह देख मैं हैरान था! मगर सब कुछ मेरी आँखों के सामने घटित हो रहा था, इसलिए अविश्वास की कोई बात ही नहीं थी। सामूहिक कला की सामूहिक प्रस्तुति भी देखने लायक थी !"**[27] यह सब शिवमूर्ति की संवाद शैली की कलात्मकता के कारण संभव हो सका था।

कहानी लिखी ही ऐसी गई थी कि उसमें संवाद पहले से ही मंचन के लिए मौज़ूद थे।

शिवमूर्ति की बहुत चर्चित कहानी **'कुच्ची का कानून'** का भी मंचन किया गया है। महिलाओं को रचनात्मक सशक्तीकरण प्रदान करने वाली 'कोरस' नामक पटना की एक संस्था ने इस कहानी का मंचन किया है। इस नाटक का मंचन देखने के लिये स्वयं वरिष्ठ कथाकार मदन मोहन उपस्थित थे। नाटक का उत्कृष्ट निर्देशन एवं कुच्ची के किरदार को मंच पर बखूबी निभाने के कारण कथाकार मदन मोहन ने 'कोरस' संस्था की सचिव समता राय को स्मृति चिहन प्रदान किया। शिवमूर्ति की कहानी की 'कुच्ची' एक सशक्त स्त्री विमर्श को प्रस्तुत करती है। पूरी पंचायत और गाँव वालों को निरुत्तर कर देने वाली कुच्ची शायद ही किसी रचनाकार की रचना में मौज़ूद हो।

शिवमूर्ति ने **'सृजन का रसायन'** संस्मरण - पुस्तक में अपने बचपन से लेकर युवावस्था तक जो जिया, भोगा, सहा एवं अनुभव किया, उसका विस्तृत वर्णन किया है। सन् 2014 में प्रकाशित लेखक का यह संस्मरण उसकी वास्तविक दशा तथा उसके अंदर पनपने वाले लेखक बनने के बीज़ के बारे में अवगत कराता है। कुल नौ शीर्षकों में विभाजित इस पुस्तक में शिवमूर्ति ने अपने जीवनानुभवों का विस्तृत भंडार प्रस्तुत किया है। अपने आस-पास के लोग, जैसे मास्टर पं. देवमणि मिश्र, दर्जी जियावान, डाकू नरेश, परदेसिन अइया, नानी, माता-पिता, मामा-मामी और सखी शिवकुमारी सभी से संबंधित स्मृतियों का उद्घाटन शिवमूर्ति ने इस संस्मरण - पुस्तक में किया है। इस संस्मरण में उनके जीवन के कुछ ऐसे अविस्मरणीय क्षण दर्ज हैं, जो अब तक केवल उन तक ही सीमित थे, वे अब उनके पाठकों को भी प्रभावित करने लगे हैं। गाँव में बकरी

चराते हुए, मेले में मजमा लगाते हुए वे किस तरह सफलता की राह पर आगे बढ़े, किस तरह सर्जना के संसार में विकसित हुए, इन सभी का वर्णन इस पुस्तक में देखा जा सकता है। आज भले ही लेखक अपना गाँव छोड़कर शहर में आ बसा है, लेकिन उसके मन-मस्तिष्क में हमेशा उसका गाँव ही बसा रहता है। इस पुस्तक में गाँव की समस्याएँ, अत्याचार, सरल-सहज जीवन, लेखक के बचपन के दिन आदि सभी प्रसंग जीवंत हो उठे हैं।

**'जैक लंडन के देश में'** शीर्षक से शिवमूर्ति का यात्रा वृतांत अपने पसंदीदा लेखक जैक लंडन के बारें में बहुत कुछ बताता है। एक लेखक का दूसरे लेखक के प्रति अपना विचार एवं आदरभाव इस वृतांत में साफ देखा जा सकता है। पसंदीदा लेखक जैक लंडन की समाधि पर बिताए हुए अपने कुछ पल जैक लंडन के लिए यात्राकार श्रद्धांजलि स्वरूप अर्पित करता है। वैसे तो जैक लंडन का साहित्य शिवमूर्ति ने काफी पहले से पढ़ रखा था, किन्तु प्रत्यक्ष देखने का अवसर उन्हें प्राप्त नहीं हुआ था। इस पीड़ा को लेखक द्वारा इस वृतांत में व्यक्त किया गया है। शिवमूर्ति द्वारा लिखे गये इस यात्रा वृतांत को यात्रा वृतांत के साथ-साथ यदि संस्मरण भी कहा जाय तो गलत न होगा, क्योंकि इसमें जैक लंडन से संबंधित कुछ संस्मरणों को भी बताने की कोशिश की गयी है। इसमें बताया गया है कि लेखक ने किस प्रकार अमेरिका के पर्यटन की शुरुआत जैक लंडन की कर्मस्थली सान फ्रांसिस्को से करने की योजना बनाई थी। लेखक जब ओकलैंड में जैक लंडन का गाँव और स्मारक देखता है, तब उसका मन आनंद से तृप्त हो जाता है। यह यात्रा लेखक ने वर्ष 2012 में की थी।

**'लू शुन के देश में'** शीर्षक से शिवमूर्ति का यह दूसरा यात्रा वृतांत है। बचपन से ही शिवमूर्ति के मन में हिमालय के उस पार बसे चीनियों के जन

जीवन को जानने की तीव्र इच्छा थी। जैसे-जैसे लेखक बड़ा होता गया, वैसे-वैसे चीनियों के बारे में जानने की उत्कंठा और भी तीव्र होती गयी। सन् 1962 में जब भारत-चीन युद्ध हुआ, तब लेखक छठी कक्षा में पढ़ता था। अपनी पढ़ाई के दौरान लेखक ने चीनी यात्रियों - फ़ाहियान और हवेंनसांग के बारें में पढ़ा था, जो भारत में आये थे। इसके साथ-साथ उन्होंने चैरमैन माओ, चीन की महान दीवार तथा लू शुन को भी पढ़ा था। इससे चीन के प्रति लेखक की दिलचस्पी और भी बढ़ गयी थी। आखिरकार यात्राकार शिवमूर्ति ने अपने बचपन से लेकर जवानी तक के सपने को सन् 2009 में मूर्त रूप दिया। चीनियों के तौर-तरीके, वहाँ का किसान जीवन, उनके खान-पान, रहन-सहन आदि के बारे में लेखक ने इस वृत्तांत में काफी जानकारी दी है। इस वृतांत को देखते हुए कहा जा सकता है कि शिवमूर्ति ने अपने लेखन में केवल अपने गाँव, देश को ही केंद्र में नहीं रखा है, अपितु जहाँ-जहाँ वे गये वहाँ-वहाँ के जीवन को भी करीब से देखा और उसे अपने लेखन का विषय बनाया है।

### 1.4.4 शिवमूर्ति के साहित्य का सिने-रूपांतरण

किसी भी लेखक की यह सहज इच्छा होती है कि उसकी कृति का मंचन हो, उस पर फिल्म बने, क्योंकि दृश्य-श्रव्य माध्यम किसी भी कृति को दूर-दराज, गाँव-शहर हर व्यक्ति तक संप्रेषित करने की क्षमता रखता है। जिस तरह से पाठक उसकी कृति की सराहना करता है, उसी तरह दर्शक भी उसके नाटक या फिल्म से प्रभावित हो, यह उसकी आकांक्षा रहती है। स्वाभाविक है कि कथाकार शिवमूर्ति की भी अपनी कृतियों के संबंध में यही आकांक्षा रहती होगी। शिवमूर्ति की **'भरतनाट्यम्'** और **'कसाईबाड़ा'** कहानी पर दिल्ली और लखनऊ दूरदर्शन केन्द्रों ने आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा रंगमंच के स्थानीय कलाकारों को लेकर टेली

फिल्में बनाई हैं। 'तिरिया चरित्तर' कहानी पर विख्यात फिल्म निर्देशक बासु चटर्जी द्वारा फिल्म बनाई गयी, जिसमें हिन्दी सिनेमा के जाने-माने कलाकार ओम पुरी, नसीरुद्दीन शाह एवं राजेश्वरी आदि ने अभिनय किया।

इसके अलावा 'सिरी उपमा जोग' पर सन् 1986 में वरिष्ठ नाट्यकर्मी प्रदीप घोष ने इस कहानी पर 'मरीचिका' नाम से फिल्म बनायी। प्रदीप घोष को 'सिरी उपमा जोग' कहानी में वे सभी मानवीय संवेदनाएँ देखने को मिलीं, जो बड़ी आसानी से जनमानस को ग्राह्य हो सकती थीं। बहुत ही कम 'बजट' में इस फिल्म का निर्माण किया गया, जिसमें खुद प्रदीप जी ने कहानी के नायक की मुख्य भूमिका निभाई और निर्माण का व्यय भी खुद वहन किया। इस संदर्भ में प्रदीप घोष कहते हैं **"जादवपुर यूनिवर्सिटी (कलकत्ता) व तपन सेन 1986 में एक 'वाया मीडिया फिल्म फेस्टिवल' कर रहे थे। वहाँ हमें एन्ट्री मिली। शायद तकनीकी रूप से कमजोर होने के कारण हम दौड़ से बाहर हो गये थे। आखिरी दिन तक फिल्म चलने का श्रेय भी शायद शिवमूर्ति जी की सशक्त कहानी ही थी।"**[28] उद्धरण से स्पष्ट होता है कि शिवमूर्ति की कहानियों में पाठक एवं श्रोता दोनों को ही अपनी तरफ आकृष्ट करने की अदभुत क्षमता मौजूद है। सच तो यह है कि शिवमूर्ति की कहानियाँ पढ़ते हुए कल्पित दृश्य तुरंत जेहन में आकार लेने लगते हैं और नाट्यकर्मी एवं फिल्म निर्माताओं को मंचन एवं चलचित्र बनाने के लिये ये कहानियाँ बेचैन करने लगती हैं। शिवमूर्ति के **'त्रिशूल' एवं 'तर्पण'** उपन्यासों पर भी फिल्म बनाने की योजना चल रही है, किन्तु उन पर अभी तक योजना फलीभूत नहीं हो सकी है। कुछ निर्माताओं को लगता है कि इनके संवाद और सिचुवेशन बड़े भड़काऊ और विवादास्पद हैं, तो कुछ को लगता है कि इनमें पूँजी डूबने का खतरा मोल लेना बुद्धिमानी नहीं है।

## 1.5 - शिवमूर्ति को सम्मान एवं पुरस्कार

- सन् 1984 में **'सिरी उपमा जोग'** कहानी के लिए 'सारिका' पत्रिका द्वारा युवा लेखन का प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ।
- सन् 1988 में **'तिरिया चरितर'** कहानी के लिए 'हंस' पत्रिका द्वारा सर्वश्रेष्ठ कहानीकार का सम्मान प्राप्त हुआ।
- सन् 2002 में **'तर्पण'** उपन्यास के लिए आनंद सागर स्मृति, कथाक्रम सम्मान प्राप्त हुआ।
- सन् 2011 में अवध भारती समिति, बाराबंकी द्वारा अवधी संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन और उन्नयन के लिए मृगेश स्मृति सम्मान प्राप्त हुआ।
- सन् 2011 में रायबरेली की साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था 'प्रयास' द्वारा सृजन सम्मान प्राप्त हुआ।
- सन् 2015 में लखनऊ लिटररी फेस्टिवल द्वारा, हिन्दी साहित्य में विशेष योगदान के लिए 'द प्राइड ऑफ लखनऊ' सम्मान प्राप्त हुआ।
- सन् 2018 में 'आपका तिस्ता हिमालय' पत्रिका, सिलीगुड़ी द्वारा अमरावती सृजन पुरस्कार प्राप्त हुआ।
- सन् 2021 में इफ्को द्वारा 'श्रीलाल शुक्ल स्मृति इफ्को साहित्य सम्मान' प्राप्त हुआ।

**निष्कर्ष**

शिवमूर्ति हिन्दी साहित्य में आठवें दशक के बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी रचनाकार हैं। औरों की तुलना में कम लिखकर शिवमूर्ति साहित्य जगत में ज्यादा चर्चित हुए। शिवमूर्ति ने जिस जीवन को जिया, उसी को कलमबद्ध किया।

उनका समग्र साहित्य यथार्थ की जमीन पर रचा गया है, जिसमें कल्पना के लिए कोई जगह नहीं है। उनके कथा साहित्य के पात्र उनके आस-पास के ही लोग हैं, जो समय-समय पर शब्दबद्ध होकर हमारे सामने आते रहे हैं। शिवमूर्ति के समग्र साहित्य में हमेशा गाँव केंद्र में रहा है। जिस कृषक जीवन को उन्होंने जिया, उसी को कथा के रूप में पाठकों तक पहुँचाया। उनके साहित्य को पढ़कर हम यह जान सकते हैं कि भारतीय गाँव में आज दलित एवं स्त्री की दशा क्या है? बदलते हुए समय के साथ भले ही आज शहर विकसित हो गये हों, किन्तु गाँव विकास की रफ्तार में पीछे छूट गए हैं।  सरकार द्वारा किसानों के लिए बनायी गयी योजनाएँ उन तक नहीं पहुँचतीं। बीच वाले खा जाते हैं। शिवमूर्ति अपने साहित्य के माध्यम से वहाँ के लोगों के आक्रोश को एक स्वर देते हैं। वे एक प्रतिरोधी समाज का निर्माण करते हैं, जो मजबूती के साथ खड़ा होकर अपने हक़ के लिए लड़ता हुआ दिखाई देता है।

शिवमूर्ति का साहित्य प्रेमचंद और फणीश्वर नाथ रेणु की परंपरा को आगे बढ़ाता है। ग्रामीण परिवेश को केंद्र में रखकर लिखा हुआ शिवमूर्ति का साहित्य इतना यथार्थ है कि वह पाठक को झकझोर कर रख देता है। आज के समाज को '**तिरिया चरित्तर**' की विमली नहीं, बल्कि '**कुच्ची का कानून**' की कुच्ची और '**अकालदंड**' की सुरजी की आवश्यकता है। समाज में बदलाव लाने के लिए इसी तरह की स्त्रियों की आवश्यकता है। हम कह सकते हैं कि शिवमूर्ति के कथा-साहित्य में ग्रामीण जीवन का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्ष यथार्थ रूप में उभरकर सामने आया है। उनका साहित्य न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। वे यथार्थ और अनुभव का नया अर्थ बताते हैं। जब वे कहते हैं कि जो लिखा है वह अभी दही से भरी मटकी का छलक गया अंश मात्र है, तब समझा जा

सकता है कि उनके पास अनुभव की कितनी अधिक संपदा है। यह संपदा काफी संघर्षों के बाद अर्जित की गई है। आज ऐसे अनेक रचनाकार मिलेंगे, जो अपने संघर्षों से जूझते हुए ही उभरे हैं, लेकिन वे या तो साहब बनकर दूसरा विवाह कर लिए या फिर जिंदगी भर अपनी जमीन और उससे जुड़ी प्रतिबद्धता को झुठलाते रहे। शिवमूर्ति आपबीती और जगबीती के अंतर को समाप्त कर देते हैं। अपने संघर्षों के अनुभवों से दृष्टि पाकर वे जाने कितनों के दुखों का कारण तलाश करते हैं। नयी पीढ़ी के लिए निश्चित ही शिवमूर्ति का व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रेरणादायी है।

**संदर्भ सूची**


1. शिवमूर्ति, मेरे साक्षात्कार सीरीज़, "मेरे साक्षात्कार", किताब घर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013, पृष्ठ - 90
2. शिवमूर्ति, सृजन का रसायन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014, पृ. 90
3. वही, पृ. 8
4. वही, पृ. 8
5. वही, पृ. 7
6. वही, पृ. 18
7. सं. विजय गुप्त, 'मंच' जनवरी-मार्च, 2011, पृ. 110
8. शिवमूर्ति, सृजन का रसायन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014, पृ. 30
9. वही, पृ. 23

10. वही, पृ.  55

11. सं. विजय गुप्त, 'मंच' जनवरी-मार्च, 2011, पृ. 110-111

12. वही, पृ. 230

13. वही, पृ. 232

14. सं. अरुण सिंह, 'इंडिया इनसाइड' साहित्य वार्षिकी - 2016, पृ. 138

15. शिवमूर्ति, सृजन का रसायन, राजकमल प्रकाशन, 2014, पृ. 26

16. वही, पृ. 26-27

17. सं. किशन कालजयी, 'संवेद' फरवरी-अप्रैल, 2014, पृ.  126

18. सं. विजय गुप्त, 'मंच' जनवरी-मार्च, 2011, पृ. 234

19. वही, पृ. 235

20. शिवमूर्ति, मेरे साक्षात्कार सीरीज़, "मेरे साक्षात्कार", किताब घर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013, पृ. - 41

21. सं. अरुण सिंह, 'इंडिया इनसाइड' साहित्य वार्षिकी - 2016, पृ. 6

22. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, -1991, पृ. 26

23. वही, पृ. 144

24. वही, पृ. 162

25. सं. अरुण सिंह, 'इंडिया इनसाइड' साहित्य वार्षिकी, - 2016, पृ. 41

26. वही, पृ. 17

27. वही, पृ. 17-18

28. वही, पृ. 153

# द्वितीय अध्याय

# शिवमूर्ति की कहानियाँ : संवेदना एवं दृष्टि

## प्रस्तावना

मनुष्य के भीतर बसी हुई हर्ष, शोक, प्रेम एवं वात्सल्य की अनुभूति ही संवेदना कही जाती है। इन कोमल अनुभूतियों का सीधा संबंध मन से है। ईश्वर के सर्जन में मनुष्य ही अत्यधिक भाव-प्रवण प्राणी है। साहित्यकार अन्य लोगों की तुलना में अधिक भाव-प्रवण होता है। बाह्य परिस्थितियाँ उसे जल्दी प्रभावित करती हैं। अतः वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए साहित्य की किसी भी विधा को चुनता है। कहानी हमेशा से साहित्य और साहित्यकार की पसंदीदा विधा रही है। यह विधा समय और स्थान की सीमाएँ लाँघकर मानव मन की गहराई को नापती है। यही कारण है कि यह पूर्ण रूप से यथार्थ न होकर भी यथार्थ कहलाती है। कथाकार शिवमूर्ति यथार्थ और अनुभव का नया अर्थ देते हैं। उन्होंने जो जिया वही रचा। उनके पास अनुभव की अकूत संपदा है। यह संपदा बैठे-बैठाए नहीं प्राप्त हुई है। इसके पीछे एक लंबा संघर्ष है। शिवमूर्ति उन रचनाकारों में नहीं हैं जो या तो 'सिरी उपमा जोग' के साहब हो जाते हैं, या फिर अपनी जमीन और उससे जुड़ी प्रतिबद्धताओं को झुठलाकर सारी उम्र संघर्षों का रोमेंटिक रास रचते हैं। शिवमूर्ति वे रचनाकर हैं जो आप बीती और जग बीती का अंतर समाप्त कर देते हैं। अपने जीवन संघर्ष के अनुभवों से दृष्टि प्राप्त करके वे जाने कितनों के दुखों का कारण तलाश करते हैं।

शिवमूर्ति की कहानियों का मूल स्वर मानवीय संवेदना संरक्षण - संवर्द्धन से जुड़ा हुआ है। वैसे तो किसी भी साहित्यकार को असंवेदनशील नहीं कहा जा

सकता, किन्तु शिवमूर्ति की कहानियों में उनके कुछ अतिरिक्त संवेदनशील होने का पता चलता है। यह अतिरिक्त संवेदनशीलता ही उन्हें अपने समकालीन रचनाकारों से अलग करती है। उनकी यह संवेदनशीलता व्यक्ति जगत से होकर पशु जगत और फिर वस्तु जगत तक जाती है। प्रायः कहा जाता है कि उत्तर भारत के गाँव को जानना हो तो प्रेमचंद के साहित्य को पढ़ना जरूरी है। यही बात शिवमूर्ति पर भी लागू होती है। उत्तर भारत के गाँवों को समग्रता में जानने के लिए शिवमूर्ति को पढ़ा जाना आवश्यक है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और युवा वर्ग, पुरानी व नई पीढ़ी-संघर्ष, पितृसत्तात्मक समाज, टूटता दाम्पत्य जीवन, अवैध यौन संबंध, मूल्यहीन राजनीति, दलित संवेदना, नारी संवेदना जैसे तमाम ऐसे मुद्दे हैं, जिन्हें शिवमूर्ति ने 'कसाईबाड़ा', 'तिरिया चरित्तर', 'अकाल-दंड', 'केशर कस्तूरी', 'भरतनाट्यम', 'सिरी उपमा जोग', 'कुच्ची का कानून' आदि अपनी कहानियों में उठाया है, जिनका विवेचन-विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत है।

## 2.1 वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और युवा वर्ग

पुराने जमाने में शिक्षा का स्थान नगरों और वहाँ के शोरगुल से बहुत दूर वनों के गुरुकुल में होता था। इन गुरुकुलों का संचालन ऋषि-मुनि किया करते थे। गुरु के आश्रम में विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ज्ञानार्जन करते थे। उस समय की शिक्षा पद्धति वर्ण व्यवस्था पर आधारित थी। इस व्यवस्था में ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए ही गुरुकुल के द्वार खुले रहते थे, वैश्य और शूद्र के लिए इस व्यवस्था में कोई जगह नहीं थी। समय के अंतराल के साथ अंग्रेजों के शासन काल में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव हमारी संस्कृति पर पड़ा, जिसके तहत शिक्षा जाति या धर्म तक सीमित नहीं रही। शूद्र समाज के लोगों ने वर्ण व्यवस्था पर आधारित शिक्षा व्यवस्था का विरोध किया, जिसमें डॉ. भीमराव

अंबेडकर ने अहम् भूमिका निभायी। भारतीय संविधान में हर नागरिक को शिक्षा देने का प्रावधान किया गया, चाहे वह किसी भी धर्म या जाति का क्यों न हो। इसके बावजूद हमारे देश के दूर-दराज गाँवों में रहने वाले दलितों, पिछड़ों और शोषितों तक शिक्षा का प्रचार-प्रसार नहीं हो पाया और वे अपने अधिकारों से वंचित रह गए। कथाकार शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और युवा वर्ग की समस्याओं को बड़ी शिद्दत के साथ उठाया है।

शिवमूर्ति की कहानी 'भरतनाट्यम्' में ज्ञान के स्कूल में अध्यापकों के दो दल बन गए हैं - एक उच्च जाति के शिक्षकों का और दूसरा निम्न जाति के शिक्षकों का। शिवमूर्ति कहानी में लिखते हैं - **"सवर्ण और निचली जातियों के आधार पर दो गुट बन गए थे। निम्नवर्ग वाले अपने-आपको 'दलित पैंथर्स' के ग्रुप का मानते थे और चूँकि 'दलित' शब्द से उन्हें एलर्जी थी तथा 'दलित' जितना दलित मानने में थोड़ा अपमान-सा भी लगता था, इसलिए दलित की बजाय 'एंग्री' शब्द का इस्तेमाल करते थे। टीचर्स रूम की बहसों में खुलकर एक-दूसरे पर कीचड़ उछाला जाता था।"**[1] शिक्षक का पद बहुत ऊँचा होता है। यदि वे जात-पात, धर्म-संप्रदाय आदि को मानने लगेंगे तो शिक्षकों की छत्र-छाया में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की मानसिकता क्या होगी? उनका भविष्य क्या होगा? प्रस्तुत उद्धरण के द्वारा कहानीकार इसी सच की ओर हमारा ध्यान खींचता है। शिक्षक भविष्य का निर्माता है। वह जैसी नींव रखेगा, वैसी ही इमारत खड़ी होगी। ज्ञान के स्कूल का माहौल विद्यार्थियों के विकास के लिए पूर्ण रूप से दूषित है। ऐसे माहौल में ज्ञान जैसे स्वाभिमानी शिक्षकों का दम घुटता है। वह अपने आदर्शवाद का शिकार हो जाता है। सचमुच हमारे यहाँ स्कूली सच बहुत भयावह है।

### 2.1.1 शिक्षकों की मानसिकता

कहा गया है - '**गुरुर्ब्रह्मा् गुरुर्विष्णु: गुरुर्देवो महेश्वर:, गुरु: साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।'** अर्थात् गुरु ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है और गुरु ही भगवान शंकर है। गुरु ही परब्रह्म है। इसलिए सबसे पहले श्री गुरु को प्रणाम है। भारत वर्ष में गुरु और शिष्य की बड़ी ही आदरणीय परंपरा रही है। शताब्दियों की पराधीनता ने हमारी इस आदर्श गुरु-शिष्य परंपरा को नष्ट-भ्रष्ट  कर दिया है। यह तो नहीं कह सकते कि सभी शिक्षक अपने पद की गरिमा का निर्वाह नहीं कर रहे हैं। आज भी कुछ अच्छे शिक्षक मिलेंगे। कहानीकार ऐसे ही गिने-चुने कुछ शिक्षकों के बारे में अपनी कहानी 'बनाना रिपब्लिक' में लिखता है, जिसमें मुरारी मास्टर कहते हैं - **"सरकारी नौकरी वाला नहीं खड़ा हो सकता जग्गू। मास्टर की आह निकली - नौकरी से इस्तीफा देना होगा।"**[2] प्रस्तुत उद्धरण में मुरारी मास्टर ग्राम प्रधानी का चुनाव लड़ने से इनकार करते हुए एक आदर्श शिक्षक की भूमिका निभाने में विश्वास करते हैं। सच तो यह है कि आज शिक्षकों की बहुतायत संख्या अपने पद और कार्य का सही निर्वाह नहीं कर रही है। ऐसे शिक्षक अपनी महत्वाकांक्षाओं के चलते शिक्षकीय पेशे से हटकर अगल-बगल झाँकते हुए दिखाई देते हैं। ऐसी ही मानसिकता का एक शिक्षक शिवमूर्ति की कहानी 'कसाईबाड़ा' में अपना शिक्षकीय पेशा छोड़कर अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए राजनीति में उतरता है। आने वाले चुनाव में किसी भी तरह उसे गाँव का प्रधान बनना है। इस स्कूल शिक्षक का नाम है - रामबुझावन अर्थात् लीडर। लेखक लिखता है - **"महत्वाकांक्षाओं की एक लम्बी श्रृंखला है उनके सामने - प्रथम तो अगली बार होने वाले परधानी के इलेक्शन में, जैसे भी हो पुराने प्रधान को हराकर गाँव-प्रधान बनना। प्राइमरी स्कूल की मास्टरी उन्हें गर्दन की मैल लगने लगी है.....फिर ब्लॉक प्रमुख, फिर एमेले, फिर मिनिस्टर।"**[3] नयी पीढ़ी की

बुनियाद रखने वाला यह एक शिक्षक की मानसिकता है। उसे अपने सुख की पड़ी है, बच्चों के भविष्य की नहीं।

प्राइमरी स्कूल का शिक्षक रामबुझावन अर्थात् लीडर अपनी महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने के लिए गाँव की ही एक गरीब विधवा को 'बलि का बकरा' बनाता है, जिसकी बेटी को ग्राम प्रधान ने सामूहिक आदर्श विवाह के नाम पर वेश्यावृत्ति में ढकेल दिया है। शिक्षक रामबुझावन गरीब विधवा 'शनिचरी' की आड़ में अपने सपनों को मूर्त रूप देना चाहता है। लीडर जैसे शिक्षकों की मानसिकता यह दर्शाती है कि ऐसे लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए उचित-अनुचित का त्यागकर कुछ भी करने में गुरेज नहीं करते।

शिक्षकों की मानसिकता का एक और सच **'**भरतनाट्यम्' कहानी में देखने को मिलता है। कहानी का नायक 'ज्ञान' जैसे पढ़े-लिखे लोगों को अपने उसूलों और सिद्धांतों का गला घोंटकर शिक्षकीय पेशे में हो रहे दुष्कर्मों का हिस्सा बनना पड़ता है और एक अपमान जनक जिंदगी जीने के लिए विवश होना पड़ता है। न चाहते हुए भी ज्ञान डेढ़ सौ रुपये प्रति माह वेतन पर हस्ताक्षर करता है और सत्तर रुपये हाथ में पाता है। शेष राशि गैरकानूनी ढंग से स्कूल के संस्थापक द्वारा हड़प लिया जाता है। इतना ही नहीं, स्कूल में फेल होने वाले विद्यार्थियों से पैसे लेकर उन्हें पास किया जाता है। इस संदर्भ में स्कूल के विद्यार्थी, शिक्षकों के बारे में कहते हैं - **"साले, इसी 'पास कराई' वाले रुपए से एकाध कुर्ता-पैजामा बनवा लेंगे। फिर उसी को साल भर रेतेंगे।"**[4] विद्यार्थी द्वारा कहा गया यह वाक्य 'ज्ञान' को तीर की तरह चुभता है और वह सभी शिक्षकों के सामने घोषणा करता है - **"चूँकि अधिकांश रुपया जबरदस्ती वसूला गया है और इसमें से तिरस्कार और अपमान की बू आ रही है, इसलिए यह रुपया मैं छूऊँगा भी नहीं, हिस्सा**

**लेना तो दूर रहा।"**[5] बात यहीं समाप्त नहीं होती। ज्ञान के 'पास कराई' के पैसे न लेने पर अन्य शिक्षकों के बीच उसके हिस्से के रुपयों को लेकर झगड़ा होता है और यह अफवाह फैला दी जाती है कि ज्ञान ने 'पास कराई' की गुरुदक्षिणा हड़पनी चाही, इसलिए  अध्यापकों ने उसकी जमकर पिटाई कर दी। अंततः उसे इस्तीफा देना पड़ता है। एक होनहार शिक्षक अपने आदर्शों और सिद्धांतों की रक्षा करते-करते बेरोजगार हो जाता है। शिक्षकों की सड़ी-गली मानसिकता एवं विद्यालय प्रबंधन की व्यावसायिक नीति के चलते एक आदर्श एवं चरित्रवान शिक्षक हताश होकर टूट एवं बिखर जाता है और पत्नी के भाग जाने पर नंग-धड़ंग पागलपन की स्थिति में भरतनाट्यम् करने लगता है।

असल में हमारी शिक्षा व्यवस्था ही त्रुटिपूर्ण है। आज शिक्षा का उद्देश्य मात्र नौकरी पाने तक सीमित हो गया है। अच्छे-अच्छे, पढे-लिखे लोग आज उसी क्षेत्र में नौकरी करना चाहते हैं, जहाँ ऊपरी आमदनी हो। ऊपरी कमाई का मतलब है - अवैध तरीके से कमाया हुआ धन। 'भरतनाट्यम्' कहानी में ज्ञान कहता है - **"आज सोचता हूँ तो पश्चाताप होता है अपनी करनी पर, लेकिन गुस्सा आता है उन शिक्षाशास्त्रियों पर, जो आज भी स्कूल-कॉलेजों में महाराणा प्रताप, शिवाजी, चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह और नेताजी को पढ़ाते हैं, बच्चे के कच्चे मन पर राणा और आज़ाद की नुकीली मूँछें और गज भर छाती, भगतसिंह का टोप और नेताजी की सैनिक छवि इतनी गहराई तक घुस जाती है कि प्रौढ़ होने पर आज के गर्हित यथार्थ-जीवन के साथ स्वयं को समायोजित करने के दौरान उसे भीषण मानसिक यंत्रणा से गुजरना पड़ता है।"**[6] ज्ञान का यह कथन बताता है कि यथार्थ जिंदगी में और स्कूल की आदर्शवादी पढ़ाई में जमीन-आसमान का अंतर है। हमारी असली जिंदगी में हमारा इतिहास और हमारे आदर्शवादी नेता अब केवल नाम मात्र के रह गए हैं। उनके आदर्श उनकी जयंती, उनकी पुण्यतिथि पर केवल

भाषणबाजी बनकर रह गए हैं। यथार्थ जीवन और आदर्शवाद का पाठ पढ़ाने वाली हमारी शिक्षा व्यवस्था नदी के दो छोर हैं, जिनका मिलाप होना वर्तमान समय में असंभव है।

### 2.1.2 शिक्षित बेरोजगार की छटपटाहट

शिक्षा का अधिक विस्तार होने के बावजूद आज हमारे देश की साक्षरता आशा के अनुरूप नहीं है। इसका कारण है - वर्तमान शिक्षा प्रणाली शिक्षित होने के दंभ भरने वालों का उत्पादन करने वाली निर्जीव मशीन बन गई है। डिग्री लेने के बाद रोजगार के अवसर मिलना मानो रेगिस्तान में सूई ढूँढने के बराबर है। बड़ी-बड़ी डिग्री लेकर बेरोजगार होना व्यक्ति के लिए एक अभिशाप है। शिक्षित बेरोजगार का, परिवार और समाज दोनों तरफ से तिरस्कार होता है **'भरतनाट्यम्'** कहानी में हम देखते हैं कि 'ज्ञान' जब बेरोजगार हो जाता है, तब उसके परिवार का एक भी सदस्य उससे सहानुभूति नहीं रखता। माता-पिता, भाई-भाभी के व्यवहार में इतनी बेरुखी आ जाती है कि 'ज्ञान' का जीना दूभर हो जाता है। बेरोजगार होने के पश्चात् उसके पिता उसे खरी-खोटी सुनाते हुए कहते हैं - **"साला, लाट साहब बनना चाहता है। दाने-दाने को न तरस गया तो कहना!"**[7] देखा जाय तो एक तरह से पिता अपने पुत्र को श्राप दे रहा है। ज्ञान के पिता यह नहीं सोचते कि उनका बेटा कितना बड़ा स्वाभिमानी है? अपने शिक्षक जैसे पवित्र पेशे में स्वाभिमान के साथ जीना चाहता है और ऐसा न होने पर वह उस पेशे को ही अलविदा क़हता है।

शिक्षक की नौकरी छूटने के पश्चात् 'ज्ञान' अनुभव करता है कि उसके घर के सदस्य उससे पहले से अधिक दूर तो हो ही गए हैं, साथ ही वे उसकी पत्नी और बेटियों से भी दूर हो गए हैं। उनके साथ बुरा व्यवहार करते हैं। जब तक

उसकी नौकरी थी, तब तक उसके बड़े ठाट थे। जब 'ज्ञान' सचिवालय की नौकरी के लिए दिल्ली जाने के लिए निकलता है, तब उसके पिता महीने भर के खर्च के लिए चार सौ रुपये देते हैं, माँ अचार और देसी घी आदि देती है, बड़ा भाई सारे सामान की गठरी अपने सिर पर लादकर बस अड्डे तक पहुँचाने जाता है। यही ज्ञान नौकरी छोड़ने पर जब घर लौटता है, तब पूरे परिवार का रवैया उसके साथ फिर बदल जाता है। इससे जाहिर है कि जब  परिवार का सदस्य आर्थिक रूप से संपन्न है, तो ही उसका और उसके बाल-बच्चों का सम्मान है। एक शिक्षित बेरोजगार की छटपटाहट को 'ज्ञान' के माध्यम से कहानीकार ने बड़ी ईमानदारी के साथ चित्रित किया है।

**'केशर कस्तूरी'** कहानी की केशर का पति तृतीय श्रेणी में दसवीं पास है। वह नौकरी करना चाहता है, किन्तु उसे नौकरी नहीं मिलती। परिवार की जिम्मेदारियों को निभाने के लिए दिहाड़ी में नौकरी करना उसकी नियति बन जाती है। काम के दौरान दुर्घटनाग्रस्त होने से उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है, जिसके कारण वह अपना आपा खो बैठता है और आए दिन अपना पूरा गुस्सा केशर पर उतारता है। कहानीकार केशर के पति के बारें में लिखता  है -**"केशर का आदमी पहले बड़े सुधवा स्वभाव का आदमी था। लेकिन इधर बहुत चिड़चिड़ा हो गया है। कर्जे की चिंता है। बात-बात पर लड़ने लगता है।"**[8]  कहा जा सकता है कि बेरोजगारी की समस्या युवा की ही नहीं, बल्कि पूरे परिवार की समस्या बन जाती है। किसी सरकारी कार्यालय में चपरासी की नौकरी के लिए न्यूनतम योग्यता दसवीं पास ही होती है, किन्तु बेरोजगारी के चलते बारहवीं पास लोग कारखानों में मजदूरी करने लगते हैं। केशर का पति चपरासी की नौकरी प्राप्त कर अपने परिवार का गुजर-बसर करना चाहता है, किन्तु उसके पास बहुत बड़ी सिफ़ारिश नहीं है। यदि कहीं कोई पद रिक्त दिखाई देता है, तो उसे पाने के लिए

लोग सिफ़ारिश मे लग जाते हैं और बड़े अधिकारियों के रिशतेदारों को वह नौकरी मिल जाती है। इस प्रक्रिया में योग्य उम्मीद्वार नौकरी से वंचित रह जाता है और उसमें हीन भावना पनपने लगती है।

### 2.1.3 शिक्षा का व्यवसायीकरण

किसी भी परिवार, समाज और देश की प्रगति का मापदंड शिक्षा है। इसी के आधार पर व्यक्ति को नौकरी मिलती है। वर्तमान समय में शिक्षा प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो रही है, किन्तु एक सच यह भी है कि यह शिक्षा पद्धति अधिकांश रूप में कौशल प्रधान नहीं है। इस शिक्षा पद्धति द्वारा व्यक्ति कार्य मे प्रवीण एवं योग्य बनने के बजाय 'प्रॅक्टिकल' बनना चाहता है। इसका प्रमुख कारण है - शिक्षा का व्यवसायीकरण। इस संदर्भ में डॉ. पुष्पपाल सिंह का कथन है - **"किसी पद के लिए प्रत्याशी की योग्यता, शिक्षा और प्रतिभा को न देखकर सिफ़ारिश की शक्ति को देखा जाता है।"**[9] सिफ़ारिश की शक्ति क्या है, यह विचारणीय है। सिफ़ारिश की शक्ति का सीधा संबंध धन से है। आज अधिकतर शैक्षणिक संस्थाएँ धन कमाने का केंद्र बन गई हैं। निजी कान्वेंट स्कूल इसी के परिणाम हैं।

**'भरतनाट्यम्'** कहानी में हम देखते हैं कि कहानी का नायक 'ज्ञान' शिक्षा व्यवस्था में पिसता जा रहा है और छटपटा रहा है। ग्रैजुएट होने पर साल भर बेकार भटकने के बाद ज्ञान एक 'स्थानीय प्राइवेट हाई स्कूल' में गणित के अध्यापक के पद पर कार्य करने लगता है। वहाँ की हालत देखने योग्य है - **"दस्तखत करने वाली तनख्वाह डेढ़ सौ और मिलने वाली पचहत्तर रुपए। 'मिलने वाली' से पाँच रुपए प्रतिमाह बिल्डिंग फंड में कट जाते थे।"**[10] इसका मतलब यह है कि दिन दहाड़े पढ़े-लिखे लोगों को लूटा जा रहा है। कहानी का नायक

'ज़ान' एक ईमानदार और चरित्रवान इंसान है। अपने सिद्धांतों के कारण बड़े अफसरों की हाँ में हाँ नहीं मिलाता। जिस विद्यालय में वह पढ़ाता है, वहाँ देखता है कि प्रिन्सिपल साहब पास कराई के नाम पर छात्रों से धन वसूल रहे हैं। कहानीकार इस संदर्भ में लिखता है - **"कुछ स्पेशल केस से संबन्धित लड़के, जिनमें कुछ दो-चार नंबरों से फेल हो रहे थे और कुछ, जो निर्धारित गुरु-दक्षिणा की रकम अभी तक नहीं दे सके थे रोक लिए गए थे।"**[11] शिक्षा के पवित्र मंदिर को व्यवसाय का केंद्र बना दिया गया है, जो भविष्य में आने वाले संकट की ओर इशारा करता है

प्रिन्सिपल और शिक्षक समाज का आदर्श होते हैं। अगर प्रिन्सिपल और शिक्षक गुरु दक्षिणा लेकर फेल होने वाले विद्यार्थियों को पास करने लगें तो देश का भविष्य क्या होगा? ऐसे पास होने वाले विद्यार्थियों की दिशा क्या होगी, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। शिक्षा के इस व्यवसाय में ज़ान जैसे शिक्षकों के दुखों का अंत नहीं है। शिक्षक को 'आचार्य देवो भव' कहा गया है, अर्थात् शिक्षक या आचार्य ईश्वर के समान है। यह दर्जा एक शिक्षक को उसके द्वारा समाज में दिये जाने वाले योगदान के कारण दिया जाता है, लेकिन इसके विपरीत 'भरतनाट्यम्' कहानी में कहानी का नायक ज़ान और उसके अन्य अध्यापक मित्रों को नौकरी के नाम पर छला जाता है। अध्यापकों के द्वारा स्कूल के मैनेजर या अध्यक्ष के बच्चों को निःशुल्क ट्युशन लेना, लगातार आठ पीरियड कक्षा में पढ़ाना और उनके घर किसी उत्सव के समय वहाँ की व्यवस्था देखना आदि कुछ ऐसे कार्य हैं, जिन्हें झेल पाना असह्य है। लेखक इस स्थिति का खुलासा करते हुए लिखता है -**"ऐसे मौकों पर विद्यालय के बच्चे भी दर्शक अथवा आमंत्रित के रूप में उपस्थित रहते थे। वे प्रत्येक क्रिया-कलाप और संवाद गौर से देखते-सुनते तथा अपने भाग्यविधाताओं के भाग्य के पेंदे तक पहुँच जाते थे।"**[12]

स्पष्ट है कि शिक्षकों से यहाँ ऐसे-ऐसे काम करवाए जाते हैं, जिनसे उनके आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचती है। इससे अधिक एक शिक्षक की दयनीय स्थिति और क्या हो सकती है? मोहिनी शर्मा इस संदर्भ में अपनी चिंता इन शब्दों में व्यक्त करती हैं - **“शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यों की प्रतिष्ठा तब ही हो सकती है जबकि शिक्षा को समाज की अर्थनीति और राजनीति के दुष्चक्रों से दूर रखकर उसका विकास किया जाए।”**[13] शिक्षा और व्यवसाय का परस्पर घालमेल शिक्षा के साथ-साथ समाज के लिए भी घातक है। ऐसी शिक्षा पाकर वर्तमान समय में छात्र शिक्षा जैसी अमूल्य निधि का व्यवसायीकरण नहीं करेंगे तो क्या करेंगे? शिक्षा जैसा पवित्र क्षेत्र आज व्यवसाए में परिवर्तित हो गया है, जहाँ ढेर सारा पैसा देकर डिग्रियाँ खरीदी व बेची जाती हैं। इसके बाद रिश्वत देकर पैसे से नौकरियाँ खरीदी व बेची जाती हैं। शिवमूर्ति अपनी कहानियों के माध्यम से आज की इस स्थिति से हमें अवगत कराते हैं।

शिवमूर्ति की दृष्टि मूल्यवादी है। वे शिक्षा में किसी भी प्रकार की दखलअंदाजी स्वीकार नहीं करते। चाहे वह राजनीतिक दखलअंदाजी हो, चाहे व्यावसायिक दखलअंदाजी। उनका मानना है कि यदि शिक्षा व्यवस्था, उसके शिक्षक, प्राचार्य आदि चरित्रवान नहीं होंगे, तो इस व्यवस्था से निकलने वाले छात्र चरित्रवान होकर कैसे निकलेंगे? औए फिर ऐसे छात्रों का भविष्य क्या होगा? यदि गुरु-शिष्य परंपरा को आदरणीय बनाना है, तो सबसे पहले पूरी शिक्षा व्यवस्था को आदरणीय बनाना होगा। सिद्धांत कहने-सुनने की चीज न होकर जिंदगी में उतारते एवं अपनाते हुए देखा जाय।

## 2.2 पुरानी व नयी पीढ़ी-संघर्ष

आज भारतीय समाज संक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है। एक ओर पुरानी परंपराएँ जड़ जमाए हुए हैं, तो दूसरी ओर आधुनिकता ने पूरे समाज पर अपना प्रभाव डाला है। इन दो के बीच में फँसा भारतीय मानस अंतर्द्वंद्व से ग्रस्त है। इस अंतर्द्वंद्व का शिकार पुरानी व नयी पीढ़ी दोनों होती हैं। पुरानी पीढ़ी चाहती है कि नई पीढ़ी उनका अनुसरण करे और नयी पीढ़ी अपने जीवन में किसी का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करती। फिर दोनों पीढ़ियों के बीच वैचारिक टकराव की स्थिति बन जाती है। असल में पाश्चात्य शिक्षा पद्धति, अर्थ प्रधान समाज तथा अनेक प्रकार के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों से पुरानी एवं नयी पीढ़ी में संघर्ष बढ़ता ही जाता है। इसके परिणामस्वरूप ईर्ष्या, द्वेष, कलह, स्वार्थ आदि परिवारिक संबंधों में कड़वाहट के कारण बनते हैं।

शिवमूर्ति की कहानियों में पीढ़ीगत टकराव के कई उदाहरण मिलते हैं। 'भरतनाट्यम्' कहानी में ज्ञान के पिता अपनी जवानी में अनेक कुकर्म कर चुके हैं, जिसके बारे में ज्ञान को उसके पिता के मित्रों द्वारा सब कुछ पता चल गया है। ज्ञान के पिता की कर्म कुण्डली इस प्रकार है -**"चोरी-चकारी के मामले में ये बदनाम हुए थे। औरतों के पीछे हाथ-पैर ये तुड़वाए थे और आज बूढ़े होने पर मँड़हे में शंकर भगवान, हनुमानजी और काली माई के कैलेंडर टाँगकर, शंख-घंटा बटोरकर, कंठी माला लटकाकर और चन्दन-टीका लगाकर महंत बन गए हैं। मेरी नज़र में तो जितनी कुमार्गी और ढोंगी पुरानी पीढ़ी रही है, उसकी चौथाई भी नई पीढ़ी नहीं है।"**[14] ऐसे पिता के अतीत को जानकर ज्ञान और उसके पिता के रिश्ते में एक अजीब सी कड़वाहट पैदा हो जाती है। ज्ञान के पिता जब उसे दुनियादारी

की बातें बताते हैं तब यह रिश्ता और भी कटु हो जाता है। यह तो वही स्थिति हुई कि - "सौ चूहे खाकर बिल्ली चली हज को।"

पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच कड़वा संवाद हम 'बनाना रिपब्लिक' कहानी में देखते हैं। कहानी में जग्गू का पिता जग्गू को ग्राम प्रधानी का चुनाव लड़ने से रोकता है। वह अपने पुराने अनुभव के आधार पर कहता है **- "न बेटा। ए काम ठीक नहीं। परधानी का बवंडर हम नहीं संभाल सकते। उड़ जाएँगे।"**[15] पिता की बात को काटते हुए जग्गू प्रधानी से होने वाली आय के बारे में बताता है कि पाँच साल में पचीस लाख की बचत होगी। इसके विरोध में जग्गू का पिता झुँझलाकर कहता है **- "इतने पैसे का हम करेंगे क्या? रखेंगे कहाँ? वही ठाकुर रात में सब लूट ले जाएगा।"**[16] जग्गू के पिता का यह कथन उनके निजी अनुभव की पिटारी से निकाला हुआ सच है, जो नयी पीढ़ी के बेटे जग्गू के विचारों से मेल नहीं खाता। बेटा उचित-अनुचित का विचार न करके बहुत जल्दी धन, पद और प्रतिष्ठा पाना चाहता है। बेटे की महत्वाकांक्षा को देखकर जूता गाँठने वाला पिता 'बदलू' जग्गू को डाँटते हुए कहता है - **"बदलू गरजा - बाप दादों की बनाई हुई 'परापर्टी' तू जुए के दाँव पर लगा देगा?"**[17] पीढ़ीगत इस टकराव से आपसी रिश्ते तो बिगड़ते ही हैं, साथ ही इसके दूरगामी परिणाम बड़े भयानक होते हैं।

### 2.2.1 रिश्तों को ठगने का सच

मनुष्य के जीवन में रिश्तों का महत्वपूर्ण स्थान है और ये रिश्ते परिवार से ही बनते हैं। मनुष्य ने अपनी मूलभूत आवश्यकताओं, जैसे - भोजन, आवास, सुरक्षा, कामवासना आदि की पूर्ति के लिए परिवार संस्था का निर्माण किया। मनुष्य अपने जन्म से लेकर अपनी अंतिम साँस तक अपने परिवार एवं अपने सगे-संबंधियों से जुड़ा रहता है। अतः उसके व्यक्तित्व के निर्माण में उसके

परिवार तथा सगे-संबंधियों की अहम् भूमिका होती है। मनुष्य का परिवार ही एकमेव ऐसा स्थान है, जहाँ पर आकर वह अपनी थकान मिटाता है और मानसिक तथा शारीरिक शांति प्राप्त करता है। जब तक परिवार के सदस्य अपने-अपने कर्तव्यों का नि:स्वार्थ भाव से पालन करते हैं, तब तक परिवार के सदस्यों के बीच सौहार्दता बनी रहती है, किन्तु जब परिवार के सदस्यों के बीच स्वार्थ की भावना पनपने लगती है, तब उस परिवार की सुख-शांति भंग हो जाती है। एक दूसरे की मदद के स्थान पर एक दूसरे को ठगना शुरू हो जाता है।

रिश्तों में संवेदनहीनता का मुख्य कारण अर्थतंत्र है। वर्तमान समय में रुपया-पैसा, जमीन-जायदाद रिश्तों से अधिक बड़े हो गए हैं। यह समस्या पहले महनगरों में थी, किन्तु अब इस समस्या से ग्रामीण समाज भी अछूता नहीं रहा। 'केशर कस्तूरी' कहानी में बूढ़े माँ-बाप को उनके बेटे अपने लाभ को ध्यान में रखते हुए किस तरह से बाँटते हैं, इसका चित्र खींचते हुए कहानीकार लिखता है - **माँ-बाप तक के बँटवारे में बेईमानी हुई है। बाप अभी तगड़ा है, हल-कुदाल चला लेता है। उसे मँझले भाई ने अपने हिस्से में ले लिया और माँ जो दमे की मरीज़ और जर्जर है, वह छोटे भाई के हिस्से में पड़ी है।"**[18] प्रस्तुत उद्धरण से पता चलता है कि नयी पीढ़ी के बेटों के मन में अपने माता-पिता के प्रति न कोई सहानुभूति है न संवेदना। सिर्फ अपना नफा-नुकसान दिखाई देता है। जिस माता-पिता ने उन्हें पाल-पोसकर बड़ा किया, उन्हीं के साथ यह ठगहारी की जा रही है।

कहीं-कहीं यह भी देखा जाता है कि पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी से ज्यादा ही उम्मीदें करने लगती है। पिता की नज़र में पुत्र कमाऊँ होना चाहिए। उसके लिए मात्र चरित्रवान पुत्र होना पर्याप्त नहीं है। स्थिति तब और भयावह हो जाती है, जब पिता के सुर में सुर माँ भी मिलाने लगती है। 'भरतनाट्यम्' कहानी में

शिक्षक की नौकरी में भ्रष्टाचार न करने के कारण 'ज्ञान' को अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ता है। इस पर उसकी माँ के बारें में कथाकार शिवमूर्ति लिखते हैं **- "रास्ते में गड़ही के किनारे माँ गोबर पाथ रही है। एक नज़र मेरी तरफ डालती है, निर्विकार, निर्लिप्त और फिर सिर नीचा करके हाथ चलाने लगती है। अरसा हो गया माँ से कोई बात किए हुए।"**[19] माँ बेटे के बीच की यह दुखद स्थिति है। वह अपने खुद के बेटे को नहीं समझ पा रही है। दोनों के रिश्ते में अर्थ प्रधान हो गया है। आज रिश्तों का यही सच है।

### 2.2.2 वृद्ध जीवन

बड़े-बुजुर्ग परिवार के मुखिया होते हैं। उन्हीं के द्वारा रखी हुई नींव पर परिवार की इमारत खड़ी होती है। नयी पीढ़ी इस वस्तुस्थिति को प्रायः भूल गई है। इसका कारण है - एकल परिवार और भौतिकवादी मानसिकता। इन दोनों स्थितियों ने मिलकर वृद्धों के जीवन को एकदम अकेला कर दिया है। आज समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है, जो अपनी वृद्धावस्था में सामाजिक और आर्थिक असुरक्षा की भावना को झेलता है। युवा वर्ग उन सभी मान्यताओं को तोड़ना चाहता है, जो उसके स्वछंद और स्वतंत्र जीवन में बाधा पहुँचाते हैं। युवा वर्ग का यही सोच वृद्धों को आहत करता है। वृद्धों के जीवन की यह समस्या हम शिवमूर्ति की कहानियों में यत्र-तत्र देखते हैं।

**'तिरिया चरित्तर'** कहानी में विमली की भाभी अपने सास-ससुर की एकदम परवाह नहीं करती। जब तक वह ससुराल में रहती है, तब तक वहाँ अशांति रहती है। विमली के भाई के विवाह के पश्चात् सास-बहू में कहा-सुनी होने लगती है। विमली की माँ बुढ़ापे में अपने पति की दवा-दारू के लिए अपनी बहू के कुछ जेवर गिरवी रखना चाहती है। इस बात की खबर जब बहू को लगती है, तो वह

लगातार तीन दिनों तक अपनी सास से लड़ती रहती है। कहानीकार शिवमूर्ति लिखते हैं - **"बिना पानी पिए तीन दिन तक इसी बात पर लड़ती रही थी। सात पुस्त को गरियाती रही थी। लड़के ने सिर उठाकर एक बार भी उसे मना नहीं किया।"**[20] जिस बेटे को बुढ़ापे में अपने माँ-बाप का सहारा बनना चाहिए, वह अपनी पत्नी के खूँटे से बँधा हुआ है। जिस माँ-बाप ने उसे जन्म दिया, उसे पाल-पोसकर बड़ा किया, उनके प्रति अपनी कर्तव्य भावना को भूलकर उन्हें बीच मझधार में छोड़ दिया है। एक तरह से पुत्र संवेदनहीन हो गया है।

'ख्वाजा, ओ मेरे पीर!' कहानी में लेखक की मामी की बहुएँ मामी की वृद्धावस्था में उनसे अलग हो जाती हैं और वृद्धावस्था में मामी खुद रोटी बनाकर खाती हैं। मामी से अलग रहते हुए मामा भी अपने भाइयों के बच्चों में बँट गए हैं। उन्हें समय पर दाल-रोटी भी नहीं मिलती। जिन भाइयों की देखभाल के लिए मामा ने कसम खाई थी, उन्हीं लोगों ने वृद्धावस्था में मामा का जीवन जटिल कर दिया है। शारीरिक रूप से कमजोर मामा-मामी की जरूरत अब उनके लिए नहीं है। मामा-मामी की वृद्धावस्था में होने वाले कष्टों को सामने रखकर यहाँ नयी पीढ़ी की संवेदनहीनता और स्वार्थपरता को प्रस्तुत किया गया है।

'केशर कस्तूरी' कहानी में केशर की जेठ-जेठानियाँ अपनी बीमार वृद्ध सास को अपने पास रखने के लिए तैयार नहीं होतीं। केशर का जेठ पिता को अपने पास रखता है, क्योंकि वह थोड़ा-बहुत काम कर सकता है। वृद्धावस्था में बूढ़े पति-पत्नी का एक साथ रहना जरूरी है। इससे बूढ़े पति-पत्नी अपने गुजरे क्षणों को याद करके अपने वृदधावस्था को सुखद क्षणों में बदल सकते हैं, लेकिन नयी पीढ़ी के नौजवान लोग ऐसा नहीं होने देते। माता-पिता की जमीन-जायदाद के बँटवारे के साथ उनका भी बँटवारा कर देते हैं। वृद्धावस्था का यह जीवन

बहुत ही कारुणिक और दर्दनाक होता है। इसे जो भोगता है, वही समझ सकता है।

पुरानी व नयी पीढ़ी के बीच पनपती कड़वाहट के प्रति कहानीकार काफी सजग और संवेदनशील है। स्थिति यह है कि पुरानी पीढ़ी को न नयी पीढ़ी समझ पा रही है और न नयी पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी। दोनों के बीच सामंजस्य का अभाव है और फिर कड़वाहट बढ़ती है। कहानीकार की दृष्टि यहाँ व्यावहारिक है। उसका मानना है कि पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच रिश्तों में ईमानदारी होनी चाहिए। यहाँ ठगहारी के लिए कोई जगह नहीं है। रिश्ते को मधुर बनाने के लिए स्वार्थ से ऊपर उठना होगा। पुरानी पीढ़ी के लोग नयी पीढ़ी पर न तो अपने विचारों को थोपें और न नयी पीढ़ी के लोग उन्हें बीता हुआ कल समझें। तभी सामंजस्य संभव है।

## 2.3 पितृसत्तात्मक व्यवस्था

जब हम स्त्री-पुरुष समानता या स्त्रियों से संबन्धित मुद्दों का विश्लेषण करते हैं, तब उनमें कुछ ऐसे शब्दों या अवधारणाओं का जिक्र होता है, जिनको समझे बिना स्त्री-पुरुष से संबन्धित समस्याओं को नहीं समझा जा सकता। इन्हीं में से एक है - 'पितृसत्ता'। पितृसत्ता एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें परिवार का बड़ा पुरुष मुखिया होता है और घर के हर छोटे-बड़े फैसले वही करता है। भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज है, जहाँ पुरुष की इच्छाएँ, आकांक्षाएँ ही सर्वोपरि होती हैं। इसमें महिलाओं की स्थिति मुख्य न होकर गौण होती है। वर्तमान समय में स्त्री स्वतन्त्रता या स्त्री मुक्ति का स्वर भले ही मुखर हुआ हो, लेकिन समाज का सोच आज भी पुरुषवादी ही है। इस संदर्भ में अरविंद जैन का कहना हैं **- "पितृसत्ता के इस चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए स्त्रियों ने जितना**

**विरोध-प्रतिरोध किया है, उन पर उतना ही अधिक दमन, हिंसा और अत्याचार बढ़ता गया है।"**[21] आशय यह कि जब-जब स्त्री ने अपना हक़ माँगा, तब-तब उस पर और जुल्म किया गया। उसे  अत्याचार और अन्याय का सामना करना पड़ा। आज भी वह वही लड़ाई लड़ रही है। कहीं उसकी आवाज़ खामोश कर दी जाती है, कहीं उसकी आवाज सुनी भी जाती है।

शिवमूर्ति की कहानियों में 'तिरिया चरित्तर' की विमली, 'केशर कस्तूरी' की केशर बाल-विवाह की बलि वेदी पर चढ़ा दी गई हैं, जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था का एक हिस्सा है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत परिवार के बड़े-बुजुर्ग जहाँ भी अपनी बेटी का विवाह तय कर देते हैं, वहाँ बेटी को जाना पड़ता है। वह किसी भी सूरत में परिवार के मुखिया के खिलाफ नहीं जाती। यह व्यवस्था आज भी गाँव में देखी जा सकती है।

**'तिरिया चरित्तर'** कहानी में विमली का ससुर बिसराम अपनी बहू विमली का बलात्कार करने के बाद समाज में आदरणीय बना रहता है। वह गाँव की पंचायत के सामने अपनी बहू को दोषी करार देकर अमानवीय तरीके से उसके माथे को दागता है। यह पितृसत्तामाक व्यवस्था का सच नहीं तो क्या है? गाँव की ही मनतोरिया की माई विमली के पक्ष में खड़ी होकर  बोलती है **- "एकदम ठीक बोलती है पतोहू! मैं गवाह हूँ। एक दिन मैं खुद गयी थी इसकी झोपड़ी में। वही दारू की बोतल। वही बीड़ी के टोंटे। पुराना पापी है बिसरमवा। महागीध। घटियारी शुरू से इसके मन में बसी है।"**[22] मनतोरिया की माई सच बोलती है, लेकिन यह पितृसत्तामक समाज सच को सुनना नहीं चाहता। उसे डाँटकर बैठा दिया जाता है। विमली पंचों द्वारा पूछे गए सभी सवालों का सच-सच जवाब देती है, किन्तु कोई भी उसका विश्वास नहीं करता। पूरे गाँव के सामने पंच उसे बीचो

बीच माथे पर दागने की सजा देते हैं। एक निर्दोष सजा का भागी बनता है। यह कुकृत्य करके पितृसत्तामक समाज अपना वर्चस्व कायम रखता है।

**'केशर कस्तूरी'** कहानी में केशर के जीवन की शोचनीय अवस्था का मुख्य कारण उसके पिता, पति और पति के भाई हैं। केशर के पिता रूढ़िवादी मानसिकता से बाहर निकलकर अगर केशर के लिए शिक्षा के द्वार खोल दिए होते, तो केशर का जीवन कुछ और ही होता। केशर का पति भी उसे अपने भाइयों के बहकावे में आकर बहुत सताता है। वह केशर से क़हता है - **"साहब-सूबा के घर रहने क्यों गई? खर्चा करने की बीमारी साथ लेकर आई हो।"**[23] पितृसत्तामाक व्यवस्था में केशर पूरी तरह से अकेली हो गयी है। 'कहाँ जाए क्या करे' की स्थिति से वह गुजर रही है। कहना गलत न होगा कि पितृसत्ता नारी के समस्त अधिकारों को अधिकृत कर उसे पराश्रित बना दी है।

### 2.3.1 पुत्र प्राप्ति की मानसिकता

आज की स्थिति यह है कि देश के कई क्षेत्रों में लड़का पैदा होने पर उत्सव मनाया जाता है और लड़की के पैदा होने पर लोग मायूस हो जाते हैं। हमारा कानून क़हता है कि किसी भी व्यक्ति के साथ उसके लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता। फिर भी लिंग के आधार पर हर जगह भेदभाव किया जाता है। इस भेदभाव के कारण ही समाज में भ्रूण-हत्या जैसी समस्या पैदा हुई है, जो पुत्र प्राप्ति की मानसिकता को बढ़ावा देती है। भ्रूण-हत्या गैर कानूनी है, फिर भी भ्रूण-हत्याएँ बड़े पैमाने पर हो रहीं हैं। लड़कियों को पैदा होने से पहले ही मार दिया जाता है।

'भरतनाट्यम्' कहानी में ज्ञान चार साल में तीन बेटियों का बाप बन गया है, किन्तु उसकी पत्नी खुश नहीं है। वह चाहती है कि एक बेटे को जन्म दे।

ज्ञान जब भी नसबंदी कराने की बात करता है, वह रो पड़ती है। उसका तर्क है - **"कोई लड़का तो होना चाहिए, बेटियों से क्या होगा?"**[24] वह इसलिए ऐसा कहती है कि उसकी जेठानी की तरह पुत्र होने पर परिवार में उसका भी मान-सम्मान बढ़े। पुत्र प्राप्ति की उसकी यह मानसिकता उसे अपने जेठ के बिस्तर तक ले जाती है। वह अपने जेठ के साथ शारीरिक संबंध बनाती है। उसे ऐसा करने में जरा सा भी पछतावा नहीं है। जब ज्ञान उसे पकड़ लेता है, तब वह कहती है - **"उनकी कोई गलती नहीं है। मैं ही उनका हाथ पकड़कर मँड़हे से लिवा लाई थी, बेटा पाने के लिए।"**[25] ज्ञान की पत्नी की पुत्र प्राप्ति की लालसा इस हद तक आगे बढ़ गयी है कि वह नैतिक-अनैतिक का विचार त्याग देती है। कहानी के अंत में वह खलील दर्जी के साथ कलकत्ता भाग जाती है। यह सब कुछ उसकी पुत्र प्राप्ति की मानसिकता के परिणामस्वरूप होता है।

### 2.3.2 पुत्रियों के प्रति उपेक्षा भाव

वंश अथवा परिवार बढ़ाने के लिए पुत्र और पुत्री दोनों का समान रूप से होना जरूरी है। देखा यह जाता है कि समाज में बेटियों के प्रति हीन भावना ने उनके प्रति उपेक्षा भाव को और बढ़ा दिया है। बेटियों के जन्म लेते ही उनके प्रति उपेक्षा भाव इस बात का ध्योतक है कि बेटा होने की खबर लोगों को बड़ी धूम-धाम से, हर्षोल्लास से दी जाती है और बेटी होने की खबर कम खुशी से, उदासी भरे स्वर से दी जाती है। अपनी ही संतान के प्रति इस तरह अंतर का व्यवहार आगे चलकर स्त्री-पुरुष के बीच के अंतर का बहुत बड़ा कारण बनता है। समाज पुरुष प्रधान बन जाता है।

'भरतनाट्यम्' कहानी में हमें पुत्रियों के प्रति उपेक्षा भाव देखने को मिलता है। कहानी के नायक ज्ञान की तीन बेटियाँ हैं। ज्ञान के पिता अक्सर उसे इस

बात के लिए ताने मारते हैं, गालियाँ देते हैं। ज्ञान की माँ और भाभी भी खुद स्त्री होकर ज्ञान की पत्नी को बेटा न होने के कारण ताना मारते हुए कहती हैं **- "साँड बनाना चाहती है भतार को। तीन-तीन बेटियाँ बियाने के बाद भी गर्मी कम नहीं हुई है, पलटन तैयार करने की कसम खाकर आई है मायके से। इस हरजाई की कोख में लड़का फल सकता है भला!"**[26] यहाँ एक बात साफ दिखाई देती है कि एक स्त्री ही एक स्त्री का दुश्मन होती है। बेटा पैदा न करने पर किसी स्त्री को उसके अपने ही घर में कितनी तकलीफ झेलनी पड़ती है, यह ज्ञान के घर के वातावरण से पता चलता है। विज्ञान क़हता है कि पुरुष में ही लड़की या लड़का पैदा करने की क्षमता होती है। पुरुष 'एक्स और व्हाय' 'क्रोमोजोम' का वाहक है जबकि स्त्री केवल 'एक्स क्रोमोजोम' का वाहक होती है। अशिक्षा के कारण हमारा समाज यह नहीं जानता कि लड़का पैदा करने की ज़िम्मेदारी औरत की नहीं है। इस संदर्भ में स्त्री को भला-बुरा कहना उचित नहीं है।

ज्ञान के घर में पुत्र और पुत्री के पालन-पोषण में भी अंतर किया जाता है। ज्ञान को तीन बेटियाँ हैं और उसके बड़े भाई को दो बेटे। बेटा होने के कारण ज्ञान के भाई के दोनों बेटे घरवालों के लाडले हैं। बड़े भाई की पत्नी अपने दोनों बेटों को दूध पीने को देती है और ज्ञान की बेटियाँ बस उनका मुँह ताकती रहती हैं। ज्ञान कहता है **- "मैंने कई बार देखा है, जब अमर और विनोद आँगन में दूध पी रहे होते हैं और मेरी बच्चियाँ भाभी जी के गिर्द खड़ी होकर चुपचाप हसरत-भरी नज़रों से खाली होते गिलासों को टुकुर-टुकुर ताकती रहती हैं, पर कभी भूलकर भी हठ नहीं करतीं कि वे भी अमर और विनोद की तरह दूध पीएँगी।"**[27] घरवालों की यह मानसिकता ही समाज में बेटियों के बारे में उपेक्षा भाव का निर्माण करती है। ज्ञान की बेटियों का अपने चचेरे भाइयों का चुपचाप दूध पीते

हुए देखना और कभी भी हठ न करना, इस बात का संकेत है कि वे जानती हैं कि वे बेटियाँ हैं। वे बेटों जैसी नहीं हैं।

'तिरिया चरित्तर' कहानी की विमली, 'केशर कस्तूरी' कहानी की केशर बाल विवाहिता हैं। बाल विवाह की प्रथा बेटियों के प्रति उपेक्षा भाव रखने की प्रथा नहीं तो क्या है? इस प्रथा के अंतर्गत बेटियों को गाय-बैल की तरह माँ-बाप अपने खूँटे से निकालकर किसी अनजान के खूँटे में बाँध देते हैं। विमली जैसी एक समझदार बेटी अपने माता-पिता की देखभाल करने के लिए काफी है। 'केशर कस्तूरी' कहानी की केशर भी अपने पति की गैरमौजूदगी में अपनी बूढ़ी सास और घर की देखभाल करती है। 'अकाल-दंड' कहानी की सुरजी अपने पति की गैर मौजूदगी में अपनी बीमार सास की तीमारदारी में कोई कसर नहीं छोड़ती। आज भी हमारे आस-पास कई ऐसी केशर, विमली  और सुरजी मिलेंगी जो अपने माता-पिता तथा अपने ससुराल वालों का खयाल रखतीं हैं। फिर भी हमारा समाज आज भी बेटियों के पैदा होने पर मायूस होता है। यही हमारे समाज की विडम्बना है। बुढ़ापे में माता-पिता एवं सास-ससुर की सेवा बेटियाँ करती हैं और इन सब से चिंता मुक्त होकर मजे में बेटे दिन गुजारते हैं।

शिवमूर्ति की कहानियाँ मुख्यतया स्त्री केन्द्रित हैं। उनकी स्त्री पात्र निम्न वर्ग की हैं और कामकाजी हैं। अपनी मेहनत-मजदूरी के बल पर अपना और अपने परिवार का पेट भरती हैं, लेकिन पितृसत्तामाक व्यवस्था के चलते ये दुख, निराशा और दुर्दशा तक पहुँचती हैं। कहानीकार शिवमूर्ति इन कर्मठ स्त्रियों के साथ खड़े दिखाई देते हैं। उनका मानना है कि पितृसत्तामाक व्यवस्था को कायम रखने में इन स्त्रियों का बचपन में विवाह हो जाना सबसे प्रमुख कारण है। कहानीकार की दृष्टि इन स्त्रियों को शिक्षित करने की है। यदि स्त्रियाँ शिक्षित हो

जाएँ और बाल विवाह रुक जाय, तो अपने आप पितृसत्तामाक व्यवस्था खत्म हो जाएगी।

## 2.4 टूटता दाम्पत्य जीवन

भारतीय संस्कृति में पति-पत्नी के लौकिक एवं आध्यात्मिक संबंध को दाम्पत्य की संज्ञा दी गयी है। किसी भी परिवार में सबसे अधिक मजबूत बंधन पति-पत्नी का होता है। इसे परिवार की रीढ़ कहा जाता है, जिसपर परिवार के अन्य संबंध आश्रित होते हैं। स्वस्थ, सुखी एवं सफल दाम्पत्य जीवन की कुंजी पति-पत्नी के बीच की आपसी निष्ठा, त्याग, समझदारी, समर्पण, प्रेम आदि से होती है। आज पाश्चात्य संस्कृति का बढ़ता प्रभाव, स्त्री की आत्मनिर्भरता, पुरुष का सामंतवादी सोच, आधुनिकीकरण आदि ने पति-पत्नी के संबधों को काफी हद तक प्रभावित किया है। यही कारण है कि दाम्पत्य सम्बन्धों में अलगाव और तनाव बढ़ा है। इस विषय में डॉ. पुष्पपाल सिंह का कथन है - **“विविध प्रकार और कारणों से आज पति-पत्नी के बीच दूरियाँ आ गयी हैं, किन्तु फिर भी सामाजिकता के भय और सात जन्मों तक निभाई जाने वाली प्रीति के संस्कारवश स्त्री और पुरुष, पति-पत्नी के इस रिश्ते को ढोए चले जाते हैं।”**[28] असल में ढोए जाने वाले रिश्तों की मजबूरी इंसान को सामान्य जीवन जीने नहीं देती। आज वह समय नहीं है जब पत्नी अपने पति को देवता मानकर पूजनीय समझे और पति भी अपनी पत्नी के प्रति पूर्ण आत्मीयता तथा स्नेह दिखाए। समय बदल गया है। न वह देव-भाव रहा, न स्नेह-भाव। पति-पत्नी के कटु संबंधों के कारण ‘तलाक’ आज आम बात हो गयी है। हालाँकि भारतीय ग्रामीण जीवन कुछ हद तक तलाक की पहुँच से दूर तो है, किन्तु वहाँ भी पति-पत्नी के सम्बन्धों में तनाव का माहौल काफी मात्रा में दिखाई देता है।

शिवमूर्ति की कहानी 'जुल्मी' एक पारिवारिक विघटन की कहानी है, जिसमें पिता का अहंकार उसके बेटे के दाम्पत्य जीवन के विघटन का कारण बनता है। बहू 'कोइली' का भाई आखिरी साँस लेता है, लेकिन उसका ससुर ऐसे समय में 'कोइली' को उसके मायके न भेजकर घर में हो रहे कथा-पूजन को ज्यादा महत्व देता है। इस तरह का जिदवादी सोच हमेशा संयुक्त परिवार को विघटित करता है। अपने अहंकार के वशीभूत होकर वह कोइली से कहता है - **"देखो बहू। तुम्हें जाना है तो जाओ। लेकिन जैसे बिना 'पठये' जा रही हो वैसे ही बिना 'आनने' का इंतज़ार किए लौट आना।"**[29] गाँव के पारंपरिक रीति-रिवाज़ के अनुसार बहू को ससुराल से मायके ले आने और ले जाने में घर के पुरुष का साथ होना जरूरी होता है। कोइली अकेली तो मायके चली जाती है, लेकिन कोइली के माँ-बाप अब उसे अकेले ससुराल नहीं भेजना चाहते। उनका मानना है कि ससुराल वालों को आकर सम्मान पूर्वक कोइली को वापस ले जाना चाहिए। दोनों ही परिवारों के बड़े-बुजुर्गों के अहंकार के चलते कोइली का दाम्पत्य जीवन खत्म हो जाता है। अपने-अपने अहंकारों को दूर रखकर यदि कोइली का ससुर एवं उसका पिता थोड़ी सी भी समझदारी दिखाते तो एक सुखी दाम्पत्य जीवन टूटने से बच जाता ।

शिवमूर्ति की 'ख्वाजा, ओ मेरे पीर!' कहानी लेखक के मामा-मामी के दाम्पत्य जीवन की अनूठी कहानी है। मामा के विवाह की यह शर्त थी कि दूल्हे को घर जमाई बनकर ससुराल में रहना होगा। बाल-विवाह की वेदी पर चढ़ी यह शादी तब डगमगाने लगती है, जब मामा के पिता की असमय मृत्यु हो जाती है। मृत्यु-शय्या पर पड़े अपने पिता को मामा परिवार की ज़िम्मेदारी उठाने का वचन देते हैं - **"मामा का तर्क था - मैंने मृत्यु-सेज पर लेटे पिता को वचन दिया है, माँ और छोटे भाइयों के भरण-पोषण का। इनको असहाय छोड़कर ससुराल जाकर**

**बसना अब कैसे हो सकता है? मामी का तर्क था - इसी शर्त पर विवाह हुआ है कि जमाई ससुराल आकर बसेंगे। यदि वे अपनी माँ और भाइयों को छोड़कर नहीं आ सकते, तो मैं अपने माँ-बाप को बेसहारा छोड़कर ससुराल कैसे चली जाऊँ?"**[30]अपने दाम्पत्य जीवन को बचाने का बीच का मार्ग मामी ने निकाला। अपने माता-पिता को खाना खिलाकर रात में ही मामी अपने पत्नी धर्म का निर्वाह करने के लिए निकल पड़ती। कर्तव्य की डोर से बंधे मामा-मामी अपने अपने हिस्से की ज़िम्मेदारी बुढ़ापे तक उठाते हैं, परंतु एक साथ एक छत के नीचे अपना दाम्पत्य जीवन नहीं जी पाते। कई सालों के बाद जब लेखक अपने मामा-मामी को मिलाने का प्रयास करता है, तब वह प्रयास भी विफल हो जाता है। लेखक के मामा-मामी अगर जरा सी समझदारी दिखाते हुए एक दूसरे के साथ रहने की बात करते तो शायद अपने अंतिम दिनों में एक साथ रह सकते थे। दोनों में से यदि एक भी आगे बढ़कर साथ रहने की पहल करता तो कहानी के अंत में मामा-मामी का अलगाव दूर हो सकता था।

'भरतनाट्यम्' कहानी के ज्ञान और उसकी पत्नी के दाम्पत्य जीवन में तनाव केवल बेटा न होने के कारण होता है। बेटा पाने की महत्वाकांक्षा में ज्ञान की पत्नी अपने जेठ के साथ शारीरिक संबंध बनाती है, ताकि वह उनसे बेटा पैदा कर सके। कहानी के अंत में देखा जाता है कि ज्ञान की पत्नी अपने पति और तीन बच्चियों को छोड़कर खलील दर्जी के साथ कलकत्ता भाग जाती है। हमारे समाज में पुत्र को जन्म देने वाली माँ का बड़ा मान-सम्मान होता है। इसी की लालसा में ज्ञान की पत्नी अपने दाम्पत्य जीवन को नष्ट  कर देती है। उसके लिए पुत्र जरूरी है, दाम्पत्य जीवन का सुख नहीं।

### 2.4.1 पति की महत्वाकांक्षा

'सिरी उपमा जोग' कहानी में गाँव के लालू के पिता पर अपने परिवेश को छोड़कर शहर की आबोहवा का असर हो जाता है। एक महत्वाकांक्षी पति के मन में अपने अन्य अधिकारियों के घर के वातावरण को देखकर अपनी ग्रामीण पत्नी तथा अपने बच्चों को लेकर हीन भावना पनपती है। लेखक लिखता है - **"शहर में अपने को अनमैरिड बताते थे। इस समय तक उनकी जान पहचान जिला न्यायाधीश की लड़की ममता से हो चुकी थीऔर उसके सानिध्य के कारण पत्नी से जुड़ा रहा-सहा रागात्मक संबंध भी क्षीण हो गया।"**[31] पति-पत्नी के बीच तीसरे की मौजूदगी उनके सम्बन्धों में प्रेम और विश्वास को नष्ट कर देता है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि ग्रामीण परिवेश में भी पति-पत्नी के संबंधों में दरार तब पड़ती है, जब उनके वैवाहिक जीवन में तीसरे का प्रवेश होता है। यह तीसरा व्यक्ति पुरुष या स्त्री कोई भी हो सकता है। 'सिरी उपमा जोग' कहानी में ए.डी.एम. के जीवन में कलेक्टर की बेटी ममता का प्रवेश ही उसे पहली पत्नी और बच्चों से दूर कर देता है। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि बड़ा आदमी बनने के पश्चात् लालू का पिता अपनी उस पत्नी को भूल जाता है, जिसकी बदौलत वह ए.डी.एम. बना है। पति के बदले स्वभाव को देखकर लालू की माँ अपने पति से कहती है **- "अब मैं आपके 'जोग' नहीं रह गई हूँ, कोई शहराती मेम ढूँढिए अपने लिए।"**[32] लालू की माँ का कथन यह दर्शाता है कि गाँव की महिलाएँ इस बात से अनभिज्ञ नहीं हैं कि उनका पति शहर जाकर उनसे दूर हो जाएगा।

लालू की माँ शहर में रहने वाले अपने पति को पत्र लिखती है, जिसमें लिखा है **- "अगर आपके चाचाजी मेरी झूठी बदनामी लड़के वालों तक पहुँचा देंगे**

**तो मेरी बिटिया की शादी भी टूट जाएगी"**[33] लालू की माँ का एक तरह से यह मूक विद्रोह है। '**आपके चाचाजी'** और **'मेरी बिटिया'** कहने का तात्पर्य है कि लालू की माँ ने अपने-आपको वैवाहिक संबंध से मुक्त कर लिया है। शहरी जीवन-शैली से प्रभावित महत्वाकांक्षी पति ने एक ग्रामीण परिवार को विघटित कर दिया। पारिवारिक जीवन के प्रेम और महत्व को पूरी तरह से भूलकर और  भौतिकता की भावना से ग्रसित होकर लालू का पिता पूर्णतः संवेदनहीन हो गया है। उसने अपने स्वार्थ और महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए उस पत्नी का परित्याग किया है, जिसने उसके उज्ज्वल भविष्य की केवल कामना ही नहीं की, बल्कि खुद मेहनत करके उसके भविष्य को सँवारा। उसकी पढ़ाई में पूरा सहयोग किया। इस तरह पति आगे बढ़ता जाता है और पत्नी पीछे छूट जाती है। क्या जीवन का ऐश्वर्य, पद, प्रतिष्ठा और दूसरी स्त्री का आकर्षण सहज मानवीय संबंधों को कुचल देता है? उस ग्रामीण पत्नी का क्या कसूर था, जिसने अपने पति को बनाने में अपने जीवन को कुर्बान कर दिया।

### 2.4.2 पत्नी की आकांक्षा

'सिरी उपमा जोग' कहानी में हम देखते हैं कि एक पत्नी यह इच्छा रखती है कि उसका पति पढ़-लिखकर एक बड़ा अफसर बने। इसके लिए वह दिन-रात मेहनत करके अपने पूरे परिवार की जिम्मेदारियाँ निभाती है। यहाँ तक कि अपने गहने बेचकर अपने पति की प्रतियोगिता परीक्षा के शुल्क और पुस्तकों की व्यवस्था करती है। पति को ताज़ा खाना देती है और खुद बासी खाना खाती है। पति का जब नौकरी के लिए सेलेक्शन होता है, तब वह खुशी के मारे यह कहते हुई रोती है - **"गाँव की औरतें उसे ताना मारती थीं कि खुद ढोएगी गोबर और भर्तार को बनाएगी कप्तान, लेकिन अब कोई कुछ नहीं कहेगा, मेरी पत बच**

**गई।"**[34] अपने पति को सारी घर-बार की जिम्मेदारियों से मुक्त कराकर, उसे बहुत बड़ा अफसर बनाने की एक पत्नी की आकांक्षा जब पूरी होती है, तब उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। पति की कामयाबी को वह अपने जीवन की सफलता समझती है। उसकी निगाह में पति-पत्नी में कोई अंतर नहीं है।

'भरतनाट्यम्' कहानी में ज्ञान की पत्नी को पुत्र प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा रहती है। पुत्र प्राप्ति की आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए वह अपने पति को घर वालों से छिपकर दूध पीने को देती है, ताकि उसका पति ताकतवर रहे और वह उसे एक बेटा दे सके। वह मानती है कि यदि पति हृष्ट-पुष्ट रहता है तो पुत्र होता है। फिर भी जब कोई फायदा नहीं होता, तब वह अपने जेठ के साथ शारीरिक संबंध बनाती है, जिसका उसे ज़रा भी खेद नहीं है। बेटा पाने की इच्छा में ज्ञान की पत्नी खलील दर्जी के साथ भाग जाने में भी कोई परहेज नहीं करती। उसके लिए पुत्र-प्राप्ति सर्वोपरि हो गया है। उसकी तीन-तीन बेटियाँ हैं, फिर भी एक बेटा चाहिए।

'केशर कस्तूरी' कहानी की केशर यह इच्छा रखती है कि उसका पति एक सरकारी नौकरी करे, जिससे उसका घर-परिवार आराम से चल सके, क्योंकि उसके पति का व्यवहार उसके साथ अच्छा नहीं है। इस संबंध में केशर अपने अधिकारी मौसा से कहती है - **"उनको कोई चपरारसी-ओपरासी की नौकरी दिला दीजिए पापा।"**[35] केशर अपने मौसा को पापा कहती है। केशर का यह कथन बताता है कि उसकी आर्थिक तंगी को एक सरकारी नौकरी ही पूर्ण कर सकती है, भले ही वह छोटी नौकरी ही क्यों न हो। इससे नियमित वेतन मिलेगा। इसलिए वह यह इच्छा रखती है कि उसका पति एक सरकारी नौकरी करे और इस काम में उसके मौसा उसकी मदद करें। केशर की यह इच्छा अधूरी रह जाती है। वह

खुद दिन में घर-गृहस्थी का काम समाप्त करके रात में सिलाई का काम करती है। इस दृश्य को देखकर लेखक लिखता है **-"एक हाथ में कैंची पकड़े, सिलाई मशीन को आगे रखे बैठी है केशर। चेहरा सामने है, आँखें आँसुओं से भीगी। पलकें बंद। मशीन में एक अधसीला कपड़ा लगा है।"**[36] जब पति के सरकारी नौकरी पाने की उसकी इच्छा पूरी नहीं होती, तब वह खुद कर्म क्षेत्र में उतरती है।

### 2.4.3 पति-पत्नी धर्म की अवहेलना

पति-पत्नी परस्पर एक दूसरे के पूरक होते हैं। पत्नी, पति की अर्धांगिनी होती है, वह अपने पति का आधा अंग है, जिसके कारण वह जो भी कार्य करती है, उसका सीधा असर उसके पति पर पड़ता है। इसी तरह यदि  पति भी गैर स्त्री के संपर्क में आकर उसके साथ शारीरिक संबंध बनाता है तो पति-पत्नी धर्म की अवहेलना होती है। इससे पति-पत्नी के पवित्र बंधन पर आँच आती है। 'भरतनाट्यम्' कहानी में हम देखते हैं कि ज्ञान की पत्नी बेटा पाने की चाह में अपने जेठ के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करती है। ज्ञान के रंगे हाथ पकड़ने पर वह जेठ के बारे में ज्ञान से खुल्लमखुल्ला कहती है **-"उनकी कोई गलती नहीं है। मैं ही उनका हाथ पकड़कर मंड़हे से लिवा लाई थी, बेटा पाने के लिए।"**[37] पुत्र पैदा करने की तीव्र कामना के चलते ज्ञान की पत्नी, पत्नी धर्म की अवहेलना करती है।

'सिरी उपमा जोग' कहानी में लालू के पिता अपनी गाँव की पत्नी के साथ धोखा करके शहर में अपनी अलग गृहस्थी बसा लेते हैं। गाँव की जिस पत्नी ने उन्हें अफसर बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, उसी के साथ उन्होंने अपने पति होने का दायित्व नहीं निभाया। उनकी इस मानसिकता को कहानीकार

इन शब्दों में बयान करता है **-"गाँव कई-कई महीनों बाद आने लगे थे। और आने पर पत्नी जब घर की समस्याएँ बताती तो लगता, ये किसी और की समस्याएँ हैं। वह शहर में अपने को 'अनमैरिड' बताते थे।"**[38] गाँव में जन्मे, पले, बढ़े एक शहरी अफसर की यह है मानसिकता। अपनी जड़ों से कटने की मानसिकता।

शिवमूर्ति अपनी कहानियों के माध्यम से आज के अनेक गंभीर मुद्दे उठाते हैं, उन्हीं मुद्दों में से एक है टूटता-बिखरता आज का दाम्पत्य जीवन। लेखक का मानना है कि दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाने के लिए व्यक्तिगत आकांक्षा, महत्वाकांक्षा के लिए कोई जगह नहीं है। सिर्फ दोनों को अपना-अपना दाम्पत्य धर्म निभाना जरूरी है। यह धर्म तभी मजबूत हो सकता है, जब पति-पत्नी के बीच तीसरे का प्रवेश वर्जित होगा। इसमें पति-पत्नी के साथ-साथ दोनों तरफ के माता-पिता की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है एवं विवाह के समय पति-पत्नी में से किसी को भी किसी शर्त के बंधन में न बाँधा जाय।

### 2.5 अवैध यौन संबंध

यौन संबंध मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। मनुष्य में यौन-क्षुधा स्वभाविक रूप से विद्यमान रहती है। प्रश्न उठता है कि यौन संबंध में वैध किसे कहा जाए और अवैध किसे? अवैध यौन संबंध के संदर्भ में डॉ. जोगेन्द्र सिंह वर्मा लिखते हैं **-"शहरी सभ्यता के संक्रमण एवं फैशनपरस्ती के फलस्वरूप ग्रामीण धारा पर यौन संबंधी नैतिकता के नए प्रतिमान उभर रहे हैं। परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरता हुआ ग्रामीण परिवेश यौन संबंधों के नए संदर्भ प्रदान कर रहा है।"**[39] उद्धरण में कहा गया है कि अब ग्रामीण समाज में भी यौन संबंधों की परिभाषा बदल रही है। चूँकि शिवमूर्ति ग्रामीण जीवन के कथाकार हैं, अतः उनकी कहानियों में इसकी सचाई को बड़ी बारीकी से जाँचा-परखा गया है और ग्रामीण

समाज की विभिन्न घटनाओं को केंद्र में रखकर इस समस्या की तह तक पहुँचने का प्रयास किया गया है। शिवमूर्ति यौनाकर्षण, यौन-पिपासा, यौन शोषण आदि के चित्रण की दृष्टि से बड़े कथाकार हैं। वे कथा की आवश्यकतानुसार बेझिझक इन प्रवृत्तियों का चित्रण करते हैं और जहाँ जो कहना होता है, उसे खुलकर कहते हैं। भद्र व्यवहार के चक्कर में पड़कर वे मौन या अर्ध मुखर नहीं रहते। यह बिंदासपन उनके कथाप्रवाह को रोचक और प्रभावी बनाता है।

'तिरिया चरित्तर' कहानी की केंद्रीय पात्र विमली है। वह अपने माँ-बाप के लिए लड़का बनकर रहना चाहती है। विमली जवान है और सैकड़ों निगाहें उस पर लगी रहती हैं। शिवमूर्ति विमली की इस अवस्था पर लिखते हैं **-"पके आम के पेड़ की रखवाली जैसा कठिन काम। कितनी निगाहें हैं, पके आम के पेड़ पर।"**[40] विमली अपने अनदेखे, अनजाने पति के लिए अपनी शुचिता और कौमार्य को ईमान की तरह बचाए रखती है। एक लड़की भट्ठे पर काम करे और लोग न बोलें, आखिर यह कैसे हो सकता है? वहाँ रहते हुए विमली मन ही मन डरेवर जी को चाहने लगती है। यह चाहना एक स्त्री द्वारा पुरुष के साथ दोस्त की तरह है, लेकिन हमारी भारतीय मानसिकता इस बात की इजाजत कहाँ देती है? पुरुष मैत्री की इस चाहत को उसकी यौन लिप्सा से जोड़ दिया जाता है। इसी क्रम में एक दिन देर से घर लौटते हुए विमली को पहुँचाते हुए बिल्लर जब बदमाशी पर उतर आता है, तब वह उसे दाँत से काट लेती है और उससे अपनी रक्षा करती है।

विमली के ससुर बिसराम की नज़र विमली पर अच्छी नहीं है। विमली इस कौटुंम्बिक यौन प्रताड़ना का प्रतिरोध करती है। यौन पिपासु बिसराम तरह-तरह के जतन करता है और कामयाब न होने पर आखिर में छल का सहारा

लेता है और प्रसाद में अफीम मिलाकर विमली को अचेत कर अपनी यौन पिपासा बुझाता है और अपनी पोल खुलने के डर से विमली पर तरह-तरह के चारित्रिक आरोप लगाकर भरी पंचायत के सामने खड़ा कर देता है। पंचायत विमली के माथे पर दागने की सजा सुनाती है। अंततः बिसराम को ही अपनी लांछित बहू को दागने का काम सौंपा जाता है। इस निर्णय का विरोध करती हुई मनतोरिया की माई कहती है - "**ई अंधेर है। दगनी दागना है तो बिसराम और बोधन चौधरी के चूतर पर दागना चाहिए। कोई काहे नहीं पूछता कि बोधन की बेवा भौजाई दस साल पहले काहे कुएँ में कूदकर मर गयी थी। गाँव की औरतें मुँह खोलने को तैयार हो जाएँ तो बिसराम की घटियारी के वह एक छोड़ दस 'परमान' दे सकती हैं। वही आदमी बेबस बेकसूर लड़की को दागेगा? और वही बोधन बड़का पग्गड़ बाँधकर दगनी की सज़ा सुनाएँगे? यही नियाव है? ई पंचायत नियाव करने बैठी है कि अंधेर करने?"**[41] मनतोरिया की माई की आवाज़ दबा दी जाती है। स्थिति यह है कि विमली बाहर के लोगों से तो अपनी रक्षा कर लेती है, लेकिन अपने तमाम प्रयत्नों के बावजूद पितातुल्य ससुर से अपनी रक्षा नहीं कर पाती। विमली का पहले यौन शोषण होता है और विरोध करने पर वही ससुर भरी पंचायत में उसके माथे पर दागता है। बहू अल्लाने लगती है।

'कुच्ची का कानून' कहानी में विधवा कुच्ची नारी जाति की प्रतिनिधि है। वर्तमान व्यवस्था से वह हमेशा के लिए आज़ादी चाहती है। कोख नारी की है, कोख पर नारी का अधिकार हो। कुच्ची की यही माँग है। गाँव में अचानक सुबह-शाम कुच्ची के पाँच माह के पेट की दबी जबान चर्चा शुरू हो जाती है, क्योंकि उसका पति शादी के दो साल बाद मर गया था और उसके मरने के दो-ढाई साल बाद वह पेट से हो गयी थी। कुच्ची के पेट की बात सारे गाँव में फैल जाती है। उसका चचेरा जेठ बनवारी उसे बदनाम करने और गाँव से बाहर निकालने के

लिए पंचायत बैठाता है। यह वही बनवारी है जो दो बार कुच्ची के साथ बदसलूकी कर चुका है। पहली बार तो कुच्ची सिर्फ यह कहकर छोड़ देती है कि **"यह काम ठीक नहीं किया बड़कऊ।"**[42] और दूसरी बार जब वह कुच्ची को अकेली पाकर घर के अंदर आता है तो कुच्ची ऐसा दहाड़ती है कि वह दुबक कर वापस चला जाता है। यही बनवारी और पंचायत के सदस्य गाँववालों के समक्ष बेशर्मी से कई अपमान जनक शब्दों के साथ एक नारी के गर्भवती होने का मज़ाक उड़ाते हैं। जबकि मज़ाक उड़ाने वालों का विगत चरित्र अच्छा नहीं है।

कुच्ची पंचों के सारे सवालों का जवाब देती है। वह कहती है कि यदि मैं दूसरी शादी करके चली जाती तो मेरे सास-ससुर अकेले हो जाते। मेरे हाथ, पाँव, नाक, कान, आँख पर मेरा हक है तो मेरी कोख पर भी मेरा अधिकार बनता है। पंचायत एक स्वर से कुच्ची की माँग को स्वीकारती है और बनवारी को डाँट-फटकार लगाती है। यहाँ सवाल उठता है कि कहानी में कुच्ची की माँग को स्वीकार लेने से क्या असल जिंदगी में भी उसकी माँग को स्वीकारा जाएगा? क्या उसके गर्भ को वैध कहा जाएगा? क्या यह अवैध यौन संबंध नहीं है? क्या पग-पग पर उसे प्रताड़ित नहीं किया जाएगा? यहाँ इतना जरुर कहना पड़ेगा कि कहानीकार शिवमूर्ति ने इस तरह के अत्यंत नवीन विषय को चुनकर साहित्य में अपनी एक उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज की है।

शिवमूर्ति की कहानियों के केंद्र में हैं - दलित स्त्रियाँ। 'तिरिया चरित्तर' की विमली की हालत अति गंभीर है। बाहर के लोगों से अपने-आप को बचाती हुई वह घर की मंजिल पर पहुँचकर न चाहते हुए बलात्कार का शिकार होती है। 'कुच्ची का कानून' कहानी की कुच्ची स्वेच्छा से अवैध संबंध स्थापित करती है। 'भरतनाट्यम्' का ज्ञान एक शिक्षित बेरोजगार है। वह अपनी पत्नी की किसी भी

इच्छा को पूरी नहीं कर पाता। परिणाम यह होता है कि वह स्वेच्छा से कई पुरुषों के साथ अवैध यौन संबंध स्थापित करती है। उसके पति को यह बुरा भी नहीं लगता।

### 2.5.1 ससुर व बहू संबंध

शिवमूर्ति की कहानियों में हम दो तरह के ससुर देखते हैं - पहला 'तिरिया चरित्तर' कहानी में विमली का ससुर बिसराम जो अपनी बहू के साथ धोखे से बलात्कार करता है और दूसरा 'कुच्ची का कानून' कहानी की कुच्ची का ससुर रमेसर, जो अपनी बहू का विषम परिस्थिति में भी साथ देता है। पितातुल्य ससुर बहू के लिए पति की गैर मौजूदगी में बहुत बड़ा सहारा होता है। इसके विपरीत विमली का ससुर व्यभिचारी है। उसने अपने व्यभिचार से ससुर-बहू के पवित्र रिश्ते को तार-तार कर दिया है। गाँव की औरतें ससुर बिसराम के विषय में कहती हैं - **"दिन भर झोपड़ी के सामने गाँजे की महफिल लगा रहा है। कहीं कोई भेद? अभी तक तो यही चर्चा थी कि लड़के को गौने में क्यों नहीं बुलाकर लाया बिसराम। लाख बाप से झगड़कर गया था, लेकिन यह तो उसी का गौना था....फिर पतोहू के आने के तीसरे दिन ही बहन को क्यों विदा कर दिया?"**[43] उद्धरण की कई बातों से पता चलता है कि बिसराम की नीयत में कहीं न कहीं खोट है। वह चाहता तो अपने बेटे को उसके गौने में बुला सकता था, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। विमली के मायके से उसने विमली के बारे में तरह-तरह की बातें सुन रखी थी। उसे लगा कि उसकी बहू का चाल-चलन ढीला है। यही कारण है कि बिना बेटे के वह अपनी बहू का गौना ले आता है। जो विमली बिल्लर जैसे पुरुष को छेड़ने पर सबक सिखाती है, वही विमली अपने ससुर के

सामने असहाय बन जाती है। उसका ससुर छल से उसे भोगता है। कहानी हमें बताती है कि स्त्री घर-बाहर कहीं भी सुरक्षित नहीं है।

'कुच्ची का कानून' कहानी की कुच्ची का ससुर रमेसर कुच्ची को अपनी बहू नहीं बेटी समझता है और बेटे की मौत के बाद पंचायत में लड़ती अपनी बहू के साथ खड़ा रहता है। कुच्ची भी सास-ससुर के कारण ही दूसरी शादी नहीं करती और उनके लिए ही जीवन भर लड़ती-मरती रहती है। 'सिरी उपमा जोग' कहानी में लालू की माँ अपने पति की गैर मौजूदगी में एक बेटी की तरह अपने ससुर की देखभाल करती है। पिता समान ससुर के गुजर जाने के बाद लालू की माँ पर दुखों का पहाड़ टूट जाता है। पति की गैर मौजूदगी में ससुर का जो साया उस पर था, उस कमी को लालू की माँ हमेशा महसूस करती है। इस तरह शिवमूर्ति अपनी कहानियों में ससुर और बहू के संबंधों पर विचार करते हुए बताते हैं कि जहाँ समाज में बुरे ससुर हैं, वहीं अच्छे ससुर भी हैं।

### 2.5.2 जेठ व भयहू संबंध

'भरतनाट्यम्' कहानी में कहानी के नायक ज्ञान की पत्नी अपने जेठ के साथ अवैध संबंध रखती है, कारण कि जेठ को दो लड़के हैं और ज्ञान की पत्नी को तीन लड़कियाँ। ज्ञान की पत्नी को बेटा पाने की इतनी तीव्र इच्छा है कि उसे इस तरह के अवैध संबंध रखने में जरा भी बुरा नहीं लगता। ज्ञान एक दिन रंगे हाथ अपनी पत्नी को बड़े भाई के साथ पकड़ता है। इस पर वह बेझिझक अपने पति से कहती है - **"उनकी कोई गलती नहीं है। मैं ही उनका हाथ पकड़कर मँड़हे से लिवा लाई थी, बेटा पाने के लिए।"**[44] बेटा पाने की महत्वाकांक्षा में ज्ञान की पत्नी को अपने किए पर जरा भी पछतावा नहीं है। जेठ के लिए छोटे भाई की पत्नी बेटी समान होती है और बहू के लिए जेठ पिता समान, किन्तु आज

पवित्र-अपवित्र रिश्ते के कोई मायने नहीं रह गए हैं। अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए मनुष्य ने अपने रिश्तों में इतना घालमेल कर दिया है कि उसकी बदबू समाज की आबो-हवा को दूषित कर रही है।

'कुच्ची का कानून' कहानी की कुच्ची पर उसके जेठ बनवारी की नज़र गड़ी रहती है। पति की मृत्यु के बाद कुच्ची अपने सास-ससुर की सेवा में अपना तन-मन सब अर्पित कर देती है, लेकिन उसका जेठ बनवारी कुच्ची के साथ ज़ोर-जबरदस्ती कर अपनी कामुकता को बुझाना चाहता है। कहानीकार शिवमूर्ति लिखते हैं - **"बोझ उठाकर बनवारी के सिर पर रखा और जैसे ही मुड़ने को हुई कि बनवारी ने दाहिने पंजे से उसकी बाईं छाती दबोच ली। उसने चिहुँककर उसके हाथ को झटकना चाहा, लेकिन पकड़ इतनी सधी हुई थी कि मुक्त होने के लिए उसे जमीन पर बैठ जाना पड़ा। माख से उसकी आँखें भरभरा गईं। इतना पाप पाले हुए हैं ये उसके लिए अपने मन में! संभली तो उठते हुए इतना ही बोल पाई - यह काम ठीक नहीं किया बड़कऊ।"**[45] यह है जेठ का अपनी भयहू के प्रति व्यवहार, जिसे किसी भी कीमत पर सही नहीं ठहराया जा सकता।

'भरतनाट्यम्' कहानी में खुद ज्ञान की पत्नी अपने जेठ के साथ शारीरिक संबंध बनाने के लिए उतावली रहती है। उसका जेठ शरीर से हट्टा-कट्टा और पुष्ट है। उसके मन में कहीं से यह बात घर कर गयी है कि हट्टे-कट्टे आदमी से ही पुत्र की प्राप्ति होती है। उसकी इस मानसिकता के विषय में कहानीकार लिखता है - "**उसके अनुसार यदि पति तगड़ा है तो लड़का होगा, पत्नी तगड़ी है तो लड़की। इसे वह भाई साहब का उदाहरण देकर बखूबी सिद्ध कर देती है। मुझे चोरी से दूध पिलाने का उद्देश्य भी यही है कि अधिक स्वस्थ होकर मैं उसे**

**एक बेटा दे सकूँ"**[46] कहने का आशय यह है कि जेठ और भयहू के अवैध संबंध में कहीं ज़ोर-जबरदस्ती है तो कहीं स्वेच्छा है।

### 2.5.3 सरकारी कर्मचारी, ग्राम प्रधान और दलित स्त्री

'अकाल-दंड' कहानी की केंद्रीय पात्र एक दलित स्त्री सुरजी है। इलाके में अकाल फैला है। यह अकाल सिर्फ कमजोर, अशक्त और भूमिहीन लोगों के लिए है, अधिकारी और सरकारी कर्मचारियों के लिए यह सुकाल है। अकाल में सरकारी अकाल राहत समिति के प्रमुख सेक्रेटरी की नज़र दलित जवान स्त्री सुरजी पर रहती है। वह उसे प्राप्त करने के तमाम तरीके अपनाता है। एक बार सेक्रेटरी सुरजी की झोपड़ी में पहुँच जाता है। सुरजी उसका जमकर प्रतिरोध करती है। इस प्रतिरोध में सेक्रेटरी के आगे के दोनों दाँत टूट जाते हैं। लेखक लिखता है - **"लात का पक्का धक्का पिछवाड़े लगता है तो औंधे मुँह जाकर बाँस के चौखट से टकराते हैं। आगे के दोनों दाँत - घोड़ा-दंत निकल भागे।**[47] इतने पर भी सेक्रेटरी बाबू अपनी आदत से बाज़ नहीं आते। फिर उसे पाने का प्रयत्न करते हैं। परिणाम यह होता है कि सुरजी सेक्रेटरी बाबू के शरीर का सबसे नाजुक हिस्सा काटकर अलग कर देती है। सुरजी व्यभिचारी को अपने हाथ कड़ी सज़ा देती है।

'अकाल-दंड' कहानी में रंगी बाबू की बेटी माला सेक्रेटरी बाबू के कैंप से खिलखिलाती हुई निकलती है। उसे देखकर रंगी बाबू जड़ शून्य हो जाते हैं। उन्हें लगता है कि बेटी की इज्ज़त के बदले में मिले चावल-गेहूँ के बोरों ने उन्हें गूँगा और बहरा बना दिया है। माला को सेक्रेटरी बाबू पहले राहत सामग्री बाँटने वाली लेडी वर्कर बनाता है, फिर सुपरवाइजर और रंगी बाबू को बोरों की दलाली। कहानी में रंगी बाबू जैसे लोग असहाय दिखते हैं और गरीब सुरजी सेक्रेटरी से बदला लेती है। लेखक बताना चाहता है कि राहत सामग्री के नाम पर सेक्रेटरी

जैसे सरकारी पदों पर रहने वाले लोग किस तरह से अपने पद का नाजायज फायदा उठाते हैं और भोग-लिप्सा में डूबे रहते हैं। 'अकाल-दंड' कहानी में हम देखते हैं कि जहाँ सुरजी अवैध यौन संबंध का विरोध करती है, वहीं माला पदोन्नति की चाह में अवैध यौन संबंध स्थापित करती है। सुरजी गरीब परिवार की है और माला बड़े परिवार की। यही दोनों में अंतर है।

**'कसाईबाड़ा'** कहानी का प्रधान सामूहिक आदर्श विवाह की आड़ में गाँव की दलित लड़कियों की शादी कराकर उन्हें शहर में देह व्यापार के लिए बेच देता है। वह जिन लड़कियों को बेचता है, उनमें अधिकांश उसकी नाजायज संतानें हैं। प्रधान के विरुद्ध धरने पर बैठी शनिचरी इस बात का खुलासा तब करती है, जब गाँव के थाने का दारोगा पूछताछ के लिए शनिचरी के पास आता है और पूछता है कि रूपमती का बाप कौन है? शनिचरी सच से परदा हटाती हुई कहती है - **"हुजूर, पैदा तो इनहि प्रधान जी ने किया था। पूछे का मौका भी नहीं दिए। हमारे आदमीजी तो परदेश गए रहे।"**[48] शनिचरी के इस कथन से ग्राम प्रधान का असली चेहरा उजागर हो जाता है। कहानी में पहले से शनिचरी अवैध यौन संबंध का शिकार हुई है और अब अपनी बेटी के साथ-साथ गाँव की अन्य बेटियों को भी इस नरक से निकालना चाहती है। कहानीकार शिवमूर्ति आज़ादी के बाद के गाँवों का असली चेहरा हमारे सामने रखते हैं, जिसे सुधारने और प्रगति के पथ पर ले जाने की ज़िम्मेदारी ग्राम प्रधान और प्राइमरी स्कूल के मास्टर को दी गई थी। अंततः प्रधान अपनी पत्नी के माध्यम से दूध में जहर डलवाकर शनिचरी को मार डालता है। इस घटना के बाद प्रधान की पत्नी प्रधान से कहती है - **"ई गाँव लंका है। इहाँ लंकादहन होवेगा। रावन तू ही हो। लीडर बना है भिभीखन तूहरे दूनो के चलते गाँव का सत्यानाश होवेगा। होई रहा है। बहिन-बिटिया बेंचो हमहूँ का बेचि लेव।"**[49] इसी क्रम में लीडर की पत्नी लीडर से कहती है - **"तुम्हारे ही**

**पाप के कारण मेरी कोख नहीं फल रही है।" "तुम लोग कसाई हो। सारा गाँव कसाईबाड़ा है। मैं नहीं रहूँगी इस गाँव में।"**[50] इन दोनों स्त्रियों के भीतर जो विद्रोह की जो आग भड़क रही है, वह आने वाले समय में परिवर्तन की सूचक है।

अवैध यौन संबंध के दो रूप हैं - स्वेच्छा से और अनिच्छा से। नारी की व्यथा दोनों में निहित है, क्योंकि समाज दोनों को स्वीकार नहीं करता। कथाकार शिवमूर्ति दोनों के ही पक्ष में नहीं हैं। उनकी दृष्टि यह है कि स्त्री के प्रति पुरुष की मानसिकता बदलनी चाहिए। रिश्तों की अपनी मर्यादाएँ हैं। इस मर्यादा का निर्वाह पुरुष के साथ-साथ स्त्री को भी अपनी महत्वाकांक्षा से ऊपर उठकर करना होगा। यदि मर्यादाओं की सीमाएँ टूटेंगी तो इस तरह के अवैध संबंध किस गति और किस सीमा तक पहुँचेंगे, कहना कठिन है। हाँ, 'कुच्ची का कानून' में वे मर्यादाओं को तोड़कर भविष्य की उस सीमा तक जाते हैं, जहाँ एक स्त्री अपने कोख का हक़ माँगती है।

### 2.6 मानवीय मूल्यों का ह्रास

भौतिक संस्कृति नए आविष्कारों के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताओं का विस्तार भी करती है, जिसके कारण मनुष्य का दृष्टिकोण भौतिकवादी बनने लगता है। अन्य जीवों की भाँति खाना-पीना, सोना, कामेच्छा-पूर्ति आदि उसकी भौतिक आवश्यकताएँ हैं, जिसे वह पूर्ण करने की निरंतर कोशिश करता है। यह मनुष्य के लिए जरूरी भी है, किन्तु आज की भौतिकवादी संस्कृति के कारण मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है। भौतिकवादी संस्कृति ने मनुष्य के समक्ष आज इतनी विलास-सामग्री रखी है कि वह उन्हे पाने के लिए लालायित हो जाता है। असल में संस्कृति एक व्यवस्था है, जिसमें जीवन के अनेक प्रतिमानों,

व्यवहारिक, भौतिक और अभौतिक प्रतीकों, परम्पराओं, विचारों, सामाजिक मूल्यों, मानवीय क्रियाओं तथा आविष्कारों को सम्मिलित किया गया है।

भौतिकवादी संस्कृति ने समाज में अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। 'अकाल-दंड कहानी में कई ऐसी स्त्रियाँ हैं जो भौतिक लाभ उठाने के लिए सेक्रेटरी के साथ अपने शरीर का सौदा करने में जरा भी संकोच नहीं करतीं। गाँव के दबंग रंगी बाबू ने अपनी बेटी माला को सेक्रेटरी की मदद से आंगनवाड़ी में सर्वेयर से सुपरवाइजर बनवा दिया है। इसके लिए रंगी बाबू की सिफ़ारिश के साथ-साथ माला को सेक्रेटरी बाबू के साथ शारीरिक संबंध भी बनाना पड़ता है। यहाँ माला अपनी मर्जी से सेक्रेटरी बाबू के साथ शारीरिक संबंध बनाती है और अपनी नौकरी में पदोन्नति हासिल करती है। लेखक कहता है कि आज के दौर में मनुष्य के लिए भौतिक सुख प्रधान हो गया है।

'सिरी उपमा जोग' कहानी में लालू के पिता सभ्य और शहराती बनने की चाहत में अपनी गाँववाली पत्नी और बच्चों को छोड़कर शहर में एक पढ़ी-लिखी स्त्री ममता के साथ नयी गृहस्थी बसा लेते हैं। जिस गाँव में लालू के पिता पैदा हुए, बड़े हुए और अपनी गँवार पत्नी की मेहनत और त्याग से उच्च पद हासिल किए, उसी से पीछा छुड़ा लिए। हद तो तब हो गई जब उन्होंने अपने खुद के गाँव वाले पुत्र को पहचानने से इनकार कर दिया। उनकी इस मानसिकता पर कहानीकार लिखता है **-"लड़के पर नज़र पड़ते ही पूछते हैं, "हाँ, बोलो बेटे, कैसे?" लड़का सहसा कुछ बोल नहीं पा रहा है। वह सम्भ्रम नमसकर करता है। "ठीक है, ठीक है।" साहब जीप में बैठते हुए पूछते हैं, काम बोलो अपना, जल्दी, क्या चाहिए?" जीप रेंगने लगती है। लड़का एक क्षण असमंजस में रहता है, फिर जीप के बगल में दौड़ते हुए जेब से एक चिट्ठी निकालकर साहब की गोद में फेंक देता**

**है।"**[51] वर्तमान भौतिकवादी संस्कृति का यह कटु सत्य है। अच्छी नौकरी की तलाश में गाँव से शहर पलायन करने वालों की आज यही मानसिकता बन गयी है। मनुष्य कामयाबी, पैसा, रुतबा पाने की चाह में इतना स्वार्थी एवं अमानवीय हो गया है कि उसे अपने स्वार्थ और रुतबे के आगे कुछ भी नज़र नहीं आता। यहाँ तक कि अपने खून के रिश्ते भी गैर लगने लगते हैं।

### 2.6.1 नौकरशाह की मानसिकता

देश के लोकतंत्रीय व्यवस्था में शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए नौकरशाही की अहम् भूमिका होती है। नौकरशाही उस व्यवस्था को कहते हैं जिसके अंतर्गत सरकारी कार्यों का निर्देशन एवं संचालन उन व्यक्तियों के हाथों में होता है, जो प्रशासन द्वारा इस कार्य के लिए विशेष प्रशिक्षण देकर नियुक्त किए जाते हैं। बदलती परिस्थितियों में विशिष्ट सेवा कार्य के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है, जिसके कारण उनकी नियुक्ति की जाती है। गाँव में सूखा, अकाल, बाढ़ आदि के कारण राहत सामग्री बाँटने के लिए, एक सुचारु ढंग से व्यवस्था बनाई जाती है, जिससे राहत सामग्री आसानी से जरूरतमंद लोगों में बाँटी जाए। नौकरशाह इसी कार्य प्रणाली को सुचारु ढंग से चलाने की व्यवस्था करते हैं।

'अकाल-दंड' कहानी में हम भ्रष्ट नौकरशाही तथा सत्ता-नियामकों की निरंकुश मानसिकता से परिचित होते हैं। ग्रामीण रोजगार में चलने वाली धाँधली का वर्णन शिवमूर्ति इन शब्दों में करते हैं - **"सरकार की ओर से राहत के लिए गाँव के पास बनवाई जा रही सड़क का काम पूरा हो गया। अब मजूरी करनी है तो दो कोस दूर जाइए। वहाँ भी रोज-रोज काम मिलना निश्चित नहीं। सौ लोगों को लगाकर दो सौ की भर्ती दिखाई जाती है। जो बच गए वो वापस जाएँ। मेठ**

**और ठीकेदार जिसे चाहे रखें जिसे चाहे वापस भेज दें। मजदूरी देने के नाम पर भी दो-अंखी। ऊँची जाति वालों का नाम रजिस्टर में दर्ज करा लिया जाता है, लेकिन वे कोई काम नहीं करते। ठूँठ पेड़ों की छाँह में आकर बैठ भर जाते हैं। और उन्हें शाम की आधी मजूरी मिल जाती है। काहे भाई? शुरू-शुरू में बहुत कहा-सुनी हुई, लेकिन कोई सुनवाई नहीं। बोलने वाला अगले दिन काम से बाहर।"**[52] इन पंक्तियों में एक साथ कई समस्याओं का चित्रण मिलता है, जैसे - गरीबों का शोषण, दबंगशाही, लूट, खसोट आदि। साथ ही नौकरशाहों की मानसिकता का भी पता चलता है, जो गाँव वालों की विषम परिस्थिति का फायदा उठाते हैं। राहत सामग्री या तो खुद हड़प कर जाते हैं या फिर अपने लोगों को हड़पने के लिए दे देते हैं। इसी कहानी का नौकरशाह सेक्रेटरी गाँव के सरपंच रंगी बाबू के साथ मिलकर अकाल के समय राहत सामग्री की काला बाजारी करता है। इस कार्य में वह सरकार को तो लूटता ही है, साथ-साथ गाँव की बहू-बेटियों को भी लूटता है। इसमें कहीं वह सफल होता है, कहीं असफल। असफल होने पर इसकी भारी कीमत उसे चुकानी पड़ती है। 'अकाल-दंड' **की** गरीब-निम्न जाति की सुरजी सेक्रेटरी के सबसे नाजुक अंग को उसके शरीर से अलग कर देती है।

'भरतनाट्यम्' कहानी में सरकारी अधिकारी की तानाशाही मानसिकता का हमें बखूबी परिचय मिलता है। सचिवालय में काम करते वक्त ज्ञान का सामना उसके भ्रष्ट उच्च अधिकारी से होता है, जो अपने नीचे काम करने वालों को लूटता रहता है। जिस दफ्तर में ज्ञान काम करता है, उस दफ्तर के अधिकारी की मानसिकता द्रष्टव्य है **- "यहाँ बॉस की गुड्बुक में होना इस बात पर निर्भर नहीं था कि आप कितने हार्ड-वर्कर हैं, बल्कि इस बात पर कि आप कितनी चापलूसी कर लेते हैं, उससे कितना ज्यादा डरते और कितनी कम बातें करते हैं। उसके**

**जायज-नाजायज गुस्से को कितनी सहजता से 'सुखे-दुखे समे कृत्वा' के भाव से सिर झुकाकर स्वीकार करते हैं। उसके घर पर कितनी बार सलाम करने जाते हैं। और उसके बच्चों के जन्मदिन पर कैसा उपहार ले जाते हैं।"**[53] इस तरह के बॉस हमारे आस-पास के सरकारी कार्यालयों में आसानी से देखने को मिल जाते हैं, जो चाहते हैं कि उनके मुलाजिम उनकी हाँ में हाँ मिलाएँ। उच्च पद पर विराजित ऐसे नौकरशाहों की मानसिकता कितनी हीन हो गयी है, इसका चित्रण हम शिवमूर्ति की कहानियों में देखते हैं।

### 2.6.2 ओढ़ा हुआ शहरी चोला

'सिरी उपमा जोग' कहानी के लालू के पिता में जब तक ग्रामीण मानसिकता रहती है, तब तक वह अपनी ग्रामीण पत्नी के प्रति वफादार रहता है। वह अपने परिवार एवं गाँव की जड़ों से जुड़ा रहता है। जैसे ही वह ए. डी. एम. बनकर शहर में बसता है, उसे अपनी गाँव की पत्नी और बच्चे गँवार लगने लगते हैं। अपने साथी-मित्रों एवं उनके परिवारों को देखकर उसे अपना पहले वाला सब कुछ छोटा दिखने लगता है। उसके मन में हीन भावना उत्पन्न होती है। ज़िंदगी के प्रति देखने का उसका नज़रिया बदलने लगता है। ए. डी. एम. साहब के ओढ़े हुए शहरी चोले का वर्णन करते हुए कहानीकार लिखता है - **"वे इस बार कोई आश्वासन नहीं दे पाए थे। उसका रोना-धोना उन्हें काफी अन्यमनस्क बना रहा था। वे उकताए हुए से थे। अगले ही दिन वे वापस जाने को तैयार हो गए थे।"**[54] शिक्षा पाकर गाँव से पलायन करने वाले लोगों के दो मुँहेपन को और उनकी बेईमानी को लेखक यहाँ उजागर करता है।

आज ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो अच्छी नौकरी और अच्छी ज़िंदगी पाने की चाह में गाँव से शहर में बस जाते हैं और शहर में अपनी नयी गृहस्थी

बसा लेते हैं। गाँव की लालू की माँ का यह कथन इसी सच की ओर इशारा करता है - **"लगता है, आप मेरे हाथों से फिसले जा रहें हैं और मैं आपको सँभाल नहीं पा रही हूँ।"**[55] उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि लालू के पिता ए. डी. एम. साहब के जड़ों से कटने का आभास लालू की माँ को हो गया है। यह आभास सिर्फ लालू की माँ को ही नहीं है, ए. डी. एम. साहब को भी है। लालू की माँ का पत्र पढ़ने के बाद लालू के पिता की स्थिति को कहानीकार इस रूप में बयान करता है **- "क्या मिला उसको उन्हें आगे बढ़ाकर? वे बेरोजगार रहते, गाँव में खेती-बारी करते। वह कंधे से कंधा भिड़ाकर खेत में मेहनत करती। रात में दोनों सुख की नींद सोते। तीनों लोकों का सुख उसकी मुट्ठी में रहता। छोटे से संसार में आत्मतुष्ट हो जीवन काट देती। उन्हें आगे बढ़ाकर वह पीछे छूट गई। माथे का सिंदूर और हाथ की चूड़ियाँ निरंतर दुख दे रही हैं उसे।"**[56] यह एक पढे-लिखे अधिकारी का ओढ़ा हुआ शहरी चोला है। वह शहर में रहता जरूर है, लेकिन उसका गाँव उसके भीतर हमेशा विद्यमान रहता है। गाँव उसे अखरता रहता है।

भौतिकवादी संस्कृति ने आज मानवीय मूल्यों का तेजी से ह्रास किया है। यह संस्कृति मनुष्य को कर्तव्य पथ से भटकाती है और मनुष्य को अनैतिक बनाती है। यही कारण है कि गाँव से शहर में जाकर लोग अपनी जाति और अपने विवाहित होने का सच छिपाते हैं। इस माहौल में सरकारी कर्मचारी और अधिकारी की भूमिका सबसे पहले संदिग्ध के घेरे में आती है। कहानीकार का मानना है कि मानवीय मूल्यों का ह्रास तभी रोका जा सकता है, जब भौतिकवादी संस्कृति से बचा जाय और उसकी जगह भारतीय संस्कृति को अपनाया जाय, जहाँ सत्य, त्याग, ईमानदारी और चरित्र बल को महत्व दिया जाता है।

## 2.7 समाज में व्याप्त कुरीतियों का दुष्परिणाम

भारतीय संस्कृति काफी पुरानी और समृद्ध है। यह हमारे एवं हमारे समाज के सोच का अभिन्न हिस्सा है। समय के साथ कुछ चीजें तो बदल जाती हैं, किन्तु कुछ चीजें हमारे संस्कारों में इस तरह रच-बस जाती हैं कि हम चाहकर भी उन्हें बदल नहीं पाते हैं। आज भी हमारे समाज में कुछ ऐसी कुरीतियाँ व्याप्त हैं, जिनके चलते इंसान का इंसान रह पाना मुश्किल हो गया है। दहेज प्रथा, बाल विवाह, जातिगत भेदभाव, कन्या भ्रूण हत्या आदि ऐसी ही कुरीतियाँ हैं, जिनके चंगुल से समाज आज भी उबर नहीं पाया है। इनके मकड़जाल में फँसा हुआ है। जबकि सच यह है कि आज के संदर्भ में इनका कोई औचित्य नहीं है। लोग हैं कि इन कुरीतियों के बोझ को ढोते जा रहे हैं। संविधान में इन कुरीतियों पर प्रतिबंध लगाए गए हैं, फिर भी ग्रामीण इलाकों में और कुछ सीमा तक शहरों में भी कहीं छिपकर तो कहीं खुल्लमखुल्ला इन कुरीतियों को अमल में लाया जाता है। कहानीकार शिवमूर्ति ने भी इन कुरीतियों पर गंभीरता से विचार किया है और इनसे उत्पन्न होने वाले खतरों की ओर संकेत किया है।

### 2.7.1 बाल विवाह

भारत में बाल विवाह की शुरुवात अपनी लड़कियों को विदेशी शासकों की कुदृष्टि एवं अपहरण से बचाने के लिए की गई। इसके साथ ही एक कारण यह भी रहा कि घर के बड़े-बुजुर्गों को अपने पौत्रों को देखने और उनके साथ खेलने की प्रबल इच्छा थी। और कारणों में माता-पिता का अपनी बेटियों को बोझ समझना, शिक्षा का अभाव, अंधविश्वास और निम्न वर्ग की आर्थिक दशा आदि को भी जोड़ा जा सकता है। भारत की संस्कृति प्रेम विवाह को मान्यता नहीं देती। माता-पिता द्वारा ही बच्चों की शादी निश्चित की जाती है। बहुत से लड़के-

लड़कियाँ अपनी मर्ज़ी से दूसरी जातियों में जाकर प्रेम विवाह कर लेते हैं। इससे बचने के लिए माता-पिता अपने बच्चों की शादी कच्ची उम्र में ही कर देते हैं। भारत में यौन शोषण एवं बलात्कार जैसी घटनाएँ आए दिन होती रहती हैं। इन सभी परेशानियों से बचने के लिए माँ-बाप अपने बच्चों का विवाह शीघ्र ही कर देते हैं। भारत में नगरों की तुलना में गाँवों में बाल विवाह की प्रथा अधिक प्रचलित है।

शिवमूर्ति की कहानियों में लड़कियों का कम उम्र में विवाह होना आम बात है। लगभग उनकी सभी कहानियों में बाल विवाह की पीड़िताएँ मिलती हैं। चाहे वह 'तिरिया चरित्तर' की विमली हो, 'केशर कस्तूरी' की केशर हो, 'भरतनाट्यम' कहानी का ज्ञान हो, या फिर 'ख्वाजा, ओ मेरे पीर!' के मामा-मामी। 'तिरिया चरित्तर' कहानी की बाल विवाहिता विमली का बचपन में ही ऐसे लड़के से विवाह कर दिया जाता है, जिसे उसने कभी देखा ही नहीं था। यहाँ तक कि उसके गौने में भी उसका पति नहीं आता। उसका ससुर बिसराम ही उसे लेने आता है, जिसकी नीयत में खोट है। बिसराम भगवान के प्रसाद में अफीम पिलाकर विमली को बेहोश कर देता है और उसका यौन शोषण करता है। भारतीय समाज के अधिकांश मामलों में निकट के संबंधियों द्वारा ही यौन शोषण किया जाता है। 'तिरिया चरित्तर' कहानी की विमली का उदाहरण इस बात की पुष्टि करता है।

बहुत से गरीब माता-पिता के पास इतना पैसा नहीं होता कि वे अपनी बेटियों को पढ़ाएँ-लिखाएँ। इसलिए अपनी जिम्मेदारियों से जल्दी मुक्ति पाने के लिए वे अपनी बेटियों का बाल विवाह कर देते हैं। 'केशर कस्तूरी' कहानी की केशर इस बात का उदाहरण है। केशर के माता-पिता आर्थिक रूप से सम्पन्न

नहीं रहते, इसलिए वे केशर का विवाह बचपन में ही कर देते हैं। लेखक जब केशर से मिलने उसकी ससुराल जाता है, तब वह देखता है - **"आवाज़ की खनक तो बरकरार है, लेकिन वह चपलता, चंचलता ! दैहिक आभा क्षीण है। मुख मलीन ! कैशोर्य की अकाल मृत्यु हो रही है।"**[57] शारीरिक रूप से कमज़ोर केशर को एक लड़की पैदा हुई है, जो दो महीने की होकर गुजर जाती है। बाल विवाह ने केशर के स्वाभाविक विकास को अवरुद्ध कर दिया है। एक कली खिलने से पहले ही मुरझा जाती है। एक सपना जो टूटकर बिखर जाता है।

'भरतनाट्यम्' कहानी में भी बाल विवाह की समस्या का उल्लेख मिलता है। इस समस्या का शिकार एक स्त्री नहीं, पुरुष है। कहानी में 'ज्ञान' की शादी पाँच साल की उम्र में हो जाती है। ज्ञान का गुस्सा अपने पिता के प्रति इन शब्दों में व्यक्त होता है - **"आखिर क्या अधिकार था उन्हें पाँच साल की उम्र में ही मेरी शादी करने का?"**[58] ज्ञान का यह कथन उसके आक्रोश को दर्शाता है। बाल विवाह के कारण लड़का-लड़की को बिना अपनी इच्छा के एक साथ रहना पड़ता है और फिर दोनों कम उम्र में माता-पिता बन जाते हैं। इस ज़िम्मेदारी को उठाने के लिए न तो वे आर्थिक रूप से सम्पन्न होते हैं और न ही शारीरिक रूप से सक्षम। परिणाम यह होता है कि पति-पत्नी का यह जोड़ा मानसिक रूप से भी बिछड़ जाता है।

'ख्वाजा, ओ मेरे पीर!' कहानी में लेखक के मामा-मामी का विवाह कम उम्र में हो जाता है। उनका विवाह इस शर्त पर होता है कि मामा को विवाह के पश्चात् मामी के घर जाकर ससुराल में रहना पड़ेगा। मामा के पिता की अचानक मृत्यु से यह शर्त पूरी नहीं हो पाती और पूरी जिंदगी पति-पत्नी एक-दूसरे से अलग रहकर गुजारते हैं। इस कहानी के माध्यम से असफल विवाह का उदाहरण

हमें देखने को मिलता है। यह बाल-विवाह के दुष्परिणाम के कारण होता है। यदि मामा-मामी अपने विवाह का निर्णय खुद लेने में सक्षम होते तो उनका वैवाहिक जीवन दुखपूर्ण और नारकीय न होता। वे एक साथ एक छत के नीचे रहकर अपनी पूरी जिंदगी गुजारते।

### 2.7.2 विधवा जीवन

भारतीय समाज में विधवाओं का जीवन हमेशा से अति कष्टपूर्ण रहा है। पति की मृत्यु के बाद उसका जीवन मृतप्राय हो जाता है। विधवा जीवन जीने वाली स्त्री हमारे समाज में तिरस्कारपूर्ण और यातनापूर्ण जीवन जीने के लिए बाध्य होती है। यदि किसी स्त्री के पति की असमय मृत्यु हो जाती है और वह जवान है, तो समाज के गिद्ध उसे नोचने के लिए चारों तरफ से तैयार रहते हैं। ये गिद्ध घर के सदस्य भी होते हैं और घर के बाहर के भी होते हैं। जवान विधवा का जीवन दूभर हो जाता है। उस पर तरह-तरह के प्रतिबंध लगने शुरू हो जाते हैं। कथाकार शिवमूर्ति ने विधवा जीवन की त्रासदी को अपनी कहानियों में प्रमुखता से उद्घाटित किया है। 'कसाईबाड़ा' कहानी में देखने को मिलता है कि विधवा शनिचरी की बेटी को गाँव का प्रधान सामूहिक विवाह की आड़ में देह व्यापार के लिए झोंक देता है। वह ऐसा इसलिए करता है, क्योंकि उसे पता है कि एक असहाय गरीब विधवा उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। शनिचरी को आगे करके अपने-आपको शनिचरी का हितैषी बताने वाला, गाँव की प्रधानी की कुर्सी पाने की इच्छा रखने वाला लीडर भी शनिचरी के विधवा और अनपढ़ होने का फायदा उठाता है। गाँव का प्रधान और लीडर दोनों मिलकर शनिचरी का सब-कुछ तबाह कर देते हैं। यहाँ तक कि उसे अपने प्राण भी गँवाने पड़ते हैं।

'कुच्ची का कानून' कहानी की कुच्ची विधवा है। उसका पति विवाह के तीन महीने बाद ही इस दुनिया से चल बसता है। पति के गुजरने के बाद कुच्ची के पति का चचेरा भाई बजरंगी उसकी खेती-बाड़ी पर और उस पर अपना हक़ कायम करने की कोशिश करता है। फिर कुच्ची के ऊपर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ता है। पुरुष-प्रधान समाज में एक स्त्री के लिए उसका पति एक ढाल के समान होता है, जिसके न होने से समाज का हर व्यक्ति विधवा स्त्री को अपनी धरोहर समझने लगता है। हमारे समाज में प्रधान, लीडर, बजरंगी जैसे न जाने कितने अनगिनत लोग हैं जो पति के न रहने पर विधवाओं का जीवन कठिन कर देते हैं।

### 2.7.3 अवैज्ञानिक सोच

सही ढंग का सोच न रखना अवैज्ञानिक सोच है। अवैज्ञानिक सोच की जड़ें अज्ञानता की जमीन में फैली होती हैं। 'भरतनाट्यम्' कहानी में ज्ञान की पत्नी का सोच अवैज्ञानिक है। वह कहती है **-"यदि पति तगड़ा है तो लड़का होगा, पत्नी तगड़ी है तो लड़की।"**[59] अपने इस सोच को सही साबित करने के लिए वह ज्ञान के समक्ष उसके बड़े भाई साहब का उदाहरण रखती है, क्योंकि उनके दो बेटे हैं। अपनी इस अवधारणा को पूर्ण करने के लिए वह अपने पति को तंदुरुस्त करना चाहती है। इसके लिए अपनी जेठानी और सास से छिपकर वह पति को चोरी-चोरी दूध पिलाती है। ज्ञान पत्नी के अवैज्ञानिक तर्क को नकारते हुए इस संदर्भ में कहता है **-"मैं उसे एक्स और वाई क्रोमोसोम्स तथा सेक्स क्रोमोसोम्स के तेइसवें जोड़े के बारे में बताना चाहता हूँ तो वह समझती है कि मैं उसे बेवकूफ बना रहा हूँ।"**[60] ज्ञान की पत्नी अपने तर्क को ही एकदम सही मानती है और पति की बात उसे बेवकूफी लगती है। अपनी धारणा से वह जरा भी इधर-उधर

नहीं होती। समाज में आज ऐसे स्त्री-पुरुषों की कमी नहीं है जो अपने अवैज्ञानिक सोच को ही सही मानते हैं और उसी पर जीवन-पर्यंत चलते हैं।

कुरीतियाँ किसी भी स्वस्थ समाज की स्थापना में सबसे बड़ी बाधक होती हैं। इनकी चंगुल में जकड़े रहने से प्रगति के मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं। बाल विवाह, विधवा समस्या और अवैज्ञानिक सोच इन्हीं का परिणाम हैं। कहानीकार की दृष्टि यहाँ समाज को इन कुरीतियों से मुक्त कराना है। कहानीकार इस पक्ष का हिमायती है कि जब तक लोगों का सोच वैज्ञानिक नहीं होगा, तब तक इन कुरीतियों को जड़ से उखाड़ पाना आसान नहीं होगा। इसके लिए सिर्फ माता-पिता ही नहीं, पूरी सामाजिक व्यवस्था जिम्मेदार है। जरूरी यह है कि शिक्षा का प्रचार-प्रसार दूर-दराज गाँव में रहने वाले अंतिम व्यक्ति तक पहुँचे। तभी इस समस्या का समाधान खोजा जा सकता है।

**2.8 प्रशासन एवं न्यायतंत्र की संवेदनहीनता**

किसी भी देश के प्रशासन एवं न्यायतंत्र की संवेदहीनता से यदि किसी वर्ग पर सबसे ज्यादा भार पड़ती है, तो वह है वहाँ का आम जन। आज की स्थिति यह है कि पुलिस थानों में केवल रिश्वत का ही बोलबाला है। पीड़ित व्यक्ति की रिपोर्ट तभी लिखी जाती है, जब वह थाने के दारोगा के समक्ष दो-चार हजार रुपये पेश करता है। प्रशासन एवं न्यायतंत्र कभी राहत के नाम पर तो कभी जाति व संप्रदाय के नाम पर भ्रष्टाचार का अनैतिक व्यापार करता है। आज़ादी के बाद जो लोकतंत्र गाँव में पहुँचा, वह उसी सामंती संरचना में घुल-मिल गया। लोकतंत्र, पुलिस-थाना, राहत और विकास योजनाएँ सभी ने सामंती ढाँचे के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बना लिया।

'कसाईबाड़ा' कहानी में गरीब शनिचरी गाँव के प्रधान के खिलाफ आवाज़ उठाती है, किन्तु थाने का दारोगा रिश्वतखोर होने के कारण उसका साथ नहीं देता। कहानी में न्याय व्यवस्था का वाहक दारोगा, प्रधान और लीडर का साथ देता है। यह दारोगा प्रधान और लीडर को बारी-बारी से पुलिस चौकी पर बुलाता है। घर से निकलते समय प्रधान अपनी पत्नी से कहता है - "**अजी, सुनती हो जी। कुछ भेंट-पूजा के लिए थोड़ा अमावट, खटाई, अचार। तुम्हें पता है कि दरोगाइन कोंहड़ौरी और जामुन का सिरका पहले माँगती हैं।**"[61] इस तरह प्रधान, दारोगा को अपने पक्ष में करने के लिए इन चीजों का चढ़ावा चढ़ाता है, जिससे वह पुलिस को अपने पक्ष में कर सके। इसके साथ-साथ प्रधान दारोगा के शिकार करने के शौक को भी पूरा करने का आश्वासन देता है। इधर लीडर जब दारोगा से मिलने जाता है, तब वह दारोगा से बेखौफ बात करता है, जिसके कारण दारोगा खुद उससे बात करने में घबराता है। लीडर जब दारोगा पर अपना रुतबा दिखाता है, तब दरोगाइन आकर बीच-बचाव करती हैं। दारोगा के साथ प्रधान और लीडर की साठ-गाठ होने से शनिचरी पर घोर अन्याय होता है। न्याय की गुहार लगाने वाली शनिचरी से दारोगा इस तरह पूछताछ करता है, मानो वही सबसे बड़ी दोषी है। जब अपनी बेटी को शनिचरी गूलर के फूल जैसी कहकर दारोगा को उसे बचाने के लिए कहती है, तब दारोगा उससे क़हता है **- "हूँ, लड़की बेचकर अब नकल करने चली है साली। क्यों पैदा किया गूलर के फूल जैसी बिटिया? बोल, मुझसे पूछकर पैदा किया?"**[62] दारोगा का कथन यह साफ बताता है कि दारोगा ने प्रधान से रिश्वत ली है और वह अब यह केस दबाना चाहता है। इस मामले में पुलिस प्रशासन की यह भूमिका उसकी संवेदनहीनता का प्रमाण है। पुलिस व्यवस्था पर यह एक प्रश्नचिह्न है।

आज के समय में जहाँ स्त्री-पुरुष समानता की बात की जाती है, वहीं असली जिंदगी में स्त्री को समाज में दोयम दर्जा प्राप्त है। जो लोग स्त्री-पुरुष की समानता पर खूब लंबा-चौड़ा भाषण देते हैं, वे भी अपने घरों में अपनी कही हुई बात को हकीकत में नहीं बदल पाते। हद तो तब हो जाती है, जब गाँव के प्रधान और गाँव के पंच अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते।

### 2.8.1 राहत के नाम पर अनैतिकता

अकाल पीड़ित गाँव में सरकारी सहायता के साथ-साथ राहत सामग्री बाँटने के लिए कई जातीय संगठन तथा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ मिलकर काम करते हैं। इन समितियों द्वारा नियुक्त ऑर्डिनेटर या सेक्रेटरी गाँव वालों में राहत सामग्री बाँटने का काम करते हैं। ये सरकारी मुलाजिम गाँव वालों की मजबूरी का फायदा उठाकर उनकी बहू-बेटियों पर कुदृष्टि भी डालते हैं। कहीं-कहीं इस अनैतिकता से लोग अपनी नजरें घुमा लेते हैं और कहीं-कहीं इसका खुलकर विरोध भी किया जाता है। 'अकाल-दंड' कहानी में सुरजी एक ऐसा प्रतिरोधी पात्र है, जो विषम परिस्थिति में भी अपने पारिवारिक, सामाजिक और वैवाहिक मूल्यों का सौदा नहीं करती। वह बहुत ही चरित्रवान पात्र है। राहत सामग्री बाँटने वाले सेक्रेटरी की नीयत को वह अच्छी तरह समझ गयी है। सेक्रेटरी सुरजी के साथ उसकी गरीबी का फायदा उठाते हुए शारीरिक संबंध स्थापित करना चाहता है। सुरजी सेक्रेटरी के गलत इरादों को कामयाब होने नहीं देती। वह सेक्रेटरी से अपने आपको बचाती हुई उसका प्रतिरोध करती है -- **"खबरदार जो आगे बढ़ा। वह दूसरे कोने की ओर पिछड़ती जा रही है, मुँह झौंसि देब दहिजार के पूत।"**[63] सेक्रेटरी भी अपने मनसूबे में कामयाब होना चाहता है। दोनों में हाथा-पाई, छीना-झपटी होती है और चौबीस-पच्चीस साल की सुरजी पचास-पचपन साल के सेक्रेटरी

पर भारी पड़ती है। सुरजी सेक्रेटरी को लात का ऐसा धक्का मारती है कि उसके आगे के दोनों दाँत टूट जाते हैं। रंगी बाबू की मदद से वह पुनः सुरजी का शारीरिक शोषण करना चाहता है, तब सुरजी हंसिए से सेक्रेटरी की देह का नाज़ुक हिस्सा काटकर शरीर से अलग कर देती है। सुरजी भले ही गरीब है, किन्तु अपनी गरीबी के चलते वह अपनी इज्ज़त का सौदा नहीं करती। उसे राहत सामग्री मिले या न मिले, इसकी उसे चिंता नहीं है। वह हर हालत में अपने को सुरक्षित रखती है।

इसके विपरीत 'अकालदंड' कहानी के ही रंगी बाबू और गुनी पंडित राहत सामग्री का लाभ पाने के लिए अनैतिक बन जाने में कोई संकोच नहीं करते। रंगी बाबू की बेटी माला सेक्रेटरी के साथ शारीरिक संबंध बनाकर पहले राहत बाँटने वाली लेडी वर्कर बनती है और फिर सुपरवाइज़र। जहाँ तक गुनी पंडित की बात है, उनकी पत्नी राहत सामग्री प्राप्त करने के लिए अपनी बहू का सौदा राहत सामग्री बाँटने वाले लेखपाल के साथ कराती है। फिर उनका घर अकाल में भी राशन-पानी से भरा पड़ा रहता है। गुनी पंडित की बहू जब तक यह जिल्लत सहन कर सकती हैं, तब तक करती हैं और अंततः आत्महत्या करके अनैतिकता के खिलाफ हमेशा के लिए चुप्पी साध लेती हैं। शिवमूर्ति कहना चाहते हैं कि रंगी बाबू और गुनी पंडित जैसे लोग किस तरह असहाय हो जाते हैं और गरीब सुरजी सेक्रेटरी से अपना बदला लेती है।

### 2.8.2 जाति व संप्रदायवादी मानसिकता

भारतीय संविधान में सभी नागरिकों के मूलभूत अधिकारों की रक्षा हेतु नियम निर्धारित किए गए हैं। भारतीयों को धर्म, जाति, वर्ग-भेद, लिंग-भेद आदि का भेदभाव किए बिना सबको समान अधिकार दिया गया है। साथ ही दलित

तथा अन्य पिछड़ी जातियों के उत्थान हेतु आरक्षण की व्यवस्था भी की गई है। इस प्रकार संविधान की दृष्टि से समस्त भारतवासियों को समानता के आधार पर सामाजिक एवं राजनीतिक अधिकार दिए गये हैं। सदियों की गुलामी के पश्चात् भारत की जनता के लिए यह बहुत बड़ा सुअवसर प्राप्त हुआ, जिसके माध्यम से ऊंच-नीच का भेदभाव मिटाने के आसार नज़र आने लगे। दुखद यह रहा कि जाति के नाम पर आज भी राजनेता दंगे-फसाद कराते हैं और वोट बैंक की अपनी राजनीति करते हैं। राजनेताओं की इस मानसिकता का प्रभाव प्रशासन और न्यायतंत्र में भी देखा जाता है।

'अकालदंड' कहानी नियति की चक्की में पिसते गरीब, बेसहारा, मजबूर, दलित किसानों की त्रासदी की गाथा है। सरकारी तथा गैरसरकारी नुमाइंदे अकाल में बाँटें जाने वाली राहत सामग्री की काला बाजारी करते हैं। राहत सामग्री बाँटते समय जाति-पाति और बिरादारी की भावना सबसे ऊपर रहती है। कहानीकार गाँव के दबंगों के बारे में लिखता है - **"पानी का टैंकर आने पर जो पहले अपने बैलों को पिलाने के लिए बड़े-बड़े ड्रम और 'छोड़' भर लेते हैं, तब गाँव के कमजोर लोगों की बारी आती है - अपने लिए गगरा-गगरी भरने की।"**[64] राहत में बाँटा जानेवाला गाढ़ा दूध भी गाँव का सरपंच अपने टोले में पहले बँटवाता है और गरीबों की बारी आते ही दूध में चार-चार बाल्टी पानी मिलाकर उन्हें दिया जाता है। गाँव में सड़क बनाने के काम में भी निम्न वर्ग पर अत्याचार किए जाते हैं। ठीकेदार सौ लोगों की भर्ती करके दो सौ लोगों के नाम रजिस्टर में दर्ज करता है। जो उच्च जाति के लोग हैं, वे वहाँ कोई काम नहीं करते। काम सिर्फ निम्न जाति के लोग करते हैं। ये लोग कुछ कर भी नहीं पाते, क्योंकि इन्हें अगले दिन काम से निकाले जाने का डर लगा रहता है।

उच्च जाति के लोगों की मानसिकता निम्न जाति के प्रति अभी भी बदली नहीं है। उच्च जाति के लोगों को लगता है कि निम्न जाति के लोग पैदाइशी बुरे होते हैं। सारे दुर्गुण और बुराइयाँ उनमें ही भरी होती हैं। 'अकाल-दंड' कहानी का सरपंच रंगी बाबू दलित स्त्री सुरजी के बारे में यह धारणा रखता है - **"नीच जाति है तो दूध की धोई होने का सवाल ही नहीं पैदा होता। ये तो पेट से छल-छंद लेकर उपजती हैं।"**[65]रंगी बाबू का यह कथन समस्त दलित स्त्रियों के शील भ्रष्ट होने की बात करता है, जबकि सचाई यह है कि सुरजी एक नेक और चरित्रवान दलित स्त्री है। वह गरीब हो सकती है, लेकिन बदचलन नहीं। रंगी बाबू की खुद की बेटी माला का रंग-ढंग सेक्रेटरी को लेकर ठीक नहीं है। कहने का आशय यह है कि उच्च जाति का प्रधान और राहत सामग्री बाँटने वाला सेक्रेटरी दोनों की मानसिकता दलितों के प्रति सही नहीं है।

### 2.8.3 अकर्मण्यता एवं भ्रष्टाचार

सरकार जिन योजनाओं को संसद से पारित कर गाँव की गरीब जनता तक पहुँचाना चाहती है, वह गरीब जनता तक नहीं पहुँच पाती है। बीच के लोग उसे हड़प कर जाते हैं। यह सर्वव्यापी भ्रष्टाचार के कारण होता है। भ्रष्टाचार को बढ़ाने में राजनीतिक भाई-भतीजावाद और सरकारी धूर्त अधिकारियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। ये दोनों ही बड़े अकर्मण्य होते हैं। इनमें धन कमाने की लिप्सा बहुत प्रबल होती है। इन्हीं की देखा-देखी अन्य क्षेत्रों में भी भ्रष्टाचार फलता-फूलता है। आज कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं बचा है, जहाँ भ्रष्टाचार न होता हो। 'भरतनाट्यम' कहानी में शिक्षा के क्षेत्र में फैले भ्रष्टाचार के विषय में शिवमूर्ति लिखते हैं - **"दस्तखत करने वाली तनख्वाह डेढ़ सौ और मिलने वाली पचहत्तर रुपए। 'मिलने वाली' से पाँच रुपए प्रतिमाह बिल्डिंग फंड में कट जाते**

**थे।"**[66] भ्रष्टाचार से भविष्य की पीढ़ी का साक्षात्कार यहाँ विद्यालय में ही हो रहा है। विद्यालय में हो रहे इस भ्रष्टाचार का ज्ञान कड़ा विरोध करता है, परिणामतः उसे अपने शिक्षक पद से हाथ धोना पड़ता है। बेरोजगारी, परिवार के सदस्यों की अवहेलना आदि से तंग आकर यही ज्ञान अंत में सस्ते गल्ले की दुकान का लाइसेंस पाने के लिए आठ सौ रुपए घूस देता है। जिस भ्रष्टाचार का वह हमेशा विरोध करता रहा, उसी भ्रष्ट प्रशासन का वह खुद हिस्सा बन जाता है। ज्ञान को लगता है कि जब सब कुछ के बावजूद कुछ नहीं हो रहा है, तब क्यों न बिना कुछ किए सब कुछ हासिल किया जाय।

बाढ़, भूकंप, सूखा, अकाल आदि आपदाओं के आने पर सरकार पीड़ित क्षेत्र में राहत सामग्री बँटवाने की व्यवस्था करती है, किन्तु सरकारी मुलाज़िम इस सामग्री की काला बाजारी करके सरकार की नीतियों को फलीभूत होने नहीं देते। 'अकाल-दंड' कहानी में राहत सामग्री बाँटने के लिए सरकार, जातीय संगठन तथा कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ मिलकर इस काम को सुचारु रूप से चलाने के लिए सरकारी तथा गैर सरकारी मुलाज़िमों की नियुक्ति करती हैं। राहत सामग्री बाँटने के पद पर नियुक्त सेक्रेटरी बाबू और गाँव के सरपंच रंगी बाबू मिलकर राहत सामग्री की काला बाजारी करते हैं। ये दोनों ही ज़िम्मेदारी के पद पर प्रतिष्ठित हैं, लेकिन ज़िम्मेदारी के प्रति इनकी अकर्मण्यता के चलते गाँव का पूरा माहौल दूषित हो गया है।

भ्रष्ट राजनेताओं के कारण आज पुलिस आम जनता की रक्षक कम, भक्षक ज्यादा बन गयी है। गरीब और अशिक्षित ग्रामीण जनता का फायदा उठाकर पुलिस अधिकारी उन पर अपना रोब गाँठते हैं। **'कसाईबाड़ा'** कहानी में शनिचरी गाँव के प्रधान के खिलाफ अनशन पर बैठती है। इस बात की रपट

लीडर वहाँ के थाने में दर्ज कराता है। अपनी बात को मनवाने तथा पुलिस से बचने के लिए प्रधान दारोगा के घर अचार, खटाई, अमावट आदि देकर दारोगा को प्रसन्न करना चाहता है, ताकि उसके खिलाफ कोई केस न बन सके। इतना ही नहीं, दारोगा खुद प्रधान से कहता है - **"आपको पता होगा, मैं मंदिर बनवा रहा हूँ थाने के सामने, उसमें यथा शक्ति......"**[67] यहाँ यथाशक्ति का मतलब है - धन - रिश्वत। मंदिर के नाम पर रिश्वत लेने का दारोगा का यह अच्छा तरीका है। रिश्वत के बल पर प्रधान गलत काम करके भी बच जाता है और निरपराध होकर भी शनिचरी को अपनी जान देकर बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। प्रधान की अकर्मण्यता और निकम्मेपन के कारण एक गरीब, बेसहारा स्त्री का सब कुछ लुट जाता है।

प्रशासन एवं न्यायतंत्र की संवेदनहीनता का शिकार सबसे अधिक आम जन या फिर स्त्री होती है। ये ही सबसे ज्यादा शोषण के शिकार होते हैं। कहानी में बड़े-बड़े ताकतवर लोग, चाहे रंगी बाबू हों या सिकरेटरी, सभी असहाय नज़र आते हैं और सुरजी या फिर कुच्ची चट्टान की तरह खड़ी है। कहानीकार की दृष्टि नारी को सबल बनाना है। वह शनिचरी और विमली को नहीं, सुरजी और कुच्ची को नारी शक्ति मानता है। कहानीकार का मानना है कि यदि अन्याय से लड़ना है, भ्रष्टाचार को निर्मूल करना है और अपनी सुरक्षा करनी है तो नारी को सुरजी और कुच्ची बनना होगा।

## 2.9 राजनीतिक संदर्भ और नारी का संत्रास

समस्त जन के कल्याण हेतु जो नीति अपनायी जाती है, उसका नाम है राजनीति। राजनीति जन-कल्याण हेतु समाज में हो रहे अनुचित कृत्यों पर अंकुश लगाने का काम करती है, किन्तु वर्तमान समय में राजनीति का अर्थ बदल गया

है। वह अपने असली अर्थ को खो चुकी है। बदले हुए अर्थ में वह राजनेताओं के हाथ का खिलौना बन गई है। इस संदर्भ में डॉ. गंभीर एस. के. का कहना है - **"आधुनिक राजनीति कुर्सी का पर्याय बन गयी है। विधायक कुर्सी के मोह से इस तरह ग्रसित हो रहे हैं कि अब स्वतन्त्रता उनका जन्म-सिद्ध अधिकार न होकर कुर्सी उनका जन्म-सिद्ध अधिकार हो गयी है।"**[68] कुर्सी हथियाने तथा उसे टिकाने की होड़ में राजनेताओं ने न्याय पालिका, कार्य पालिका सभी को अपनी मुट्ठी में कर लिया है। या यूँ कहें कि तीनों मिलकर हर तरह से समाज को लूटने का काम करते हैं। इस लूट का सबसे अधिक शिकार गाँव की अशिक्षित स्त्रियाँ होती हैं। गाँव के स्तर से लेकर बड़े स्तर के प्रायः सभी राजनेता स्त्रियों का शोषण करते हैं। यह शोषण कभी जमीन हड़पने के रूप में किया जाता है, कभी ज़ोर-जबरदस्ती के रूप में किया जाता है तो कभी राजनीतिक मोहरा बनाने के लिए किया जाता है।

### 2.9.1 षड्यंत्र की राजनीति

वस्तुतः आज की राजनीति प्रजातंत्र अथवा जनतंत्र की राजनीति न रहकर चुनाव और वोट की राजनीति बनकर रह गयी है। अब जनता के सभी फैसले, चाहे वे रोटी के हों या आवास के, वोट की नीति से तय होते हैं। वोट, धन, शक्ति और सत्ता के बल पर खरीदे जाते हैं। अब राजनेता जनरक्षक नहीं, जनभक्षक बने हैं। आदर्श की बातें मात्र राजनेताओं के भाषणों में बद्ध हैं, बाकी जगहों पर वे षड्यंत्र करते हैं। 'कसाईबाड़ा' कहानी का प्रधान और लीडर दोनों शनिचरी के साथ षड्यंत्र करते हैं। प्रधान सत्ता के लालच में इतना अंधा हो जाता है कि अपने पाप में वह अपनी पत्नी को भी भागीदार बनाता है। वह अपनी पत्नी के हाथों शनिचरी को षड्यंत्र के तहत जहरीला दूध पिलवाता है। इस सच

का उदघाटन होने पर प्रधान की पत्नी हाथ झटककर बड़बड़ाते हुए कहती हैं -**"ई गाँव लंका है। इहाँ लंका दहन होवेगा। रावण तू ही हो। लीडर बना है भिभीखन। तोहरे दूनो के चलते गाँव का सत्यानाश होवेगा। होई रहा है। बहिन-बिटिया बेंचो। हमहूँ का बेचि लेव। रुपया बटोरो। साथ लै जायेब, लेकिन अब हम एहि घरे मा ना रहब। आपन बेटवा लइके भीखकौरा मंगब, मुला.......।"**[69] यह एक नारी का विद्रोह है, पति के षड्यंत्र के खिलाफ, जिसने आदर्श विवाह के नाम पर गाँव की गरीब लड़कियों को वेश्या वृत्ति में धकेल दिया है।

प्रधान के खिलाफ अनशन करते हुए शनिचरी की जान चली जाती है और लीडर उसकी जमीन अपने नाम करा लेता है, तब उसकी पत्नी सबसे ज्यादा भड़कती है। इस पर लीडर कहता है - **"मास्टराइन के काबिल भी नहीं, मिनिस्टराइन के काबिल तो क्या होगी? अरे पागल, कर्मक्षेत्रे - युद्धक्षेत्रे सब जायज है।"**[70] यह है एक लीडर की मानसिकता। गरीब स्त्री के साथ षड्यंत्र करना और उसे अपने तर्कों से सही सिद्ध करना।

'बनाना रिपब्लिक' कहानी में कहानीकार बताना चाहता है कि राजनीति ऐसी चीज ही है कि जो भी इसमें कदम रखता है, वह जरूर फिसल जाता है। ठाकुर साहब जग्गू को सिखा-पढ़ाकर आरक्षित सीट पर चुनावी दंगल में उतारते हैं। ठाकुर साहब जिस जग्गू को अपना मुहर बनाकर रखना चाहते हैं, वही जग्गू चुनाव जीतने के बाद बदल जाता है। उसे ठाकुर साहब के षड्यंत्र का पता चल जाता है कि वह जग्गू की जमीन को अपने नाम पर करा लेगा। इस पर शिवमूर्ति लिखते हैं -**"अरे, जुलूस तो लगता है सीधे जग्गू के घर की ओर मुड़ गया!"**[71] उद्धरण से पता चलता है कि जग्गू ठाकुर साहब से सावधान होकर अपनी राजनीति कर रहा है।

**2.9.2 नेताओं की स्वार्थपरता**

राजनीति और स्वार्थपरता एक-दूसरे के पर्याय हो गए हैं। 'कसाईबाड़ा' कहानी में लीडर जब तक मास्टर रहता है, तब तक वह ठीक रहता है, किन्तु जब उसके मन में गाँव का प्रधान बनने का जुनून सवार होता है, तब सत्ता का लालच उससे उसकी मानवता छिन लेता है। प्रधान बनने की तड़प उसे ऐसे रास्ते पर खड़ा करती है, जहाँ इंसान आदमखोर बन जाता है। वह शनिचरी को प्रधान के खिलाफ अनशन पर बैठाता है और धोखे से 'स्टाम्प पेपर' पर उसके अँगूठे का निशान लेकर उसका खेत अपने नाम कराता है। उसे भली-भाँति पता है कि गाँव का वर्तमान प्रधान आज नहीं तो कल शनिचरी को जरूर मरवाएगा, इसलिए वर्तमान प्रधान के मनसूबों को भाँपकर लीडर शनिचरी की जमीन अपने नाम कराता है। राजनीति में आकर मनुष्य कितना नीचे गिर सकता है, इस बात का अंदाज़ा लीडर के चरित्र को देखकर  लगाया जा सकता है।

'बनाना रिपब्लिक' कहानी में हम देखते हैं कि आरक्षण के कारण गाँव की प्रधानी हरिजन कोटे में चली जाती है। प्रधानी को अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करने के लिए उच्च जाति का ठाकुर अपने प्रत्याशी जग्गू को चुनाव में खड़ा करता है, ताकि घूम-फिरकर प्रधानी की सत्ता उसी के हाथ में रहे। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए वह जग्गू पर पानी की तरह पैसा बहाता है, ताकि किसी भी तरह से जग्गू को चुनाव में विजयी बनाया जा सके। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए ठाकुर जग्गू से कहता है -**"सालाना पंद्रह-बीस लाख तक खर्च करने का चान्स रहता है। मनरेगा की मदद से तो चाहे जितना निकालो। बस, कागज का पेट पूरा करते रहो। नीचे से ऊपर तक सबका मुँह बन्द करने के बाद भी रुपये में चार आना**

**कहीं गया नहीं। पाँच साल में पचीस लाख की बचत।"**[72] इस तरह ठाकुर जग्गू के कंधे पर बंदूक रखकर अपना निशाना साध रहा है।

जग्गू के मन में भी ठाकुर से कम स्वार्थपरता नहीं है। अभी राजनीति में कदम रखा है, चुनाव जीता नहीं है, फिर भी सपने बड़े-बड़े देख रहा है। लेखक उसकी इस स्थिति का वर्णन करते हुए कहानी में लिखता है -**"परधानी मिल जाए, हीरो होंडा मिल जाए और नाम बदल जाए, या एक कायदे का 'सरनेम' मिल जाए....जिससे थोड़ा रूआब झरे। 'टाइगर' कैसा रहेगा?"**[73] उद्धरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जग्गू अभी सत्ता का स्वाद चखा भी नहीं, लेकिन उसके नशे से मदहोश होने लगा है। यह है नेताओं की स्वार्थपरता। आज का हर कोई नेता भौतिक वस्तुओं में अपना सुख खोजने लगा है। जग्गू जैसा पिछड़ी जाति का नेता जब अपना सरनेम बदलने की बात करता है, तब यह भी निश्चित है कि वह अपने परिवार और पत्नी से भी नाता तोड़ लेगा।

### 2.9.3 सत्ता लोलुपता

अतीत में ऐसी कई घटनाएँ घटीं हैं, जब सत्ता के लालच में मनुष्य ने अपना सब कुछ गँवा दिया है। सत्ता का मोह है ही ऐसा, यह छूटता नहीं। **'कसाईबाड़ा'** कहानी में प्रधान अपनी सत्ता का आधिपत्य बरकरार रखने के लिए बिना दहेज के गाँव की गरीब तथा दलित लड़कियों का सामूहिक आदर्श विवाह करवाता है और गाँव वालों की नज़र में अच्छा बन जाता है। इसी कहानी में सत्ता का लालची लीडर प्रधान की इस चालबाजी पर सोचता है - **"ऐन इलेक्शन के छह महीने पहले ही ऐसी जादू की छड़ी घुमाई प्रधान ने कि सारा गाँव उनके पैर छूने लगा। अब वे मुक़ाबले में कैसे टिकेंगे?"**[74] सत्ता का लालची लीडर प्रधान के पैंतरे को अच्छी तरह समझ रहा है और फिर गाँव की गरीब दलित विधवा शनिचरी

का फायदा उठाकर सत्ताधारी बनने के लालच में अपना पैतरा खेलता है। वह अपने लाभ के लिए शनिचरी को भड़काकर ग्राम प्रधान के दरवाजे पर अनशन के लिए बैठा देता है। परिणाम यह होता है कि सामूहिक आदर्श विवाह के नाम पर गाँव में देवता समझा जाने वाला प्रधान अपने घर से बाहर नहीं निकल पाता। उसकी सारी लोकप्रियता समाप्त हो जाती है। सत्ता की लोलुपता ग्राम प्रधान और लीडर दोनों में है। इस लोलुपता का शिकार शनिचरी होती है।

सत्ता का लोलुप 'बनाना रिपब्लिक' कहानी का ठाकुर भी है, जो आरक्षण के कारण खुद ग्राम प्रधानी का चुनाव नहीं लड़ पाता। जब वह देखता है कि सत्ता हाथ से निकाल रही है, तब वह दलित जग्गू को अपना प्रत्याशी बनाकर चुनाव में खड़ा करता है। ऐसा वह इसलिए करता है, ताकि जग्गू के माध्यम से वह सत्ता का सुख भोगता रहे। दलित जग्गू भी कम सत्ता लोलुप नहीं है। वह सत्ता पाने के लालच में भंडारा चलाता है, तरह-तरह के हथकंडे अपनाता है, ताकि ग्राम प्रधान बन सके। सत्ता लोलुपता के चक्कर में ठाकुर दलितों को कठपुतली बनाते-बनाते खुद उनके हाथ की कठपुतली बन जाता है। चुनाव जीतने के पश्चात् जग्गू ठाकुर की ड्योढ़ी पर नहीं जाता। यह परिवर्तन देखकर ठाकुर ही जग्गू हरिजन की बस्ती में जाता है और उनके बीच खुद नाचने लगता है। इस दृश्य पर कहानीकार लिखता है -**"एक लड़का उन्हें नाचने के लिए लड़कों की गोल की ओर खींचता है। दूसरा उनके पंजे में पंजा फँसाकर दाएँ-बाएँ हिलाते हुए कहता है - जरा कमरिया भी लचकाइए ठाकुर! नाचते हुए लड़कों के बीच कुबरी वाला हाथ उठाकर वे मटकने-लचकने लगते हैं।"**[75] यह है सत्ता की लोलुपता। सत्ता की लोलुपता व्यक्ति को अधः पतन की ओर ले जाती है।

आज राजनीति व्यापार बन गयी है। अब सेवा और समर्पण के भाव से कोई राजनीति में कदम नहीं रखता। कहते हैं, राजनीति में लंबे समय तक न किसी का कोई मित्र होता है न शत्रु। इस तरह की राजनीति में वैसे तो किसी का भी शोषण हो सकता है, लेकिन इसमें स्त्रियों की दशा सबसे दयनीय होती है। लेखक की दृष्टि यहाँ दलगत और स्वार्थगत राजनीति से ऊपर उठने की है, जिसमें स्त्री को मोहरा न बनाकर उसे उसके संत्रास से मुक्त कराना है।

## 2.10 पंचायती चुनाव एवं न्याय व्यवस्था में आई गिरावट

गाँव के पंचायती चुनाव अन्य चुनावों की तुलना में अधिक पेचीदा होते हैं। कई तरह के समीकरण बनाकर ये चुनाव जीते जाते हैं। इसमें ढेर सारी उलझनें होती हैं, एक उलझन सुलझी नहीं कि दूसरी उलझ जाती है। कई ऐसे लोगों से सामना पड़ता है, जो बाहर से हितकारी और अंदर से अहितकारी होते हैं। ऐसा ही एक पात्र 'बनाना रिपब्लिक' का मुंशी है। मुंशी के ही कहने पर ठाकुर जग्गू के ऊपर चुनाव में खर्च किए जाने वाले रुपये के बदले में जग्गू के पिता की बाज़ार की जमीन हड़पना चाहते हैं। ठाकुर जग्गू से कहते हैं **-"देखो, जगह-जमीन, गहना गुरिया ऐसे ही गाढ़े समय में काम आता है। तुम्हारी जो बाज़ार वाली जमीन है, इतनी कीमती है कि रेहन रख दो तो लाख-डेढ़ लाख रुपए फौरन मिल सकते हैं।"**[76] उद्धरण से पता चलता है कि मुंशी जी ठाकुर को पट्टी पढ़ाते हैं और ठाकुर जग्गू की जमीन हड़पना चाहते हैं, ताकि चुनाव में वे जो पैसा खर्च कर रहे हैं, उसमें कोई घाटा न हो। यहाँ कोई किसी का नहीं है। सब साजिश के तहत हो रहा है।

'बनाना रिपब्लिक' कहानी में ही नाहरगढ़ गाँव के ग्राम पंचायत के चुनाव में आरक्षण लागू हो जाने से पूर्व प्रधान ठाकुर और पदारथ अपने-अपने मनसूबों

को पूरा नहीं कर पाते। इस स्थिति में विकल्प के रूप में अपने-अपने उम्मीदवार खड़ा करते हैं। ठाकुर जग्गू चमार को और पदारथ मुंदर धोबी को चुनाव में उतारते हैं। जाहिर सी बात है कि जग्गू और मुंदर की आड़ में ठाकुर और पदारथ ही सत्ता में बने रहना चाहते हैं, किन्तु जग्गू पंचायती चुनाव जीतकर पासा पलट देता है। पंचायती चुनाव जीतने पर वह अपना जुलूस ठाकुर की ड्योढ़ी की तरफ न ले जाकर सीधे अपनी बस्ती की ओर लेकर जाता है। यह देख ठाकुर बेचैन हो जाते हैं। कहानीकार ठाकुर के बारे में लिखता है - **"लेकिन थोड़े असमंजस के बाद तय करते हैं कि वे खुद जाएँगे। जाना ही होगा। एक लाख से ज्यादा 'इन्वेस्ट' कर चुके हैं। बात बिगड़नी नहीं चाहिए।"**[77] गौरतलब है कि जग्गू के माध्यम से पैसा कमाने का रास्ता वे हाथ से जाने नहीं देना चाहते। साथ ही जग्गू के नाम पर प्रधानी का सुख भी भोगना चाहते हैं। यह पंचायती चुनाव में आई गिरावट का सूचक है।

**'तिरिया चरित्तर'** कहानी में हम पंचायती न्याय व्यवस्था को पूरी तरह से छिन्न-भिन्न होते देखते हैं। विमली की इज्ज़त लूटने वाला उसका ससुर बिसराम है। पंचायत के सामने विमली लाख सफाई देती है, लेकिन उसकी कोई नहीं सुनता। सरपंच बोधन महतो उसके द्वारा अपने ससुर पर लगाए गए आरोपों को बेबुनियाद कहकर यह फैसला सुनाता है **- "गाँव के नाक कटाने वाली, गाँव की इज्ज़त में दाग लगाने वाली जनाना को बेदाग नहीं छोड़ा जा सकता। अगर आगे थाना-पुलिस तक बात जाती है तो भी गाँव के लोग उसे चंदा करके झेलेंगे, लेकिन दागी जनाना को 'दाग' करके ही नैहर भेजा जाएगा।"**[78] यहाँ पंचायत विमली के साथ घोर अन्याय करती है। उसकी एक भी बात सुनी नहीं जाती। फैसला सुनाने वाले बोधन चौधरी की विधवा भौजाई दस साल पहले कुएँ में कूदकर अपनी जान दे दी थी। वह खुद दागदार है और बिसराम जो पतोहू को

दागने का काम करता है, वही खुद पतोहू के साथ दुष्कर्म किया है। जो खुद अपराधी हैं, वे ही न्याय करने बैठे हैं। ऐसे लोगों से न्याय की उम्मीद कैसे की जा सकती है।

### 2.10.1 पंचों का बदला हुआ रूप

पंच ईश्वर के रूप होते हैं। इसलिए पंच परमेश्वर कहा गया है। पंच जब न्याय की वेदी पर बैठते हैं, तब वे किसी पक्ष के नहीं होते हैं, सिर्फ निष्पक्ष होते हैं। कहानीकार ने 'कुच्ची का कानून' कहानी को शास्त्रार्थ की वेदी की तरह प्रस्तुत किया है। यहाँ शास्त्रार्थ का विषय किसी धार्मिक विचार या आध्यात्मिक दर्शन से नहीं जुड़ा है, बल्कि यहाँ एक विधवा स्त्री के अपनी कोख पर अपना अधिकार जताने की बात है। कुच्ची एक साधारण विधवा है, जिसका सोच असाधारण है। वह अपने लिए और अपने सास-ससुर के लिए विधवा होकर भी एक वारिस पैदा करना चाहती है। रूढ़िवादी होने के कारण पंच उसकी बात का विरोध करते हैं। इस पर कुच्ची बड़ी मजबूती के साथ अपना पक्ष रखती है **-"मरे हुए आदमी के काम तो यह कोख आ नहीं सकती बाबा। उनके मरने के बाद किसका हक़ बनता है? - दूसरा मर्द करेगी तो उसका हक़ बनेगा। - दूसरा मैंने किया नहीं, तो किसका बनेगा? मेरी कोख पर मेरा हक़ कब बनेगा?"**[79] अपने प्रश्नों-प्रतिप्रश्नों से कुच्ची पंचायत को निरुत्तर कर देती है। भारतीय गाँवों की यही विडम्बना है कि वहाँ की पंचायतें पहले से ही विवाद से संबन्धित दबंग अथवा ताकतवर व्यक्ति या परिवार के पक्ष में होती हैं और उसी के पक्ष का समर्थन करतीं हैं। इन पंचायतों के न्यायिक सिद्धान्त भी परंपरागत मान्यताओं से संचालित होते हैं। 'कुच्ची का कानून' कहानी में शिवमूर्ति ने जिस पंचायत का ताना-बाना बुना है, वह इन मान्यताओं का अपवाद नहीं है। यहाँ भी पंचायत का

मुखिया लछिमन चौधरी और बलई बाबा शुरू से ही कुच्ची के विरोध में रहते हैं। वे कुच्ची के देवर बनवारी के पक्ष की बात करते हैं। फिर भी कुच्ची पीछे नहीं हटती। कुच्ची गाँव की राजनीति को और पंचों की पुरुषवादी नीति को अच्छी तरह समझती है। यही कारण है कि पंचायत से पहले ही वह गाँव के विचारशील बुजुर्ग धन्नू बाबा तथा दबंग महिला सुघरा ठकुराइन से मिलती है। उनसे विचार-विमर्श करने पर उन्हें पंचायत में उपस्थित रहने के लिए कहती है। उसे सबसे बड़ा समर्थन गाँव के पढे-लिखे धरमराज वकील से मिलता है। जब पंचायत बैठती है, तब कुच्ची के तर्कों के आगे चौधरियों की एक नहीं चलती। उसका तर्क है - **"जब मेरे हाथ, पैर, आँख, कान पर मेरा हक़ है, इन पर मेरी मर्जी चलती है तो कोख पर किसका होगा, उस पर किसकी मरजी चलेगी, इसे जानने के लिए कौनसा कानून पढ़ने की जरूरत है?"**[80] गाँव के चौधरियों के पास कुच्ची के तर्कों को काटने का कोई तर्क नहीं है। पंचायत में सन्नाटा छा जाता है और फिर कुच्ची के पक्ष में धन्नू बाबा खड़े होते हैं और सुघरा ठकुराइन खड़ी होती हैं। अंततः कुच्ची की विजय होती है। यहाँ ज्ञात होता है कि यदि मजबूती के साथ अपनी बात रखी जाय और सत्य का साथ देने वाले गाँव के कुछ लोगों का समर्थन मिले तो रूढ़िवादी मान्यताओं में विश्वास रखने वाले पंचों को अपने विचारों में बदलाव लाना होगा।

### 2.10.2 पंचायत में पुरुष वर्चस्व

भारतीय समाज सदियों से पुरुष प्रधान समाज रहा है। आधुनिकता के इस दौर में स्त्री भले ही पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती हो, फिर भी जो स्थान उसे मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाया है। कुछ शहरी पढ़ी-लिखी स्त्रियों को छोड़ दिया जाय तो बाकी की स्त्रियाँ अभी भी पुराने जमाने में जी रही हैं।

उनका अपराध यही है कि वे अशिक्षित हैं और पिछड़ी जाति में पैदा हुई हैं। 'तिरिया चरित्तर' कहानी में गाँव की गरीब और अशिक्षित स्त्री विमली के चरित्र पर उंगली उठाने वाला उसका अपना ससुर है। पुत्र की अनुपस्थिति में पतोहू को धोखे से अफीम खिलाकर वह उसके साथ दुर्व्यवहार करता है। होश आने पर जब वह अपने पति के पास जाने के लिए निकलती है, तब वही ससुर गाँव के मुश्तन्डों से उसे रोकता है और फिर उसे उस अपराध की सज़ा देता है, जो उसने कभी किया ही नहीं। पुरुष प्रधान समाज की भरी पंचायत के बीच एक निरपराध स्त्री का यथार्थ चित्र खींचते हुए कहानीकार लिखता है **- "छन्न ! कलछुल खाल से छूते ही पतोहू का चीत्कार कलेजा फाड़ देता है। कूदती लोथ ! मांस जलने की चिरायंध ! चीत्कार सुनकर एकाध कुत्ते भौंकते हैं, एकाध रोने लगते हैं।"**[81] दोषरहित होने पर भी विमली को पंचायत में पुरुषों के वर्चस्व के कारण कलंकिनी घोषित कर दिया जाता है। यहाँ पुरुष को सत्ता के रूप में दिखाया गया है।

गाँव की पंचायतों का सच यह है कि इसमें पुरुषों का ही वर्चस्व रहता है। स्त्रियाँ या तो पुरुषों की पंचायत में जाती नहीं और यदि जाती भी हैं तो पंचों और चौधरियों के खिलाफ बोलने का साहस नहीं जुटा पातीं। **'तिरिया चरित्तर'** कहानी में बाल विधवा बिरजा बिसराम और विमली को लेकर सब कुछ जानती हैं, लेकिन मुँह नहीं खोलतीं। पंचायत में पुरुषों के वर्चस्व के आगे गाँव की एकमात्र स्त्री मनतोरिया की माई चुप नहीं रह पाती। वह मुँह खोलती है। बिसराम का पूरा कच्चा चिट्ठा सामने रखती है, लेकिन पंचों के बीच में कोई स्त्री मुँह खोले, यह पंचो को सहन नहीं होता। इस पर शिवमूर्ति लिखते हैं -**"किसकी औरत है यह? जनाना की जात, बिना बुलाए कैसे कूद पड़ी बीच में। छुट्टा-छुट्टी है? कौन है इसका आदमी?"**[82] पंचायत में पुरुष वर्चस्व के चलते एक सच बोलने वाली स्त्री को डाँटकर चुप करा दिया जाता है। यह है पुरुष वर्चस्व का सच।

पंचायती चुनाव एवं न्याय व्यवस्था में दिन-प्रतिदिन गिरावट आती जा रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पंचायती राज के माध्यम से भारत के गाँव के विकास का जो सपना देखा गया था, वह ध्वस्त हो गया है। चुनाव धन-जन के बल पर लड़े जा रहे हैं और इसमें नफा-नुकसान देखा जा रहा है। सरकार द्वारा गरीबों के लिए भेजा गया धन प्रधान और पंच तक सिमट कर रह गया है। इस संदर्भ में कहानीकार की दृष्टि पंचायती राज की गरिमा को बनाए रखने और उसमें निहित पुरुषवादी सोच को समाप्त करने की है। इसमें स्त्री पंचों की भागीदारी होनी चाहिए। सबसे बड़ी बात यह कि सत्ता को चुनौती देना और उसकी काली करतूतों पर उँगली उठाना भी आज के समय की मांग है।

### 2.11 दलित संवेदना

भारतीय संस्कृति दुनिया भर में महान संस्कृति के रूप में मानी जाती है। दुखद यह है कि यह महान संस्कृति दलितों को अपने से दूर रखती है। जो संस्कृति एवं समाज विश्व को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का संदेश देता है, वही अछूतों को अपनी व्यवस्था से बाहर रखता है। समाज से बहिष्कृत कर उन्हें जानवरों से बदतर जीवन यापन करने पर विवश करता है। ऐसे मानसिक रूप से विकलांग समाज का चित्रण दलित साहित्यकारों और गैर दलित साहित्यकारों दोनों ने किया है। साथ ही सवर्णों की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह भी दिखाया है। यह सच है कि आज शिक्षा के कारण दलित समाज जागरुक हुआ है। उसे लगता है कि वह भी इंसान है, उसमें भी मानवीय संवेदनाएँ हैं, वह अपना हक प्राप्त कर सकता है। कहानीकार शिवमूर्ति अपनी कहानियों के माध्यम से पूरे समाज को यही बताना और दिखाना चाहते हैं।

आरक्षण के तहत की 'बनाना रिपब्लिक' कहानी में प्रधानी की सीट 'हरिजन कोटे' में चली जाती है। गाँव का ठाकुर इसके पहले हमेशा इस सीट पर चुनाव लड़ता रहा है। जब यह सीट 'हरिजन कोटे' में चली जाती है, तब वह अपने किसी मुलाज़िम को इस सीट पर चुनाव लड़ाना चाहता है। ऐसे में उसकी नजर जग्गू हरिजन पर पड़ती है जिसे वह चुनाव लड़ने के लिए राजी कर लेता है। चुनाव जीतने के लिए ठाकुर पानी की तरह पैसा बहाता है और जग्गू हरिजन से भी खर्च कराता है। अपने पैसे खर्च करने के बदले में वह उसकी जमीन अपने नाम करता है, ताकि उसका अपना कोई नुकसान न हो। जब जग्गू चुनाव जीत जाता है तब वह ठाकुर की ड्योढ़ी पर नहीं जाता। यह देख ठाकुर ही हरिजन बस्ती में जाकर जग्गू को फूलों की माला पहनाता है और खुशी में नाचता है। जब जग्गू की ओर से लड्डू और पानी बढ़ाया जाता है तो ठाकुर लड्डू तो खा जाता है, लेकिन पानी से परहेज करता है। इस पर जग्गू कहता है **"जब आप हम लोगों के गिलास का पानी नहीं पी सकते, हमको अभी भी 'वही' समझते हैं तो हमारा-आपका साथ कितने दिन निभेगा?"**[83] अब जग्गू के हाथ में सत्ता है, ठाकुर उसकी बात अनसुनी नहीं कर सकता। वह गिलास का पानी गट-गटकर पी जाता है। जग्गू और ठाकुर के माध्यम से कहानीकार ने मानव मन को पूरी तरह समझा और परखा है और उसे व्यापक धरातल पर चित्रित किया है।

### 2.11.1 दलित पुरुष

एक समय था, जब दलित समाज को लेकर साहित्य में चर्चा करना वर्जित था। इस हाशिए के बाहर के समाज को साहित्य में लाना आसान नहीं था। समकालीन साहित्यकारों ने समय के साथ सरोकार निभाते हुए इस हाशिए के बाहर के समाज को हाशिए के अंदर लाने का प्रयास किया। इन्हीं साहित्यकारों में

एक चर्चित नाम है - शिवमूर्ति। शिवमूर्ति की 'बनाना रिपब्लिक' कहानी में हम देखते हैं कि कहानी का दलित पुरुष जग्गू ठाकुर के कहने पर चुनाव तो लड़ जाता है। चुनाव के दौरान ठाकुर जो कुछ कहता है, वह सब कुछ करता है और फिर चुनाव जीत भी जाता है, लेकिन चुनाव जीतने के बाद उसका विजय जुलूस ठाकुर की ड्योढ़ी पर न आकर सीधे उसके अपने घर की ओर जाता है। ठाकुर अपनी ड्योढ़ी पर खड़े होकर इंतज़ार ही करते हैं। कहानीकार लिखता हैं - **"अरे, जुलूस तो लगता है सीधे जग्गू की घर की ओर मुड़ गया। ढोल -तासे की धमक अचानक उनकी छाती पर धमकने लगती है। सिंघा बाजा की आवाज़ डरावनी लगने लगी है।"**[84] उद्धरण से स्पष्ट होता है कि जग्गू भले ही ठाकुर की मदद से प्रधानी का चुनाव जीता है, लेकिन ठाकुर ने उसके और उसके समाज के साथ जो कुछ किया हैं, उसे वह नहीं भूल पाया है। मदद अपनी जगह है और उनके द्वारा किया गया जुर्म अपनी जगह है।

**'कसाईबाडा'** कहानी का एक दलित पात्र है, जिसका नाम है - अधरंगी। यह पात्र पैरालिसिस का शिकार है। बाईं टाँग लुंज, टेढ़ी और छोटी है। सम्पूर्ण बायाँ अंग चेतन शून्य है। प्रधान और लीडर के जानवरों को छोड़कर बाकी लोगों के जानवरों को चराता है। यह पात्र शनिचरी का खुलकर साथ देता है। दारोगा जब शनिचरी से क़हता है कि तुम लूप लगवाओ, तब अधरंगी इसके विरोध में बोलता है। विरोध का परिणाम लेखक इन शब्दों में व्यक्त करता है **-"दारोगाजी के नथुने फूलने लगे हैं। वे हुमककर अधरंगी के पेट पर लात जमाते हैं, "हरामी के पिल्ले, मैं शिकार खेलने आया हूँ कि जिरह सुनने।"**[85] फिर भी अधरंगी चुप नहीं रहता। वह अकेले ही प्रधान और लीडर के खिलाफ गाँव में घूम-घूमकर विरोध का स्वर बुलंद करता है। यहाँ दारोगाजी की पूरी संवेदना मर चुकी है।

'ख्वाजा, ओ मेरे पीर!' कहानी लेखक की दलित अंचल की कहानी है, जिसमें नैरेटर अपने मामा-मामी के विषय में बताता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो यह सच है कि मामी अंधेरी रातों में जाकर मामा को देह सुख देती थीं, किन्तु क्या मनुष्य को देह सुख ही चाहिए? मानसिक सुख और साथ रहने का सुख मामा को कभी नहीं मिल पाता। ऐसे में यह स्वाभाविक है कि प्रेम के लिए तरसते हृदय में कलकत्ता में मिली आमिना ने कुछ कोमल भावों को जगा दिया हो। मामी के साथ-साथ आमिना से भी मामा को प्रेम और अवलंब नहीं मिल पाता। भांजे के साथ जब मामा पहली बार ससुराल पहुँचते हैं, तब मामी नब्बे साल की हो चुकी होती हैं। इस अवस्था में भी बेटे-बहू ने घर निकाला कर दिया। यही स्थिति मामा की भी है। वे भी भतीजों पर आश्रित हैं। सबसे मिलकर जब मामा, मामी के पास लौटते हैं और वहाँ से चलने की बात करते हैं, तब कहानीकार इस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखता है **-"मामी झुकी कमर को लाठी के सहारे टेके खड़ी थीं। उनके होंठ थरथराए, लेकिन आवाज़ नहीं निकली।"**[86] उद्धरण के माध्यम से समझा जा सकता है कि पहली बार पति ससुराल आया है और वह रुकने के लिए नहीं कह रही हैं। मामा की विडंबना यह है कि जीवन की संध्या में जब समय ने उन्हें उस मोड़ पर लाकर खड़ा किया कि वे पत्नी के साथ रह सकते थे, तब स्थितियों ने साथ नहीं दिया। जब यौवन था, तब जिम्मेदारियाँ आड़े आ गयीं और जब जिम्मेदारियों से मुक्ति मिली, तब यौवन और धन नहीं रहा।

'जुल्मी' कहानी में कहानीकार ने एक ऐसे ससुर की जिद और घिसी-पिटी सोच को उजागर किया है, जिसके कारण बहू कोइली और पुत्र दुलारे को अलग-अलग रहना पड़ता है और फिर अपनी गृहस्थी अलग-अलग बसनी पड़ती है। कारण सिर्फ यह है कि बहू कोइली भाई की रीढ़ की हड्डी टूट जाने पर अपने

मायके चली गयी थी। जाते समय ससुर अपनी बहू से कहता है **-"देखो बहू, तुम्हें जाना है तो जाओ। लेकिन जैसे बिना 'पठये' जा रही हो, वैसे ही बिना 'आनने' का इन्तजार किए लौट आना।"**[87] ससुर के इसी जिद के चलते कोइली के पिता भी कोइली को अपनी तरफ से ससुराल नहीं भेजते। परिणामतः पहले दुलारे आपा घर बसाता है और बाद में न चाहते हुए कोइली भी। लम्बे अन्तराल के बाद कोइली और दुलारे एक मेले में मिलते हैं। दोनों अपने को रोक नहीं पाते हैं। कहानीकार लिखता है **- "दोनों ने भर नज़र एक दूसरे को देखा, फिर आदमी आगे बढ़ा। उसके ठीक सामने। दोनों की नज़रें धुँधला गईं। वे एक दूसरे के गले लग गए।"**[88] यहाँ एक संवेदहीन ससुर की गलतियों के कारण पुत्र और बहू को दूसरी बार अपना-अपना घर बसाने के लिए विवश होना पड़ता है।

इसी तरह **'सिरी उपमा जोग'** कहानी का ए. डी. एम. अपनी गाँव वाली पत्नी और बेटे के प्रति संवेदहीन हो जाता है। जिस पत्नी ने बेरोजगारी के समय में हिम्मत बँधाया, अपने गहने बेचकर प्रतियोगिता परीक्षा के शुल्क और पुस्तकों की व्यवस्था की, खेती-बारी की सारी ज़िम्मेदारी लेकर उसे परीक्षा की तैयारी के लिए मुक्त किया, अफसर बनने के बाद उसे उसी पत्नी में ग्रामीणता की गंध आने लगती है। फिर एक दिन वह सब कुछ छोड़कर शहर में अपनी एक नई दुनियाँ बसा लेता है। हद तो तब हो जाती है, जब वह अपने बेटे को भी पहचानने से इनकार कर देता है। पिता की इस संवेदनहीनता पर कहानीकार लिखता है **-"चिट्ठी पढ़कर वे लम्बी साँस लेते हैं। उन्हें याद आता है कि लड़का पीछे बंगले पर छूट गया है। कहीं किसी को अपना परिचय दे दिया तो?"**[89] चिट्ठी में लिखी हुई पत्नी की समस्याओं, अत्याचारों और सपनों के बारे में पढ़कर कलक्टर साहब विचलित नहीं होते, बल्कि उन्हें भय सताता है कि कहीं

लड़का उनके बारे में बता न दे। एक पति और पिता की संवेदनहीनता का यह चरमोत्कर्ष है।

### 2.11.2 दलित स्त्री

प्राचीन काल में स्त्री को देवी का रूप माना जाता था, किन्तु बाद में पुरुष समाज का स्त्री को देखने का नज़रिया बदलने लगा। उसे भोग-विलास की वस्तु समझकर हमेशा बंधन में रखा गया। धीरे-धीरे समय के साथ उसमें बदलाव आया। स्त्री आर्थिक और वैचारिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हुई। गाँव की तुलना में शहरों की स्त्रियों का अधिक विकास हुआ, किन्तु ग्रामीण स्त्रियाँ आज भी चूल्हा-चौका और बच्चों के पालन तक सीमित होकर रह गईं हैं। गाँव में आज भी वे घर के बड़े बुजुर्गों की मर्जी के अनुसार अपना जीवन यापन करती हैं। शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में जिस तरह दलित स्त्रियों का चित्रण किया है, वह एकदम यथार्थ है।

'ख्वाजा, ओ मेरे पीर!' कहानी में एक स्त्री यदि अपने माता-पिता की देखभाल करना चाहती है, तो उसका साथ कोई नहीं देता। एक बहू से सिर्फ यह उम्मीद की जाती है कि वह अपने ससुराल वालों की खातिरदारी करे। कर्तव्यबोध के कारण कहानी का मामा भी अपनी पत्नी का साथ नहीं देता। पत्नी मामी ही बीच का रास्ता अपनाकर पत्नी धर्म का पालन करती हैं। वह रात में मामा से मिलने काफी लंबी दूरी तय करके खेत में जाती हैं, जहाँ जाने के बारे में कोई सोच नही नहीं सकता। मामी नैरेटर से कहती हैं -**"जब औरत होकर रात के अँधेरे में मैं उनके पास जा सकती थी तो वे मर्द होकर क्यों न आते, अगर उन्हें मुझसे प्रेम होता?"**[90] यह एक पत्नी की अपने संवेदनहीन पति के प्रति उलाहना भी है और अपनी चीज को सहेजने का भाव भी। स्त्री सबके प्रति सहानुभूति रखती है,

लेकिन क्या कोई पुरुष ऐसा कर सकता है। पुरुषवादी सोच के चलते मर्द एक औरत की संवेदना को नहीं जान पाता या जान बूझकर जानना नहीं चाहता।

'कसाईबाड़ा' कहानी में गाँव का प्रधान अपने आर्थिक लाभ के लिए सामूहिक आदर्श विवाह की आड़ में दलित लड़कियों से देह व्यापार करवाता है। इतना ही नहीं, सालों पहले उसने शनिचरी का भी शारीरिक शोषण किया था। दारोगा से बात करते हुए अधरंगी के कथन से इसकी पुष्टि होती है -**"कितनी शनिचरियों के लूप लगवाओगे दारोगा साहेब, जब तक परधानजी की जवानी गरम है। लूप लगवाना है तो प्रधान के लगवाओ।"**[91] अधरंगी का यह कथन बताता है कि प्रधान ने गाँव की कितनी ही शनिचरी जैसी औरतों का शारीरिक शोषण किया है। वह गाँव की स्त्रियों को एक प्रोडक्ट की तरह इस्तेमाल करता है और खुद साफ-पाक बनकर उनका जीवन नारकीय बनाता है। शनिचरी से भी ज्यादा त्रासद जीवन 'तिरिया चरित्तर' की विमली का है। वह ईंट के भट्ठे पर काम करते-करते जवान होती है। वहाँ पर काम करनेवाले काम-पिपासुओं की नीच हरकतों का वह शिकार होने लगती है। वह सभी का विरोध करती है। भट्ठे पर काम करनेवाला बिल्लर जब उसे छेड़ता है, तब वह उसे झिड़कते हुए कहती है - **"ए बिलरु बड़ी बदमाशी सूझती है - हट!"**[92] इतना कहने के बावजूद जब बिल्लर नहीं मानता तब वह उसकी कलाई को दाँत से काटती है। बिल्लर की चीख निकल जाती है। वह बिल्लर से और साथ ही कुइसा, गनेशी और डरेवर जी से अपने को घर से बाहर बचा लेती है, किन्तु घर के भीतर अपने सगे ससुर से हार जाती है।

विमली का ससुर, बिना अपने बेटे के ही विमली का गौना कराता है। वह विमली पर बुरी नज़र रखता है। वह शिवाले के प्रसाद में अफीम मिलाकर विमली

को खिलाता है और धोखे से उसके साथ बलात्कार करता है। विमली की व्यथा-कथा इतने से ही समाप्त नहीं होती। विमली जब अपने पति के पास कलकत्ता जाना चाहती है तो उस पर बिसराम चोरी का आरोप लगाता है। इस पर पंचायत बैठती है और चौधरी बोधन महतो फैसला सुनाते हैं -**"गाँव के नाक काटने वाली, गाँव की इज्ज़त में दाग लगाने वाली जनाना को बेदाग नहीं छोड़ा जा सकता। अगर आगे थाना-पुलिस तक बात जाती है तो भी गाँव के लोग उसे चंदा करके झेलेंगे, लेकिन दागी जनाना को 'दाग' करके ही नैहर भेजा जाएगा।"**[93] उद्धरण से यह बात साफ होती है कि पंचों की नज़र में स्त्री की कोई इज्ज़त नहीं है। पुरुषों की संवेदनहीनता पर लगता है कि बहस स्त्री विमर्श पर नहीं, पुरुष विमर्श को लेकर होनी चाहिए।

`'अकाल-दण्ड' कहानी में सुरजी का पति अपनी बीमार माँ को सुरजी के पास छोड़कर काम के सिलसिले में बाहर रहता है। गाँव में अकाल के कारण पर्याप्त काम भी नहीं मिलता है। यदि मिलता भी है तो श्रम के मुताबिक वेतन नहीं मिलता। कहानीकार इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखता है - **"समझौता कर लिया सुरजी ने। समझौता करना पड़ा। कितने दिन न करती आधी मजदूरी पर समझौता। एक हफ्ते से वह भी पक्की सड़क पर काम करने के लिए जा रही है। सबेरे छह बजे निकलती है तो रात आठ बजे लौटती है।"**[94]एक तरफ सुरजी के श्रम का शोषण हो रहा है, तो दूसरी तरफ उसके यौन शोषण का भी प्रयास किया जा रहा है। अकाल के समय राहत सामग्री बाँटने वाला सेक्रेटरी सुरजी के साथ बार-बार बदसलूकी करता है - कभी राह चलते, कभी उसकी झोपड़ी में घुसकर तो कभी षड्यंत्र के चलते राहत कैम्प में बुलाकर। एक दलित स्त्री के प्रति इससे बढ़कर कोई दूसरी अमानवीयता नहीं हो सकती।

इस अमानवीय कार्य में सेक्रेटरी का साथ रंगी बाबू भी देते हैं, जो अपने को बाबू रंग बहादुर कहते हैं।

'केशर कस्तूरी' कहानी केशर जैसी तमाम स्त्रियों की कहानी कहती है, जो बाल विवाह का शिकार होती हैं। कम उम्र में विवाह हो जाने से वह पढ़-लिख नहीं पातीं। छोटी ही उम्र में पति के साथ-साथ पूरे परिवार की ज़िम्मेदारी आ जाती है। केशर भी उन्हीं लोगों में से एक है। केशर को अपने ससुराल में दिन-रात मेहनत करनी पड़ती है। वह सिलाई-बुनाई करके कुछ पैसे कमाती है। केशर का जेठ उस पर अवैध संबंध का आरोप लगाता है। हद तो तब हो जाती है, जब केशर के पिता को बेटी के दुख-दर्द की चिंता के साथ-साथ उसे यह भी चिंता सताने लगती है कि कहीं बेटी का पाँव ऊंच-नीच में न पड़ जाय। कहीं उसके पिता की मान-मर्यादा नष्ट न हो जाय। पिता की इस आशंका पर रोक लगाती हुई केशर रो पड़ती है। उसके गले से उसका दर्द सीता के मिथ के रूप में प्रकट होता है। केशर के उत्तर को कहानीकार लोकगीत के रूप में लिखता है **-"मोछिया तोहार बप्पा 'हेठ' न होइहै, पगड़ी केहु ना उतारी, जी-ई-ई। टुटही मंड़इया मा जिनगी बितउबै, नाही जावै आन की दुआरी जी-ई-ई।"**[95] भाव यह है कि वह किसी भी कीमत पर पिता की इज्ज़त पर दाग नहीं लगने देगी। उल्लेखनीय है कि केशर एक स्वाभिमानी स्त्री है। उसने अपने दुख-दरिद्र से लड़ने का रास्ता खोज निकाला है। मन बदलने के लिए मायका घूम आने के अपने पिता और मौसा के प्रस्ताव को ठुकराती हुई वह कहती है -**"दुख तो काटने से ही कटेगा। बप्पा। केशर चूल्हे कि आग तेज़ करते हुए बोली, भागने से तो और पिछुआएगा।"**[96] केशर का यह ऐसा असाह्य तर्क है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि उसमें प्रतिभा की कमी नहीं है, कमी है तो सिर्फ अवसर की। यदि उसे पढ़ने-लिखने का अवसर मिला होता, तो वह भी अपनी योग्यता की सुगंध चारों तरफ बिखेर दी होती।

शिवमूर्ति अपनी कहानियों के माध्यम से दलित समाज से जुड़े अनेक मुद्दों को उठाते हैं। ये मुद्दे दलित पुरुषों के भी हैं और दलित स्त्रियों के भी। दलित पुरुषों के विषय में कहानीकार का मानना है कि चारित्रिक पतन सवर्णों के साथ-साथ दलित समाज के पुरुषों में भी मौजूद है। कहानियों में चित्रित दलित स्त्रियाँ बड़ी दबंग हैं। वे परिस्थितियों से हार नहीं मानतीं। अपनी आखिरी साँस तक लड़ने के लिए तैयार रहती हैं। यहाँ लेखक की दृष्टि मानवीय संवेदना को बरकरार रखने की है। उसकी कहानियाँ इस बात की मांग करती हैं कि समाज में जो स्थान पुरुषों का है, वही स्त्रियों का भी होना चाहिए। यानी बराबरी का।

## निष्कर्ष

शिवमूर्ति की सभी कहानियों में गाँव अपनी ठेठ और अक्खड़ भूमिका के साथ लगभग हर जगह मौजूद दिखाई देता है। वे संवेदनाओं के अद्भुत चितेरे हैं। उनकी कहानियों में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को लेकर, पीढ़ीगत कड़वाहट को लेकर, पितृ सत्तात्मक व्यवस्था को लेकर, दाम्पत्य जीवन के संबंधों को लेकर, अवैध यौन संबंधों को लेकर, समाज में व्याप्त कुरीतियों को लेकर, पंचायती राज व्यवस्था को लेकर और दलित जीवन के यथार्थ को लेकर बहुत गहराई से सूक्ष्म विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इस विवेचन-विश्लेषण में पाया गया है कि आज भी वही पुरानी सामंतवादी मानसिकता समाज में कार्य कर रही है। इस सामंतवादी मानसिकता में मानवीयता के लिए कोई स्थान नहीं है। यहाँ जिंदगी की कोई कीमत नहीं है। चारित्रिक पतन सवर्णों के साथ-साथ दलित समाज में भी मौजूद है। जिस तरह से सवर्ण दलित जातियों का शोषण करते हैं, उसी तरह से दलित अपने ही समाज की स्त्रियों का शोषण करते हैं। ऐसी दलित स्त्रियाँ

बाहर से तो अपनी रक्षा कर लेती हैं, किन्तु घर के दरिंदों से अपनी रक्षा नहीं कर पातीं। आज यह हमारे समाज की बहुत बड़ी त्रासदी है।

शिवमूर्ति की कहानियों में जो सबसे बड़ी दृष्टि उभरकर सामने आती है, वह यह कि जब समस्याओं के हल के सभी रास्ते बंद हो जाते हैं, तब ऐसी परिस्थिति में स्त्री ही कोई स्वीकार्य रास्ता निकालती है। चाहे वह 'केशर कस्तूरी' कहानी की केशर हो, चाहे 'कुच्ची का कानून' की कुच्ची हो, 'अकाल-दंड' की सुरजी हो, या फिर 'ख्वाजा, ओ मेरे पीर' की मामी ही क्यों न हों। ये सभी नारी पात्र बहुत ही सुलझे हुए पात्र हैं। वास्तव में शिवमूर्ति आज के समय के मानव मुक्ति के बहुत बड़े आख्याता हैं। उनकी कहानियाँ मानव जीवन की जीवंत दास्तान हैं।

<u>संदर्भ सूची</u>

1. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991, पृ. 77-78

2. शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 36

3. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991, पृ. 7

4. वही पृ. 80

5. वही पृ. 80

6. वही पृ. 87

7. वही पृ. 80

8. वही पृ. 153

9. डॉ. पुष्पपाल सिंह, समकालीन कहानी: युगबोध का संदर्भ, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1977, पृ. 117

10. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991, पृ. 77

11. वही पृ.79

12. वही पृ.77

13. डॉ. माधवी जाधव, मन्नू भण्डारी के साहित्य में चित्रित समस्यायें, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012, पृ. 271

14. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991, पृ. 71

15. शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017

पृ. 35

16. वही पृ. 35

17. वही पृ.53

18. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991,

पृ. 152

19. वही पृ. 71

20. वही पृ. 152

21. प्रो कमला प्रसाद, स्त्री: मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 20

22. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991,

पृ. 140

23. वही पृ. 153

24. वही पृ. 74

25. वही पृ. 89

26. वही पृ. 72

27. वही पृ.73

28. डॉ. माधवी जाधव, मन्नू भण्डारी के साहित्य में चित्रित समस्यायेँ, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2012, पृ. 271

29. शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017

पृ. 143

30. शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017

पृ. 14-15

31. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991,

पृ. 65

32. वही पृ. 65

33. वही पृ. 62

34. वही पृ. 64

35. वही पृ.154

36. वही पृ.164

37. वही पृ. 89

38. वही पृ. 65

39. फणीश्वरनाथ रेणु का कथा साहित्य: समाज शास्त्रीय विश्लेषण, https://shodhganga.infibnet.ac.in/handle/10603/13161

40. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991,

पृ. 115

41. वही पृ. 142

42. वही पृ. 85

43. वही पृ. 119

44. वही पृ. 89

45. शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 पृ. 85

46. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991, पृ. 88

47. वही पृ. 39

48. वही पृ. 18

49. वही पृ. 23

50. वही पृ. 26

51. वही पृ. 61

52. वही पृ. 29-30

53. वही पृ.84

54. वही पृ. 66

55. वही पृ. 66

56. वही पृ. 67

57. वही पृ. 152

58. वही पृ. 74

59. वही पृ. 88

60. वही पृ. 88

61.वही पृ. 11

62. वही पृ. 18

63. वही पृ. 39

64. वही पृ. 29

65. वही पृ. 48

66. वही पृ. 77

67. वही पृ. 13

68. डॉ. गंभीर एस. के. साठोत्तरी हिन्दी कवि में राजनीतिक चेतना, 2009 पृ. 90

69. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991,

पृ. 23

70. वही पृ. 26

71. शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017

पृ. 74

72. वही पृ. 35

73. वही पृ. 43

74. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991,

पृ. 9

75. शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017

पृ. 75

76. वही पृ. 51

77. वही पृ. 74

78. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991, पृ. 141-142

79. शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 पृ. 118

80. वही पृ. 131

81. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991, पृ. 144

82. वही पृ. 140

83. शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 पृ. 75

84. वही पृ. 74

85. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991, पृ. 19

86. शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 पृ. 32

87. वही पृ. 143

88. वही पृ. 151

89. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991, पृ. 62

90. शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017

पृ. 21

91. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991,

पृ. 19

92. वही पृ. 109

93. वही पृ. 142

94. वही पृ. 37

95. वही पृ.164

96. वही पृ.162

# तृतीय अध्याय

# शिवमूर्ति के उपन्यासों का वस्तुगत यथार्थ

## प्रस्तावना

साहित्य का केंद्र अगर समाज होता है तो समाज के केंद्र में मनुष्य है। साहित्य में उपन्यास एक ऐसी विधा है, जिसमें मानव और उसके जीवन के विविध पहलुओं का विस्तृत चित्रण होता है। रचनाकार के लिए इस विधा में कहने के लिए बहुत अवसर रहता है। जब रचनाकार समाज में देखे अपने अनुभव को अपनी रचना में ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत करता है, तब उसे हम यथार्थ कहते हैं। यथार्थ का उद्देश्य साहित्य में वास्तविकता का अंकन करना होता है। अतः हम कह सकते हैं कि समाज, परिवेश आदि की वास्तविकता का चित्रण करना ही यथार्थ है, किन्तु वस्तुगत यथार्थ से तात्पर्य है, समाज में जो कुछ भी घटित हो रहा है, उसे बहुत ईमानदारी से बिना किसी राग-द्वेष के तटस्थ होकर साहित्य में प्रस्तुत करना। इस तरह की रचनाएँ पढ़ने के बाद पाठक आनंदित नहीं, बल्कि बेचैन होता है। यह एक तरह से कसकता हुआ सच है। इस दृष्टि से जब मैं कथाकार शिवमूर्ति के तीनों उपन्यास- 'त्रिशूल' (1995), 'तर्पण' (2004), 'आखिरी छलांग' (2008) पर विचार करती हूँ तो पता चलता है कि इन तीनों उपन्यासों में शिवमूर्ति ने सांप्रदायिकता, दलित अस्मिता, किसान जीवन की समस्या, वर्णवादी व्यवस्था, वर्चस्ववादी हिंसक प्रवृत्ति, पशु एवं प्रकृति चित्रण आदि मुद्दों को केंद्र में रखा है और इन सभी का वस्तुपरक चित्रण प्रस्तुत किया है। 'सांप्रदायिकता', 'जातिवाद' और 'किसान जीवन' आज के भारतीय समाज की वे वास्तविकताएँ हैं, जो समय के साथ-साथ ज्यादा

मुखर और जटिल होती जा रही हैं। सांप्रदायिकता जहाँ हिन्दू-मुस्लिम पूर्वाग्रह लिए हुए हैं, वहीं जातिवाद अगड़ी-पिछड़ी और दलित जातियों के बीच का संघर्ष है। धार्मिक मामले में लेखक पूरी तरह हिन्दू सांप्रदायिकता पर केन्द्रित है। जातिवाद के संदर्भ में वह दलित और पिछड़ी जातियों के साथ खड़ा है। किसान के मामले में लेखक का मानना है कि किसान में इतनी ताकत है कि वह आखिरी साँस तक मौत से जूझ सकता है और बेफिक्र होकर जी सकता है।

### 3.1 सांप्रदायिकता

सांप्रदायिकता ने एक धर्म से दूसरे धर्म को श्रेष्ठ दिखाने की मुहिम छेड़ रखी है। आज प्रायः सभी धर्मों के लोग अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करने के प्रयास में लगे हुए हैं। इसके लिए वे हर तरह से तैयार हैं, कभी मंदिर-मस्जिद के विवाद को बढ़ावा देकर तो कभी जाति संबंधी ऊंच-नीच की दीवार खड़ी करके। सांप्रदायिकता की साजिश को अनेक उपन्यासकारों ने बेनकाब करने का प्रयास किया है, किन्तु सांप्रदायिकता की जड़ें समाज में इतनी गहराई से धँसी हुई हैं कि कोई चाहकर भी उसे समूल नष्ट नहीं कर पा रहा है। जब तक सांप्रदायिकता की जड़ों को जड़ सहित उखाड़ नहीं फेंका जाएगा, तब तक कोई भी धर्म न तो सुरक्षित रहेगा और न समाज में अमन-चैन होगा। विभूति नारायण राय इस संदर्भ में लिखते हैं -**"सांप्रदायिकता को हमेशा एक शत्रु की जरूरत होती है और इस मामले में शत्रु दूसरा धर्मावलम्बी ही हो सकता है। इसके द्वारा एक समुदाय के सदस्यों को यह विश्वास दिलाया जाता है कि उनके लौकिक और पारलौकिक हित दूसरे धर्मावलम्बी समुदाय के हितों पर आघात पहुँचाकर ही सुरक्षित रखे जा सकते हैं। सांप्रदायिकता के दर्शन में आस्था**

**रखनेवाले यह मानते हैं कि एक धार्मिक समुदाय के सदस्य बने रहने से ही यह हो सकता है।"**[1]

शिवमूर्ति का 'त्रिशूल' उपन्यास सांप्रदायिकता को ही केंद्र में रखकर लिखा गया है। यह उपन्यास बाबरी मस्जिद के विध्वंस के पहले लिखा गया था। फिर भी यह उपन्यास बताता है कि इस देश में सांप्रदायिक दंगे कहीं मंदिर-मस्जिद के नाम पर तो कहीं ईद और होली के नाम पर आये दिन होते रहते हैं। 'त्रिशूल' उपन्यास के शास्त्री जी हिंदुत्व के कट्टर समर्थक हैं। वे मानवता और भाई-चारे से अधिक अपने धर्म और संप्रदाय को श्रेष्ठ मानते हैं। उपन्यास का महमूद कथानायक पाल साहब के यहाँ नौकर की तरह नहीं, बल्कि घर के सदस्य की तरह रहता है। पास-पड़ोस के लोग उसे चेलवा के नाम से जानते हैं। शास्त्री जी उसके हाथ की बनाई हुई नीबू की चाय पीते हैं, उससे बबूल की दातून लेते हैं, पास-पड़ोस के लोगों के बीच लड्डू बँटवाते हैं, लेकिन जब उन्हें महमूद के मुसलमान होने का पता चलता है तो वही चेलवा उनके लिए आँख का काँटा बन जाता है। षड्यंत्र के तहत वे अपने पोते का अपहरण करा देते हैं और महमूद के खिलाफ थाने में रिपोर्ट लिखवाते हैं। परिणाम यह होता है कि महमूद को पुलिस पकड़कर ले जाती है, जबकि वह बेगुनाह है। कथानायक पाल साहब की मदद से और पाँच मुसलमानों की गवाही से महमूद अंततः थाने से छूटता है, लेकिन अब वह पाल साहब के घर न आकर मुस्लिम कट्टरवादियों से जुड़ जाता है। महमूद अब अपने घर भी नहीं जा सकता, क्योंकि सांप्रदायिक दंगे में उसके घर को जला दिया गया है और उसके माता-पिता अपनी जान बचाकर कहीं और चले गए हैं।

लेखक बताना चाहता है कि वैसे तो हिन्दू मोहल्ले में सब ठीक चलता है, लेकिन सांप्रदायिक दंगे के समय यदि हिन्दू बस्ती में किसी मुसलमान का घर है या कोई मुसलमान रहता है तो वह खटकने लगता है। यही कारण है कि कुछ हिन्दू संप्रदायवादी लोग मुस्लिम दर्जी का घर जला देते हैं और इसका लाभ उठाकर हनुमान मंदिर का एक पुजारी उसकी जमीन पर कब्जा कर लेता है। इस प्रकार **'**त्रिशूल' उपन्यास में लेखक ने महमूद, शास्त्री जी और मुसलमान दर्जी के माध्यम से सांप्रदायिकता के सच को हमारे सामने रखा है और यह बताने की कोशिश की है कि कैसे एक भोला-भाला, सभी का प्रिय महमूद एक साधारण मनुष्य से कट्टर मुस्लिम सांप्रदायिक दंगों में शामिल होकर अराजक तत्व बन जाता है। इस संदर्भ में कथाकार शिवमूर्ति लिखते हैं **-"तब किस घर गया होगा महमूद? कहीं नियति को यहीं तो मंजूर नहीं कि वह किसी-न-किसी 'काला पहाड़' की शागिर्दी करे?"**[2] यहाँ 'काला पहाड़' नाम का जो पात्र है, वह मुस्लिम है और अराजक है। महमूद का उससे जुड़ना शास्त्री जी जैसे लोगों के कारण होता है।

सांप्रदायिकता आज की वास्तविकता बन गई है। जो दिन-प्रतिदिन और ताकतवर होती जा रही है। इसका संबंध सत्ता संघर्ष से है। उपन्यास का कथानायक पाल साहब शास्त्री जी से पूछते हैं -**"तो क्या आपकी पार्टी सत्ता में आएगी तो सचमुच मुसलमानों को देश निकाला दे देगी? मस्जिद नेस्तनाबूद कर देगी?"**[3] इस पर शास्त्री जी का उत्तर है -**"बिलकुल कर देगी। आपने हमारे नेता का ऐलान नहीं सुना?"**[4] इस पर कथानायक पुनः कहता है -**"मेरा वश चले तो मंदिर-मस्जिद दोनों को ध्वस्त कराकर बच्चों के लिए पार्क बनवा दूँ।"**[5] 'त्रिशूल' उपन्यास में लेखक का मानना है कि हिंदू सांप्रदायिकता की वजह से मुस्लिम सांप्रदायिकता का जन्म होता है।

इसलिए लेखक अपने कथन में बच्चों के लिए पार्क बनवाने की बात करता है, जिसमें हर धर्म के बच्चे-बूढ़े-जवान वहाँ आ-जा सकते हैं। 'त्रिशूल' उपन्यास के अंत में महमूद का अराजक तत्व बन जाना हिंदू-मुस्लिम धार्मिक कट्टरता का प्रमाण है। आज हम देखते हैं कि सांप्रदायिकता को बढ़ावा देकर अनेक राजनीतिक दल अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं। वे सत्ता में रहकर समाज में हो रहे अनेक अराजक तत्वों के कारण बनते हैं। अतः समाज से यदि सांप्रदायिकता के जहर को मिटाना है तो सबसे पहले राजनीति को स्वस्थ और पारदर्शी बनाना होगा। इसके लिए धर्म की शिक्षा नहीं, मानव मूल्यों की शिक्षा देनी होगी।

### 3.1.1 मंदिर-मस्जिद विवाद

प्राचीन भारत में हिंदू-मुस्लिम संबंध राजनीति से अधिक निजी संबंधों और विश्वास पर आधारित था। इसीलिए उनके बीच आपसी भाई-चारा और सौहार्द बना हुआ था। बाद में अंग्रेजों की 'फूट डालो राज करो' की नीति ने इनके संबंधों की नींव हिला दी, जिससे हिंदूवादी और कट्टर इस्लामी शक्तियाँ सशक्त हुईं। इन शक्तियों ने मंदिर-मस्जिद विवाद एवं हिंदू-मुस्लिम भेदभाव को जन्म दिया। 6 दिसम्बर 1992 को बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद बहुत तेज़ी से यह विवाद सांप्रदायिक हिंसा और नफरत का रूप लेकर संपूर्ण देश में संक्रामक रोग की तरह फैल गया। बाबरी मस्जिद का ध्वस्त एक ऐसी घटना है, जिसने विभाजन के समय की त्रासदी को फिर से जिंदा कर दिया और एक बार फिर हमारा देश दंगों की आग में झुलसने लगा। इस समय हिंदू-मुस्लिम के बीच का टकराव काफी बढ़ गया। शिवमूर्ति के 'त्रिशूल' उपन्यास में बताया गया है कि किस प्रकार कुत्सित राजनीतिक उद्देश्य को पूरा करने के लिए हिंदू और मुसलमानों के बीच खाँईं को चौड़ी की गयी है।

कथानायक पाल साहब किसी भी  धर्म के समर्थक नहीं हैं। वे हिंदू और मुसलमान के बीच भेदभाव नहीं करते। पाल साहब के पड़ोसी शास्त्री जी कट्टर हिंदूवादी हैं। जब पाल साहब शास्त्री जी से कहते हैं -**"कार सेवकों ने भी तो अंधेर कर रखा है शास्त्री जी। उस दिन मस्जिद पर चढ़ गए। उसे तोड़ने, बम से उड़ाने की कसमें खा रहे हैं। कोई सरकार कब तक बर्दाश्त करेगी और गोली तो आप लोग खुद चलवाए हैं। तीस तारीख को उतना उत्पात करके पेट नहीं भरा था जो आज तक वहाँ घेरा डाले पड़े हैं।"**[6] पाल साहब की बात सुनकर शास्त्री जी तिलमिला उठते हैं और जवाब में यह कहते हैं- **"पहली बात तो यह है कि उसे मस्जिद नहीं मंदिर कहिए. ......."**[7] फिर शास्त्री जी पाल साहब के साथ मंदिर-मस्जिद को लेकर काफी बहस और विवाद करने लगते हैं। शास्त्री जी को इस बात का भय सताता है कि मुस्लिम लोग अपनी चार-चार शादियाँ करके ढेर सारे बच्चे पैदा करके भारत को मुसलमानों का देश बना देंगे। वे कहते हैं -**"देश के सारे मंदिरों को तोड़कर मस्जिदें बनाई जाएँगी। हजारों-हजार बाबरी मस्जिदें।"**[8]

जब हम शास्त्री जी के संपूर्ण कथन पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि उनमें सोच के धरातल पर संकीर्णतावादी दृष्टि कूट-कूट कर भरी हुई है। ऐसे बयानों एवं विचारों से भारत की सभ्यता और संस्कृति की अखंडता को चोट पहुँचाई जा रही है। यह बात बिलकुल सही है कि शिवमूर्ति का **'त्रिशूल'** उपन्यास राम मंदिर और बाबरी मस्जिद को आधार बनाकर लिखा गया है, किंतु यह उपन्यास  आज भी अपनी सार्थकता प्रतिपादित करने में पूर्णतः समर्थ साबित होता है। मंदिर-मस्जिद के नाम पर देश में आज आए दिन दंगे-फसाद होते रहते हैं, जिसमें निर्दोष आम जनता मारी जाती है। देखा जाता है कि यह सब कुछ स्वार्थी राज नेताओं के उकसाने पर होता

है। भोली-भाली जनता राज नेताओं के इस षडयंत्र को नहीं समझ पाती और उनके हाथ की कठपुतली बन जाती है। यहाँ उपन्यासकार कहना चाहता है कि ईश्वर या अल्ला के जो सही बंदे हैं या उन्हें वास्तव में मानते हैं, वे कभी भी मंदिर-मस्जिद के नाम पर दंगा-फसाद नहीं कर सकते। वे तो मानवता के रक्षक होते हैं। वे भला भक्षक कैसे बन सकते हैं।

### 3.1.2 रुग्ण धार्मिकता

नैतिकता, न्याय और धर्म के विपरीत कोई भी कार्य रुग्ण मानसिकता को दर्शाता है। असल में धर्म मनुष्य को अच्छे कर्म के लिए प्रेरित करता है। वह मनुष्य को अनाचार से दूर कर सदाचार की ओर ले जाता है, किंतु आज धर्म का प्रचलित रूप विसंगतियों, विरोधी मान्यताओं और विद्रूपताओं से लबरेज होता जा रहा है। धर्म के नाम पर आडंबर, अंधविश्वास और कर्मकांड जैसी रुग्णता ने धार्मिकता का रूप ले लिया है। यही भावना आगे चलकर सांप्रदायिकता और जातिवाद जैसी समस्याओं के पनपने का कारण बनती है। 'त्रिशूल' उपन्यास में शास्त्री जी हिन्दुत्व के नाम पर अपने धार्मिक होने का ढ़ोंग रचते हैं। शास्त्री जी के पड़ोस में काम करने वाला चेलवा शास्त्री जी के लिए तब तक पवित्र था, जब तक उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि वह महमूद है। चेलवा का असली नाम और धर्म जानते ही शास्त्री जी का हिन्दुत्व जाग उठता है और सब कुछ अपवित्र और अशुद्ध हो जाता है। एक समय ऐसा भी था जब महमूद के बिना शास्त्री जी का एक पत्ता भी नहीं हिलता था। उसके हाथ की नीबू की चाय पिये बिना उनकी दिनचर्या पूर्ण नहीं होती थी, किंतु चेलवा ही महमूद है, यह ज्ञात होने पर शास्त्री जी के दिलो-दिमाग पर उनका हिंदू धर्म हावी हो जाता है। अपनी इसी रुग्ण मानसिकता के कारण महमूद की एक भी अच्छाई उन्हें नज़र

नहीं आती, या फिर हम यह कह सकते हैं कि शास्त्री जी धर्म, जाति, संप्रदाय आदि के मामले में इतने कट्टरवादी हैं कि वे मासूम महमूद के अराजक तत्व बनने का कारण बनते हैं।

महमूद मुस्लिम है, यही उसका अपराध है। शास्त्री जी हिंदू हैं, गाय पालकर हिंदुत्व की रक्षा करते हैं और लोक गायक पाले की हत्या करा देते हैं। वास्तव में अधकचरे ज्ञान रखने वाले लोग धूर्त, पाखंडी और दकियानूसी विचार के होते हैं। उनमें व्यावहारिक ज्ञान का पूरा अभाव होता है। ऐसे लोग हर समय मरने-मारने के लिए तैयार रहते हैं।

### 3.1.3 अविश्वास एवं असुरक्षा की भावना

विश्वास एक आश्वासन है जिसमें मनुष्य स्वयं के साथ दूसरों को खुश और सुखी बनाना चाहता है। यदि हमें दूसरों पर भरोसा या विश्वास है तो हम उन्हें अपनत्व के साथ स्वीकार करते हैं। अविश्वास विश्वास का विपरीत रूप है जहाँ मनुष्य-मनुष्य के बीच नफरत और दुराव का भाव उपस्थित रहता है। इस भाव के चलते मनुष्य एक-दूसरे के विरोधी हो जाते हैं। विश्वास जहाँ समाज को दृढ़ता प्रदान करता है, वहीं अविश्वास समाज की जड़ों को कमजोर कर उसे खोखला बनाता है। यही कारण है कि समाज में विश्वास की भावना को बनाए रखने पर ज़ोर दिया जाता है। असुरक्षा से तात्पर्य है -जहाँ सुरक्षा का भाव न हो। असुरक्षा भावनात्मक और शारीरिक दोनों ही प्रकार की हो सकती है। मनोवैज्ञानिकों ने असुरक्षा की भावना का संबंध डर और बेचैनी से माना है। स्वयं को असुरक्षित समझना ही भय का अहसास कराता है। भय के कई नकारात्मक पहलू हैं, जो रूढ़िवाद, विसंगतियों और हीन भावनाओं को बढ़ावा देते हैं। समाज के निम्न या अल्पसंख्यक वर्ग इसी डर के

कारण स्वयं को असुरक्षा की भावना से ग्रसित पाता है। 'त्रिशूल' उपन्यास का महमूद इसी तरह का पात्र है।

सामान्य दिनों में महमूद जब तक लेखक के घर में रहता है, वह सुरक्षित रहता है। जैसे ही उसके मुसलमान होने की बात मुहल्ले में फैलती है, उसकी सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। शास्त्री जी के षडयंत्र के तहत महमूद को गिरफ्तार किया जाता है। बहुत मुश्किल से कथा नायक पाल साहब महमूद को पुलिस की हिरासत से छुड़ाने में कामयाब होते हैं, लेकिन महमूद अब पाल साहब के घर पर सुरक्षित नहीं है। जेल की यातना ने महमूद को काफी कुछ सिखा दिया है। वह जानता है कि पाल साहब, उनका परिवार और वह स्वयं अब वहाँ सुरक्षित नहीं है। यही वे कारण हैं जिनकी वजह से महमूद के मन में अविश्वास और असुरक्षा की भावना पनपने लगती है और वह पाल साहब का घर छोड़कर चला जाता है। सांप्रदायिक दंगे में उसका घर भी जला दिया गया है। ऐसी परिस्थिति में मासूम महमूद का अराजक तत्व बन जाना स्वाभाविक है। कहते हैं कि मरता क्या न करता? मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है।

### 3.1.4 धर्म एवं राजनीति

धर्म और राजनीति सदियों से व्यक्ति एवं समाज पर अपना प्रभाव डालते रहे हैं। असल में दोनों ने ही मानव सभ्यता के विकास और ह्रास में अपनी अहम् भूमिका निभाई है। धर्म अगर वैयक्तिक उत्थान का साधन है तो राजनीति सामाजिक उत्थान का माध्यम। इन दोनों के कार्य क्षेत्र भले ही अलग-अलग हैं, लेकिन रहते और चलते समानांतर ही हैं। यदि दोनों को समाज के निर्माण, कल्याण एवं प्रगति के साथ जोड़ा गया तो ये रचनात्मक भूमिका निभाएँगे और यदि इन्हें

विनाश, अकल्याण और पतन के साथ जोड़ा गया तो ये विध्वंशक भूमिका निभाएँगे। धर्म की बहुत ही अच्छी परिभाषा देते हुए स्वामी विवेकानंद ने कहा है -**"मानवता को पतन के गर्त से बचाने के लिए हमें हर स्थिति में धर्म का अवलंबन ग्रहण करना पड़ेगा। धर्म मनुष्य के भीतर निहित दोषत्व का विकास है....... यह जीवन परम स्वाभाविक तत्व है।"**[9]

असल में धर्म, समाज एवं मानव-जीवन का अभिन्न अंग है। धर्म का आश्रय लेने से मनुष्य को अपनी अतृप्त आकांक्षाओं, असफलताओं एवं निराशाओं के प्रति समझौता करने या संतोष व्यक्त करने का अवसर मिलता है और इस तरह वह अपने उच्च एवं दिव्य आदर्शों की स्थापना धर्म के माध्यम से करता है। यदि हम राजनीति पर विचार करते हैं कि आखिर वह है क्या? इसके उत्तर में हमें पता चलता है कि योजनाबद्ध नीति एवं कार्यक्रमों द्वारा शासन प्राप्त करना राजनीति है। राजनीति के जनक अरस्तू एवं अन्य विशेषज्ञों का मानना है कि जनता के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर को ऊंचा करना ही राजनीति का लक्ष्य है। राजनीति के लोग अगर जन सेवा का संकल्प लेते हैं तो समाज का आर्थिक स्तर  ऊंचा उठने से कोई रोक नहीं सकता, लेकिन आज देखा यह जाता हैं कि धर्म और राजनीति इन दोनों के मूल्यों में गिरावट आ गयी है। लोग धार्मिक कार्यों में शुचिता नहीं बरतते और राजनीति में सक्रिय रूप से कार्यरत लोगों के अवांछित उदाहरण एक नहीं हज़ार मिल जाएँगे। सत्ता में अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर, सांप्रदायिकता के नाम पर राजनीतिज्ञ अपना मतलब निकालने के लिए गंदी राजनीति का खेल खेलते हैं। 'त्रिशूल' उपन्यास में हम देखते हैं कि कट्टर हिंदू शास्त्री जी को जब चेलवा अर्थात् महमूद के मुसलमान होने की बात ज्ञात होती है,

तब वे साम, दाम, दंड, भेद की नीति को अपनाकर उसे लेखक के घर से सदा-सदा के लिए जाने को विवश कर देते हैं।

अधर्म और गलत राजनीति ने दो धर्मों और जातियों के बीच ऐसी मजबूत और ऊँची दीवार खड़ी कर दी है कि उसे न तो तोड़ा जा सकता है और न ही उसे फाँदा जा सकता है। 'त्रिशूल' उपन्यास में लेखक बताता है कि कट्टर हिंदूवादियों का मानना है कि देश का विभाजन एकमात्र मुसलमानों के कारण हुआ। अतः वे पाकिस्तान चले जाएँ। वे यह भी मानते हैं कि मंडल और कमंडल की राजनीति इसी के परिणाम हैं। जहाँ मंडल की राजनीति ने जातीय ध्रुवीकरण को बढ़ावा दिया, वहीं कमंडल की राजनीति ने धार्मिक ध्रुवीकरण को और तेज कर दिया। इस प्रकार लेखक का स्पष्ट मत है कि वोट की राजनीति के लिए धर्म का सहारा लेना कतई सही नहीं है।

### 3.1.5 उदारीकरण के दौर का परिवेश

उदारीकरण से तात्पर्य है -'उदार दृष्टिकोण' जो राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र से संबंध रखता है। भारत में 24 जुलाई 1991 से आर्थिक उदारीकरण का दौर शुरू हुआ। वस्तुतः भारत में उदारीकरण, अनावश्यक नियंत्रण और प्रतिबंध से भारतीय व्यापार और उद्योगों को उदार बनाने के उद्देश्य से किया गया, किंतु यह उद्देश्य सार्थक सिद्ध नहीं हुआ। जब से देश में नई आर्थिक नीति लागू हुई, तब से चुनिन्दा पूँजीपतियों को लाभ पहुँचाने के लिए खुलेआम आम जनविरोधी नीतियाँ बनाई जाने लगीं। इन नीतियों से गरीबी, भूखमरी और महँगाई हमारे देश में और बढ़ गयी। खेती, बारिश और गर्मी के बजाय मंदिर-मस्जिद ज्यादा बड़े मुद्दे बना दिये गए। यही वह समय था, जब बाबरी मस्जिद का मुद्दा काफी तेज हुआ।

यही कारण है कि 'त्रिशूल' उपन्यास में नब्बे के बाद का भारत चित्रित हुआ है। इस दौर में सवर्ण और दलित के संबंध यहाँ काफी हद तक बिगड़ चुके थे। सांप्रदायिक शक्तियों ने समाज का अमन-चैन छिन्न-भिन्न कर दिया था और समाज में हिंसक वातावरण फैला रखा था। कथाकार शिवमूर्ति  इसी परिवेश का चित्रण करते हुए अपने 'त्रिशूल' उपन्यास में लिखते हैं -**"कहाँ से शुरू करूँ महमूद की कहानी। वहाँ से जब पुलिस उसे घर से घसीटकर ले जा रही थी.......! चौराहे पर लाठियों से पीट रही थी और मुहल्ले से कोई आदमी बचाने के लिए आगे नहीं आ रहा था। या जब इसी चौराहे पर वे लोग उसकी छाती पर त्रिशूल अड़ाकर मजबूर कर रहे थे -'बोल साले जै सिरी राम।"**[10] उपन्यास का अंत भी बड़े मार्मिक प्रसंग से होता है। दंगे में महमूद का इक्का और घर जल चुका है। घोड़ी जबरन वे लोग उठा ले गए हैं। उसके माता-पिता घर छोड़कर लखनऊ भाग गए हैं। लेखक लिखता है -**"तब किस घर गया होगा महमूद! कहीं नियति को यही तो मंजूर नहीं कि वह किसी न किसी 'काला पहाड़ की शागिर्दी करे?"**[11] उपन्यास का प्रारंभ और अंत यह बताता है कि नब्बे के बाद का भारत किन परिस्थितियों से गुजर रहा था।

### 3.1.6 अफवाहों का मनोविज्ञान

अफवाह लोगों में फैली हुई ऐसी मिथ्या धारणा है, जिसकी आधिकारिक पुष्टि नहीं की जा सकती। इसका प्रयोग गलत सूचना फैलाने या दुष्प्रचार करने के लिए किया जाता है। यह ऐसी मारक शक्ति है जो समाज को छिन्न-भिन्न कर सकती है एवं खून की नदियाँ बहाकर तबाही का कारण बन सकती है। इस संदर्भ में कमल नयन पाण्डेय का मत है -**"अफवाह एक तरह से मन की भड़ास निकालने के लिए किया गया अतर्क्य प्रचार है। अफवाह की पिच तो हो सकती है पर तर्कसंगत**

**नहीं।“**[12] असल में अफवाहों के लिए एक विशेष मनोविज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी मानसिकता के लोग ही अफवाह फैलाने में अपनी खास भूमिका निभाते हैं। ऐसे लोग अपने सामाजिक, राजनीतिक स्वार्थ को पूरा करने के लिए अफवाह का बाज़ार गरम करते हैं और किसी अप्रिय घटना को अंजाम देते हैं। अयोध्या में घटी घटना की प्रतिक्रिया में बांग्लादेश और पाकिस्तान में मंदिरों के तोड़े जाने, हिंदुओं की दुकानें और घर लूटने, जलाने, बच्चों को आग में फेंकने, औरतों से बलात्कार करने की खबरें प्रायः अखबारों की सुर्खियों में आती रहीं। शिवमूर्ति ने अपने उपन्यासों में इन अफवाहों के मनोविज्ञान को समझने-समझाने का भरपूर प्रयास किया है। उन्होंने 'त्रिशूल' उपन्यास में अफवाहों के मनोविज्ञान को एक समाज-वैज्ञानिक की तरह पहचाना है और उसे यथार्थ के धरातल पर चित्रित किया है। 'त्रिशूल' उपन्यास में शास्त्री जी  लेखक के घर से महमूद को भगाने के लिए मुहल्ले के बीस-पच्चीस लोगों को इकट्ठा करके लेखक पर दबाव डालने का प्रयास करते हैं कि वे महमूद को अपने घर से बाहर कर दें। इस पर भी जब बात नहीं बनती तो अपने पोते को उसके ननिहाल भेजकर यह झूठी अफवाह फैलाते हैं कि महमूद ने उनके पोते का अपहरण कर लिया है। यह मामला पुलिस स्टेशन तक जाता है और महमूद को गिरफ्तार किया जाता है। जो गुनाह महमूद ने किया ही नहीं, उसके लिए महमूद को पुलिस की कड़ी मार साहनी पड़ती है। लेखक एक सरकारी मुलाज़िम होने के कारण जहाँ उन्हें सरकारी तंत्र से सहायता मिलनी चाहिए थी, वहाँ सारा प्रशासनिक तंत्र उनके खिलाफ नज़र आता है। महमूद को छुड़ाने के लिए लेखक को कुछ मुसलमान लोगों और मौलवी का सहारा लेना पड़ता है। शास्त्री जी की फैलायी गयी अफवाह काम कर जाती है और महमूद खुद ही लेखक के घर से डर कर चला जाता है। इस संदर्भ में

संजय राय का कथन है -**“सांप्रदायिकता वह व्यवसाय है जिसके लिए मुफीद परिस्थिति होती है अनजानापन, इसी आधारपर अफवाहों के सहारे वह विस्तार पाती है। दोनों संप्रदायों के बीच आवाजाही इसके लिए घातक होती है। ‘त्रिशूल’ उत्तम पुरुष में लिखा गया उपन्यास है, इसलिए घटनाएँ महमूद के साथ घटती हैं, संत्रास लेखक और उसका परिवार भोगता है।”**[13] शास्त्री जी की अफवाह ने केवल महमूद को ही नहीं, बल्कि लेखक के पूरे परिवार को झकझोर कर रख दिया है। लेखक महमूद को जमानत पर छुड़वाने के लिए एक द्वार से दूसरे द्वार पर दौड़ लगाता है। शास्त्री जी की एक अफवाह कितने लोगों को मुश्किल में डाल देती है, यह यहाँ देखा जा सकता है। महमूद, उसके माता-पिता, कथानायक, उसका परिवार सभी इसकी चपेट में आते हैं।

महमूद का भविष्य उज्वल हो सकता था, लेकिन शास्त्री जी जैसे लोगों की मानसिकता के कारण महमूद जैसा संवेदनशील और समझदार युवक का भविष्य ‘काला पहाड़’ के गिरोह की शरण में जाकर नष्ट हो जाता है। महमूद का अपराध यही है कि वह एक मुसलमान है। इसी की वह कीमत देता है। शास्त्री जी द्वारा झूठी अफवाह फैलाने के पीछे उनकी मानसिकता यही है कि वे हिंदू-मुस्लिम के बैर को हवा देकर समाज में वैमनस्य को बढ़ाने का काम करते हैं, जो हमारे समाज के लिए बहुत ही हानिकारक है। यहाँ सवाल आस्तिक और नास्तिक होने का नहीं हैं। ईश्वर या अल्ला को इसमें बाँधा भी नहीं जा सकता। ऐसा कर के उसकी व्याप्ति को कम करके देखना कहा जाएगा।

## 3.2 वर्णवादी व्यवस्था

हिंदू समाज वर्ण एवं जाति के आधार पर विभाजित है। वर्ण-व्यवस्था के अनुसार चार प्रमुख वर्ण हैं -ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। प्रारम्भिक दौर में कर्म के अनुसार जातियों का विभाजन हुआ था, किंतु कालांतर में इसे जन्मानुसार बना दिया गया। इस व्यवस्था के अनुसार सर्वोच्च स्थान पर ब्राहमण और निकृष्ट स्थान पर शूद्रों को रखा गया। सवर्ण समाज शूद्रों के साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार करने लगा। फलस्वरूप जातिगत संघर्ष और वर्ण-विद्वेश से समाज तब से लेकर आज तक प्रभावित रहा है। हमें यह मानना होगा कि जातिवाद भारत के लोकतंत्र का एक अमानवीय, असंवैधानिक और अश्लील सच है और आज भी हमारे देश में धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर दंगे-फसाद होते रहते हैं।

वर्णवादी व्यवस्था का चित्रण लेखक ने अपने **'त्रिशूल'** और **'तर्पण'** उपन्यासों के साथ-साथ **'आखिरी छलांग'** उपन्यास में भी किया है। उच्च जाति के लोगों के मन में यह धारणा बनी हुई है कि निम्न-जाति की बहू-बेटियों पर उनका ही अधिकार है। इस मानसिकता के चलते उच्च जातियों द्वारा आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक हर दृष्टि से निम्न जातियों का शोषण होता है। इन सबके कारण समाज का यह निम्न वर्ग अब अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी हो रहा है। **'तर्पण'** उपन्यास में उच्च जाति अर्थात् ब्राहमण का बेटा चंदर जब निम्न जाति की रजपतिया के साथ बलात्कार का प्रयास करता है और रजपतिया बच निकलती है, तब रजपतिया के पिता पियारे इस बारे में कहते हैं -**"आज से नहीं, होश संभालने के बाद से ही वह देख रहा है कि बड़ी जातियों के लोग उनकी इज्जत पर हाथ डालने में रत्ती भर भी संकोच नहीं करते। बल्कि इसे उनके मान-सम्मान पर चोट करने के**

**लिए हथियार के रूप में इस्तेमाल करते हैं।"[14]**

पियारे का यह कथन एक निम्न जाति के पिता का कथन है, जिसकी बेटियों की इज़्ज़त सुरक्षित नहीं है। ध्यान देने योग्य बात है कि रजपतिया से पहले भी पियारे की बड़ी बेटी को बेआबरू किया गया था। यह सबको मालूम है। यह किसी दबंग, लंपट सवर्ण का क्रिया-कलाप था। तब उसकी बड़ी बेटी ने कुएँ में कूदकर आत्महत्या कर ली थी। सवर्णों के डर के कारण उस जुल्म का कोई प्रतिकार नहीं हुआ था, किन्तु जब वैसी ही घटना पियारे की छोटी बेटी के साथ घटती है तो पियारे की बिरादरी एकजुट होकर अन्याय का प्रतिकार करती है। बलात्कार न होते हुए भी बलात्कार की रिपोर्ट लिखवाई जाती है, ताकि सवर्णों को दलित समाज यह बता दे कि अब उनका और शोषण कदापि सहन नहीं होगा।

**'त्रिशूल'** उपन्यास में भी लेखक वर्णवादी व्यवस्था के घिनौने रूप को प्रस्तुत करता है। लेखक बताता है कि ऊँची जाति के जनार्दन तिवारी यदि छोटी जाति के बाबा को प्रणाम नहीं करते, तो बाबा भी जनार्दन तिवारी को प्रणाम नहीं करता। यह ग्रामीण जातिवादी सोच का यथार्थ है जो बदलना नहीं जानता। **'त्रिशूल'** उपन्यास में वर्णवादी व्यवस्था का एक और स्तर भी देखने को मिलता है, जहाँ दरोगाजी और मिसराजी आपस में भिड़ जाते हैं, क्योंकि मिसराजी ने मुख्यमंत्री को गाली दे दी है। दरोगाजी मुख्यमंत्री की जाति के हैं। इसलिए दरोगाजी चौकीदार से मिसराजी का लगवाया गया पार्टी का झंडा मँगाकर उससे अपना जूता पोछने चल देते हैं। लेखक बताना चाहता है कि इसी वर्णवादी मानसिकता के चलते समाज में सौमनस्य और आपसी सौहार्द का वातावरण निर्मित नहीं हो पा रहा है।

'आखिरी छलांग' उपन्यास में हम देखते हैं कि खेलावन जैसा पिछड़ी जाति का किसान सरकारी नहर विभाग के नुमाइंदों के खिलाफ इसलिए आवाज़ उठाता है, ताकि पूरा गाँव झूठे मुकदमे से बच जाए। असल में नहर विभाग ने पिछले साल नहर की पटरी की न तो मरम्मत करवाई और न ही नहर के तलवे से बालू निकलवाया। झूठे बिल बनाकर कागजी कार्यवाही पूरी करके काम किए बिना ही काम का पैसा हड़प लिया। इस जालसाजी के खिलाफ आवाज उठाने के लिए उस गाँव का दलित खेलावन सामने आता है और गाँववालों को इकट्ठा करने का प्रयास करता है। इस आंदोलन से पूरे गाँव का फायदा हो सकता था, लेकिन उसका साथ देने बस गाँव के पच्चीस-तीस लोग ही सामने आते हैं। गाँव के ठाकुर और बाभन इसलिए खेलावन के साथ नहीं जाते क्योंकि इस जुलूस का आयोजन खेलावन जैसा एक दलित ने किया था। खेलावन पूरे गाँव को बचाना चाहता है, लेकिन हम यहाँ देखते हैं कि वर्णवादी व्यवस्था के कारण उच्च जाति के लोग निम्न जाति के व्यक्ति का नेतृत्व बरदाश्त नहीं कर पाते और वे जुलूस में शामिल नहीं होते। जाति, वर्ण, गोत्र आदि भेदभाव के कारण हमारे समाज का सोच इतना संकुचित हो गया है कि उसे अपना नफा-नुकसान तक समझ में नहीं आता। ऐसे ही अगर आगे भी चलता रहा तो हम वर्णवादी व्यवस्था के कारण कभी उन्नति नहीं कर पाएँगे। समाज में वर्णवादी व्यवस्था का निर्माण किसी समय व्यक्ति के कार्यों को ध्यान में रखकर किया गया था, जो उस समय अनुकूल था, लेकिन आज हमें उस वर्णवादी समाज की आवश्यकता नहीं है। हमारे समाज को अगर आगे बढ़ना है, ऊँचाइयों के शिखर तक पहुँचना है तो हमें वर्णवादी व्यवस्था को छोड़कर ही आगे बढ़ना होगा। जब तक हमारा समाज ऐसा नहीं करेगा, तब तक उसका उत्थान संभव नहीं है। सत्ताधारी और

उच्च जाति के लोग वर्णवादी व्यवस्था को हथियार बनाकर अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए न तो कभी चूके हैं और न कभी चूकेंगे। यही हमारे समाज की वास्तविकता है।

### 3.2.1 ब्राह्मणवादी सोच

भारतीय समाज में जाति के आधार पर ब्राह्मण श्रेष्ठ माने जाते हैं। पूजा-पाठ जैसे पवित्र कार्य का अधिकार उन्हें ही दिया गया है। ब्राह्मण ही क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के यहाँ होने वाले सभी धार्मिक कार्य पुरोहित के रूप में करते हैं। हर बिरादरी के लोग इनका चरण स्पर्श करके और आशीर्वाद प्राप्त करके कृतकृत्य हो जाते हैं। ब्राह्मण भी अपना चरण स्पर्श कराकर और आशीर्वाद देकर अपने को गौरवान्वित महसूस करता है। उसे लगता है कि वही ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है। ब्राह्मणों का यही सोच आज के पढ़े-लिखे और जागरुक समाज में मान्य नहीं है। खासकर दलित जातियाँ ब्राह्मणवादी इस सोच का विरोध करती हैं। कारण यह है कि ब्राह्मणवादी इस सोच से सबसे अधिक शोषण दलितों का ही होता है। शिवमूर्ति ने अपने उपन्यासों में ब्राह्मणवादी इस सोच को उसके पूरे ताम-झाम के साथ प्रस्तुत किया है।

'त्रिशूल' उपन्यास में लेखक बताता है कि जब कथानायक अपने कार्यालय के एक बाबू के यहाँ बेटा पैदा होने पर उसके जन्मोत्सव पर उसके गाँव जाता है, तब देखता है कि गाँव में रहने वाले एक छोटी जाति के बाबा की कुटी पर गाँव के सवर्ण जाने से कतराते हैं। सवर्ण ब्राह्मण बाबा की कुटी पर जाने से इसलिए कतराते हैं, क्योंकि बाबा उन्हें प्रणाम नहीं करता। गाँव के जनार्दन तिवारी कथानायक से कहते हैं -**"बाबा छोटी जाति के हैं। उनके सब चेले भी छोटी जाति के हैं। इसलिए हम लोग**

**कभी जाते नहीं वहाँ। एक ब्राह्मण एक नीची जाति को वह भी अपने गाँव में प्रणाम करे, यह........यह अपनी तो असंभव है।"**[15] यह है ब्राह्मणवादी सोच का तरीका। जनार्दन तिवारी खुद अपने इस सोच के विषय में कहते हैं -**"जैसे ही गाँव छोड़कर शहर जाता हूँ सोच और व्यवहार में उदारता आ जाती है। पर वे दकियानूसी विचार रास्ते में कहीं छिपे इंतज़ार करते रहते हैं। जैसे ही लौटता हूँ, फिर कंधे पर सवार हो जाते है।"**[16] वास्तव में देशकाल और वातावरण का हमारे व्यवहार पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जनार्दन तिवारी के साथ भी यही हुआ है।

### 3.2.2 सवर्णों का घटता प्रभाव

सवर्ण जातियों ने निम्न जाति एवं दलितों का सदियों से शोषण किया है और वे आज भी कर रहे हैं। हमेशा से उच्च जाति निम्न जाति को अपने पैर की जूती समझती आ रही है। जब भी इनकी मर्जी होती, तब गाँव की किसी भी दलित स्त्री का वे शारीरिक शोषण करते। प्रतिकार करने पर उसे या तो पूरे गाँव में बदनाम करते या फिर उसे मार डालते, किन्तु वर्तमान समय में दलितों में आई जागरूकता के कारण सवर्णों का प्रभाव धीरे-धीरे घट रहा है। 'तर्पण' उपन्यास में हम देखते हैं कि धरमू पंडित की पत्नी अपने बेटे चंदर को रजपत्ती के बलात्कार के मामले में बचाने के लिए हर मुमकिन कोशिश करती हैं, ताकि वह जेल जाने से बच जाए। उधर दलित आपस में एकजुट होकर चंदा इकट्ठा करते हैं, जिससे कि धरमू पंडित का बेटा जेल से न छूटने पाए। उनकी एकजुटता की खबर जब धरमू पंडित की पत्नी को लगती है, तब वह अपनी बिरादरी को बहुत कोसती हैं और कहती हैं -**"एक हम लोगों की बिरादरी है कि सब दूर से मजा ले रहे हैं। या इस डर से चुप हैं कि उनके खेत में चमार काम करना न बंद कर दें।"**[17] असल में प्रेमचंद के बाद

भारतीय ग्रामीण समाज में आया यह एक बहुत बड़ा बदलाव है। अब दलित सवर्णों के खेत में काम करने से मना कर सकते हैं। इतनी हिम्मत उनमें अब आ गयी है। दलितों का यही असहयोग सवर्णों को अब असहाय बना रहा है, जो प्रेमचंद के जमाने में नहीं था। संविधान में दलितों को दिये गए प्रावधान के तहत शिवमूर्ति ने सवर्णों के इसी डर को पकड़कर कानून के सहारे एक नया परिवर्तन लाने का प्रयास किया है, जो सवर्णों के घटते प्रभाव को समाज के सामने प्रस्तुत करता है।

धरमू पंडित की पत्नी दलितों में फूट डालने के प्रयास से जब रमझरिया की दादी को तोड़ना चाहती हैं तो वह भी अपना अलग ही तेवर दिखाते हुए कहती है- **"पचास रुपल्ली में धरम लेने चली है। पहले 'वैसे' धरम लेता है बेटा। फिर 'ऐसे' धरम लेती है महतारी। नहीं बेचना हमें अपना धरम।"**[18] अंबेडकरवादी विचारधारा के तहत दलित समाज में जो बदलाव आया है, उसी तेवर को शिवमूर्ति ने यहाँ लाकर यह साबित किया है कि अब हमारे समाज में सवर्णों का प्रभाव घटता जा रहा है, जिसका कारण है - दलितों में आई शिक्षा के कारण जागरूकता।

### 3.2.3 ऊँच-नीच की भावना

भारत को आज़ादी मिले इतने साल बीत गए, फिर भी समाज से ऊँच-नीच की भावना समाप्त नहीं हो सकी। शिवमूर्ति इस भावना को लेकर अपने उपन्यासों में काफी गंभीर हैं और इस समस्या की जड़ में जाकर इसकी जाँच-पड़ताल करते हैं। लेखक के मतानुसार सवर्ण जातियाँ हमेशा इस चिंता में रहती हैं कि शूद्रों का राज आ गया तो वे उन्हें दण्ड-प्रणाम भी करना छोड़ देंगे। 'तर्पण' उपन्यास में धरमू पंडित कहते हैं -**"पैलगी अशीश तक बंद कर दिया सालों ने। बिना कोई तवज्जो दिए**

**मुँह उठाए सामने से चले जाते हैं।"**[19] इस तरह की मानसिकता ऊँच-नीच की भावना के तहत ही पैदा हुई है।

'तर्पण' उपन्यास की कथा उस गाँव को केंद्र में रखकर लिखी गयी है, जहाँ जाति संबंधी ऊँच-नीच की भावना अपने खुले रूप में आज भी विद्यमान है। ऊँची जाति के लोगों के पास खेत हैं, सारी सुविधाएँ हैं, लेकिन छोटी जाति के लोगों की मुट्ठी खाली है। आर्थिक रूप से उनकी स्थिति तो दयनीय है ही, सामाजिक और राजनीतिक रूप से भी उनकी हिस्सेदारी लगभग नगण्य है। ऊँची जाति के लोगों के मन में यह धारणा बनी हुई है कि निम्न जातियों की बहू-बेटियों पर उनका ही हक़ है। इसी के चलते ब्राह्मण पुत्र चंदर एक दलित लड़की रजपतिया के साथ व्यभिचार करना चाहता है। लड़की प्रतिरोध करती है और आसपास की काम करने वाली महिलाओं की मदद से बच जाती है। जब रजपतिया के पिता इसकी उलाहना लेकर चंदर के पिता धरमू पंडित के घर पहुँचते हैं, तब धरमू पंडित की पत्नी पंडिताइन कहती हैं -**"जहाँ गुड़ रहेगा वहाँ चिऊँटा जाबै करेंगे। एक बार चमाइन का राज क्या आया सारे चमार, पासी खोपड़ी पर मूतने लगे। इतनी हिम्मत की लाठी लेकर घर पर ओरहन देने चढ़ आए।"**[20] ध्यातव्य है कि पंडिताइन का यह कथन उनके ब्राह्मण होने का प्रमाण देता है।

### 3.3 दलित अस्मिता

भारतीय सभ्यता और संस्कृति काफी पुरानी है और दलितों का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और मानसिक शोषण भी उतना ही पुराना है, किन्तु जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया, शूद्रों में भी अपने अधिकारों के प्रति समझ आती गयी।

शिक्षा के कारण आयी चेतना से दलित अपनी अस्मिता की रक्षा करने के लिए प्रयास करने लगे। डॉ. अंबेडकर ने दलितों के जीवन को सुधारने हेतु भारत के संविधान में उनके सर्वांगीण विकास के लिए विशेष प्रावधान किया है। फिर भी जमीनी हकीकत यह है कि उनकी स्थिति में बहुत कुछ बदलाव देखने को नहीं मिलता। आज भी दलित समाज को अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। **'तर्पण'** उपन्यास में शिवमूर्ति ने दलितों के इसी संघर्ष और उनकी जागरूकता को सामने लाने का प्रयास किया है। उपन्यास में हरिजन लड़की रजपतिया के साथ धरमू पंडित का पुत्र चंदर जबरदस्ती करने का प्रयास करता है, लेकिन रजपतिया बच निकलती है। इस शरारत भरी छेड़खानी को दलित नेता भाई जी की मदद से बलात्कार का रूप देकर थाने में रिपोर्ट लिखवाने की योजना बनाई जाती है। दलितों की पुरानी पीढ़ी के बीच से यह आवाज़ आती है कि जब बलात्कार हुआ ही नहीं, तो बलात्कार की रिपोर्ट क्यों लिखवाई जाए? इस पर दलित नेता भाई जी का कहना है -**"झूठ नहीं, स्ट्रेटेजी। कलयुग में सिर्फ सच के भरोसे जीत नहीं हो सकती। वे तो हमेशा ही स्ट्रेटेजी के तौर पर झूठ बोलते और जीतते आए हैं। सिर्फ एक झूठ बोलकर कि वे ब्रहमा के मुँह से पैदा हुए हैं और हम पैर से, वे हजार साल से हमसे अपना पैर पुजवाते आ रहे हैं। अब एक झूठ बोलने का हमारा दाँव आया है तो हमारे गले में क्यों अटक रहा है?"**[21] लेखक के कहने का आशय यहाँ यह है कि अब दलितों की लड़ाई स्ट्रेटेजी के तहत लड़ी जा रही है। उनके बीच भाई जी जैसे दलित नेता अब मौजूद हैं, जो उन्हें सही दिशा निर्देश दे रहें हैं।

दलित नेता भाई जी यह भी कहते हैं कि पहले **"वह वर्ग संघर्ष था। रोटी के लिए। यह वर्ण संघर्ष है इज्जत के लिए। इज्ज़त की लड़ाई रोटी की लड़ाई से ज्यादा**

**जरूरी है। इसीलिए इस लड़ाई के लिए सरकार ने हमें अलग से कानून दिया है - हरिजन ऐक्ट! हम इस कानून से इस नाग को नाथेंगे।"**[22] भाई जी के माध्यम से लेखक ने दलितों की इसी अस्मिता को **'तर्पण'** उपन्यास में दिखाया है। इस दिखावट से दलितों का हौसला तो बढ़ेगा ही, साथ ही सवर्ण जातियाँ भी उन पर जुर्म करने से पहले सौ बार सोचेंगी। रजपतिया के पिता पियारे जब अपनी बेटी की छेड़खानी की शिकायत लेकर धरमू पंडित के घर जाते हैं, तब धरमू पंडित की पत्नी अपने बेटे की गलती को स्वीकार न कर उल्टे पियारे को ही डाँटने लगती हैं। उनकी मानसिकता का चित्रण लेखक इन शब्दों में करता है -**"जवान बेटी को बिदा कर देगा तो उसकी कमाई कैसे खाएगा? उतान होकर गली-गली अठिलाती घूमती है। गाँव भर के लड़कों को बरबाद कर रही है। वह तुमको नज़र नहीं आता?"**[23] पंडिताइन के इस कथन को सुनकर पियारे आग-बबूला हो जाता है और गुस्से में पंडिताइन की ही भाषा में जवाब देते हुए कहता है -**"किसी गुमान में मत भूलिए पंडिताइन। अब हम ऊ चमार नहीं हैं कि कान, पूँछ दबाकर सब सह, सुन लेंगे। चिउँटे को गुड़ का मजा लेना महँगा कर देंगे।"**[24] पियारे का यह कथन दलितों में आई जागरूकता को दिखाता है। पियारे के माध्यम से लेखक बताना चाहता है कि अब देहाती दलित पहले जैसे नहीं हैं। वे डँटकर प्रतिपक्ष की भूमिका निभा रहें हैं। '**तर्पण**' उपन्यास के अंत में जब चंदर पर पियारे का बेटा मुन्ना पीछे से छिपकर वार करता है और चंदर गिरकर बेहोश हो जाता है, तब पुलिस की तहक़ीक़ात में बेटे के जुर्म का इल्जाम पियारे खुद ले लेते हैं। वे कहते हैं **-"नहीं वकील साहब। मुझे जेल जाना है। जेल की रोटी खाकर पराश्चित करना है। इस पाप का पराश्चित कि कान-पूँछ दबाकर इतने दिनों तक उन लोगों का ज़ोर-जुल्म सहता रह गया।"**[25] आज दलितों की स्थिति यह

है कि वे इस बात से दुखी हैं कि उन्होंने इतने दिनों तक जोर-जुर्म क्यों सहा? पियारे के जेल जाते समय का चित्रण करते हुए लेखक लिखता है -**"उसे लगता है जैसे पुरखों का 'तर्पण' करने के लिए 'गया जगन्नाथ जी' जा रहा है।"**[26] 'गया-जगन्नाथजी' जाने की बात कहकर पियारे यह बताना चाहता है कि उसके पूर्वजों को उसके इस निर्णय से आत्मिक शांति मिलेगी। इस प्रकार लेखक ने '**तर्पण'** उपन्यास में दलित अस्मिता को बताने की कोशिश की है।

### 3.3.1 दलित चेतना एवं वर्ग संघर्ष

भारतीय समाज में सवर्णों ने हमेशा धर्म, शिक्षा, राजनीति, साहित्य और संस्कृति पर अपना वर्चस्व बनाए रखा, ताकि वे निम्न तबके के दलित वर्ग का शारीरिक एवं मानसिक शोषण कर सकें। शिक्षा के माध्यम से धीरे-धीरे दलित समाज में जागरूकता आई है और उनमें जागी चेतना के कारण वे अपने अधिकारों के प्रति सजग भी हुए हैं। शिवमूर्ति का **'तर्पण'** उपन्यास दलित समाज में आई चेतना का एक जीवंत दस्तावेज़ है। गाँव के एक दलित पियारे की छोटी बेटी रजपतिया के साथ गाँव के धरमू पंडित का बेटा बलात्कार करने की कोशिश करता है। रजपतिया की गुहार सुनकर पास के खेतों में काम करनेवाली अन्य दलित स्त्रियाँ दौड़कर उसकी मदद के लिए आती हैं और रजपतिया को बचाने में सफल होती हैं। यही घटना अपने पूरे विस्तार में इस उपन्यास का कथानक बनता है। दलितों का नेतृत्व करने वाले भाई जी इस घटना को सचमुच का बलात्कार कहलवाकर, झूठी रिपोर्ट दर्ज करवाकर चंदर को जेल भिजवाता है। यहाँ दलित वर्ग के लोग संवैधानिक प्रावधानों तथा अंबेडकरवादी विचारधारा को ढाल एवं हथियार बनाकर झूठे मुकदमे में चंदर पंडित को फंसा देते हैं, किन्तु दलित वर्ग की यह रणनीति यहाँ काम नहीं आती।

अदालती दाँव-पेचों से आखिरकार चंदर दो महीने बाद जेल से छूट जाता है। जेल से छूटने के बाद वह दलित नेता भाई जी को सबक सिखाना चाहता है। बंदूक लेकर वह भाई जी को जान से मारने का प्रयास करता है, किन्तु रजपतिया के भाई मुन्ना के डंडे की मार से वह  लहूलुहान होकर बेसुध हो जाता है। इस घटना का मुकदमा दर्ज होता है और असली अभियुक्त की तलाश शुरू होती है। मुन्ना को बचाने के लिए मुन्ना के पिता पियारे इस अपराध को स्वीकार कर स्वयं को पुलिस के हवाले कर देते हैं। बिरादरी वाले और वकील साहब पियारे को समझाते हैं कि जज के सामने वह कहे कि उसे कुछ नहीं मालूम। उसे फर्जी फँसाया गया है, या कम से कम यह कहे कि उसने आत्मरक्षा में चंदर पर वार किया, लेकिन पियारे कहते हैं -**"नहीं वकील साहब मुझे जेल जाना है। जेल की रोटी खाकर पराश्चित करना है। इस पाप का पराश्चित कि कान-पूँछ दबाकर इतने दिनों तक उन लोगों का ज़ोर-जुल्म सहता रह गया।"**[27] यही दलित चेतना है, जिसे लेखक बताना चाहता है।

शिवमूर्ति का **'तर्पण'** उपन्यास सवर्ण और दलित के बीच शह और मात को दर्शाता है। धरमू पंडित यह लड़ाई अकेले शुरू करते हैं, बाद में चलकर धर्म के नाम पर और गाँव के पुरोहित होने के कारण थोड़े ना-नुकर के बाद गाँव का ठकुरान टोला भी साथ हो जाता है। धरमू पंडित के द्वारा धर्म की दुहाई दी जाती  है। परिणामस्वरूप ठाकुर नत्थू सिंह सी.ओ. से धरमू पंडित का परिचय कराते हुए कहते हैं -**"धर्मदत्त जी। हम सबके पुरोहित। हमारे पड़बाबा ने इनके बाबा को विंध्याचल से लाकर बसाया था। आजकल गाँव के चमारों के मारे परेशान हैं। उसी में आपसे मदद माँगने आए हैं हम लोग। वही मामला जिसमें आप उस दिन तफतीश में गए थे।"**[28] यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि आज भी धर्म के नाम पर तमाम आपसी विरोध के

बावजूद सवर्ण जातियाँ संगठित हो जाती हैं और तमाम जागरूकता के बाद भी भूख और गरीबी से दलित समाज बिखर जाता है। वह शोषक जातियों का पिट्ठू बनने के लिए विवश है।

### 3.3.2 पुरानी परंपरा एवं नई चेतना का संघर्ष

पुरानी परम्पराओं को मानने वाले और नयी पीढ़ी की चेतना के संघर्ष को शिवमूर्ति ने अपने उपन्यास साहित्य में चित्रित किया है। **'तर्पण'** उपन्यास में लेखक पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के बीच के वैचारिक टकराव को दिखाते हुए कहता है कि पुरानी पीढ़ी के पियारे जैसे लोग जहाँ उच्च जाति के द्वारा किये गये शोषण और अपमान को सह लेते हैं, वहीं नयी पीढ़ी स्ट्रेटेजी के साथ उच्च जातियों द्वारा किये गये शोषण का विरोध करती है। पुरानी पीढ़ी के पियारे बेटी रजपतिया की छेड़छाड़ की घटना को बहुत तूल नहीं देते, लेकिन नयी पीढ़ी के लोग मात्र छेड़खानी को एक बड़ी घटना, बलात्कार का रूप देकर किसी भी तरह से आर्थिक परेशानियों को झेलते हुए दोषी को सज़ा दिलाने में कामयाब होते हैं। इस संदर्भ में जब पियारे झूठ का सहारा न लेते हुए नयी पीढ़ी के दलित नेता भाई जी से कहते हैं -**"झूठ के पैर पुआल के होते हैं। चार कदम चलकर 'घसघसा' कर बैठ जाना होगा।"**[29] पियारे के इस तर्क को काटते हुए भाई जी कहते हैं -**"एक और बेटी भी तो थी आपके। उसका सत्यानाश भी तो इन्हीं नागों ने किया था। कुएँ में कूद गयी। क्या कर पाये आप? यह लड़ाई उसके साथ हुए अन्याय के खिलाफ भी है। इस तरह इसमें कुछ भी झूठ नहीं है। नहीं खड़े हुए तो क्या पता कल इसे भी कुएँ में कूदना पड़े।"**[30] यह पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के बीच सोच और मानसिकता के टकराव का अंतर है। पुरानी पीढ़ी इस तरह के मामलों में जहाँ अपनी इज्जत को बचाती हुई बेपरदा नहीं करना

चाहती, वहीं नयी पीढ़ी कानून का सहारा लेकर दोषी को सजा दिलाने के पक्ष में रहती है।

**'तर्पण'** उपन्यास में ही पियारे का बेटा 'मुन्ना' धरमू पंडित के बेटे चंदर पर जो वार करता है और उसकी नाक तक काट लेता है, यह पुरानी पीढ़ी के वश का नहीं था। इस घटना के बाद पियारे पछताता भी है कि जो काम उसे करना चाहिए था, उसे उसके बेटे मुन्ना ने किया। इसी पश्चाताप के चलते अपनी गलती को मानते हुए पियारे मुन्ना का जुर्म अपने सिर पर ले लेता है। वह कहता है -**"नहीं वकील साहब। सही है कि मैं ने नहीं मारा, लेकिन यह भी सही है कि मन ही मन जाने कितनी बार मारा है। बोटी-बोटी काट डाला है। और आज जब 'जस' लेने का मौका आया है तो कहते हैं, इनकार कर दूँ।"**[31] इस उद्धरण में पियारे की नयी चेतना उजागर हुई है। उसके भीतर हमेशा से पुराने और नए विचारों में टकराहट होती रही है और इस स्तर पर आकर वह पूरी तरह से पुरानी मान्यताओं से मुक्त हो गया है।

### 3.3.3 दलित स्त्री की समस्या

मानव जीवन निरंतर विकसित होता हुआ आगे बढ़ रहा है। इसमें विकास और समस्या दोनों साथ-साथ चल रहे हैं। संविधान के तहत कानूनी तौर पर स्त्रियों को सशक्त बनाने का प्रयास किया गया है, किंतु आज भी हमारे समाज में स्त्री, पुरुष के समकक्ष नहीं खड़ी हो पायी है। स्त्री विमर्श, स्त्री की त्रासदी, उनसे जुडी समस्याओं का चित्रण अनेक साहित्यकारों ने किया है। इसमें स्त्री और पुरुष दोनों तरह के साहित्यकार हैं। जहाँ तक शिवमूर्ति के उपन्यासों में दलित स्त्रियों का चित्रण

देखने को मिलता है, वह दूसरे साहित्यकारों से भिन्न है। शिवमूर्ति के यहाँ दलित स्त्रियों की समस्या उनके यौन शोषण को लेकर है। ऊँची जाति के लोग दलित परिवार की बहू-बेटियों पर अपना अधिकार समझते हैं और जब दलित इसके खिलाफ कानूनी लड़ाई लड़ते हैं, तब इन दलितों की क़ानूनी लड़ाई को दलित स्त्रियाँ ही कमजोर कर देती हैं और अपराधी किसी न किसी रूप में जेल से छूटने में कामयाब हो जाते हैं। जब धरमू पंडित का वकील कहता है कि जेल से बेटे को छुड़ाना है तो दो एक चमाइनों को फोड़ना होगा। उन्हीं की गवाही मान्य होगी। ऐसी स्थिति में पंडिताइन हलवाहिन को बुलाकर कहती हैं -**"अब चंदर को छुड़ाना तेरे हाथ में है। हलवाहिन बात समझकर बेटे-पतोहू से अलग रहनेवाली रमझरिया की दादी को समझा बुझा कर लाती है।"**[32] दलित स्त्री की इसी करतूत से पूरा मामला पलट जाता है और चंदर मुचलके पर जेल से रिहा हो जाता है।

'तर्पण' उपन्यास में पियारे की बड़ी बेटी भी सवर्णों के यौन शोषण का शिकार होती है और कुँए में कूदकर आत्महत्या कर लेती हैं। पियारे सब कुछ जान-समझकर भी चुप बैठा रह जाता है। दूसरी घटना पुनः उसकी दूसरी बेटी रजपतिया के साथ होती है, जिसका वह डँटकर सामना करता है और अपराधी को सजा दिलाने में कुछ हद तक सफल भी होता है, किंतु यह लड़ाई इतनी जल्दी समाप्त होने वाली नहीं है। एक तरफ दलितों की जरुरतें और उनकी गरीबी है, तो दूसरी तरफ वर्चस्ववादी शक्तियों का दबदबा और प्रभाव है। इसी के बीच दलित स्त्रियाँ पिसी जाती हैं।

### 3.4 किसान जीवन की समस्या

सच तो यह है कि हमारे देश में सबसे महत्वपूर्ण स्थान किसान का है। वह किसान ही है जो तेज वर्षा और कड़कती धूप को बरदाश्त करके सम्पूर्ण मानव जाति के लिए अन्न पैदा करता है, किन्तु वर्तमान समय में हम यह देखते हैं कि किसानों को कृषि से संबन्धित कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनके पास ठीक से न बीज की व्यवस्था होती है, न खाद की और न पानी की ही। सिर्फ उनके पास अपना थोड़ा सा खेत होता है। उसी को गिरवी रखकर कभी-कभी वे बैंक से या अन्य वित्तीय संस्थाओं से कर्ज लेते हैं और वह कर्ज चुकता न होने पर उनकी अपनी जमीन भी चली जाती है। और यदि कहीं ऐसे किसान को बेटे की पढ़ाई और बेटी की शादी करनी है तो समस्या भयंकर रूप ले लेती है। यही आज के किसान का सच है।

#### 3.4.1. महँगी शिक्षा

हर कोई अपने बच्चों को पढ़ाना चाहता है। गरीब व्यक्ति भी अपने बच्चों को किसी तरह उच्च शिक्षा देकर एक सरकारी नौकरी प्राप्त कराने की मंशा रखता है, ताकि उसकी आनेवाली पीढ़ी को आर्थिक तंगी का सामना न करना पड़े। शिवमूर्ति के उपन्यास 'आखिरी छलांग' के पहलवान को पता है कि बेटे की इंजीनियरिंग की पढ़ाई केवल खेती-बाड़ी की आमदनी से मुमकिन नहीं है। आज के दौर में शिक्षा बहुत महँगी हो गयी है। पहले की शिक्षा और वर्तमान शिक्षा पद्धति में काफी अंतर है। यह इस उद्धरण से पूर्णरूपेण समझा जा सकता है-**"पहले सिर्फ पैसे के बल पर भर्ती होने वाले लड़कों से ज्यादा फीस लेने का रिवाज था। अब तो सब धान बाइस पसेरी हो गया है।"**[33] पहलवान को पहले यह पता नहीं था कि बेटे की पढ़ाई अधिक

खर्चीली होगी। एक किसान को डीजल, बिजली, खाद, पानी आदि का खर्चा दिन-ब-दिन बढ़ता जाता है, उसमें बेटियों के दहेज की चिंता, इन सभी समस्याओं के कारण किसान का जीवन मकड़जाल में उलझ जाता है, जिससे बाहर आने की कोशिश में वह और भी उलझ जाता है। वर्तमान समय में शिक्षा का रूप बहुत ऊँचा उठ गया है और इसके साथ उससे जुड़े खर्चे भी ऊपर उठ रहे हैं। सरकार तरह-तरह की योजनाएँ तो बनाती है, लेकिन यदि इस पर गौर किया जाए तो ये योजनाएँ गरीबों से ज्यादा सरकार के लिए फायदेमंद होती हैं।

'आखिरी छलांग' उपन्यास में किसान एक पहलवान है। उसका हर तरह से शोषण हो रहा है। पहलवान को बेटे की इंजीनियरिंग की फीस व कर्ज का दुख लगातार सताता रहता है। लेखक पहलवान की समस्या के बारे में लिखता है-**"पिछले साल तो किसी तरह बेटे की इंजीनियरिंग की फीस भर दी गई। इस साल कोई रास्ता नहीं दिखता। तीन साल हो गए गन्ने का बकाया अभी तक नहीं मिला।"**[34] एक तरफ महँगी शिक्षा है और दूसरी तरफ तीन साल से गन्ने का बकाया है। यही किसान की विवशता है।

### 3.4.2 दहेज की समस्या

दहेज की समस्या ने हमारे समाज को बुरी तरह से त्रस्त कर दिया है। शैक्षणिक चेतना के पश्चात् भी हम देखते हैं कि पढे-लिखे लोग दहेज प्रथा का समर्थन करते हैं। परिणामस्वरूप इस प्रथा के चलते गरीब माता-पिता अपनी बेटी के विवाह में ज्यादा दहेज देने के चक्कर में ऋण लेते हैं या फिर अपनी बेटियों को अधेड़ आयु के व्यक्ति के साथ ब्याह देते हैं। दहेज प्रथा कोई रिवाज नहीं, कुरीति बन गई है। आज दहेज प्रथा ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। हम देखते हैं

कि दहेज के कारण लड़कियों का जन्म अमंगलकारी माना जाता है, लोग नवजात लड़की की हत्या कर देते है, या फिर भ्रूण हत्या कर देते हैं। यह सब इसलिए होता है, ताकि उन्हें लड़की की शादी में दहेज न देना पड़े।

**'आखिरी छलांग'** उपन्यास में हम देखते हैं कि पहलवान अपनी पहली बेटी की शादी में दहेज देने के लिए कर्ज ले चुका है, जिसे वह चुका नहीं पाया है। अब उसे अपनी दूसरी बेटी का विवाह करना है, जिसके लिए वह लड़का देखने जाता है। उपन्यास में बेटी के विवाह के लिए लड़का देखने का प्रसंग लंबा है। जब झुन्नू बाबू के घर लड़का देखने के लिए पहलवान जाता है, तब वह अनुभव करता है कि झुन्नू बाबू और उनकी पत्नी दहेज ऐंठने वालों में से हैं। वे अपने बेटे के लिए दहेज में एक लाख रुपए नकद और मोटर साइकिल की माँग करते हैं, जिसे सुनकर पहलवान के होश उड़ जाते हैं। यह देखकर लड़के का मामा लड़के वालों की माँग को जायज ठहराते हुए कहता है **-"आजकल तो सड़े-गले बहेल्ला लड़कों का तिलक भी इक्यावन हजार से शुरू हो रहा है भइया। मोटर साइकिल के बिना तो बात ही आगे नहीं बढ़ती।"**[35] लडके के मामा के इस कथन से साफ जाहिर है कि झुन्नू बाबू ने पक्का इरादा कर लिया है कि वे अपने बेटे को दहेज में मोटर साइकिल जरूर दिलाएँगे। दुखद यह है कि खुद झुन्नू बाबू ने अपनी बेटी को अधेड़ उम्र के व्यक्ति से ब्याह दिया है और मुश्किल से इक्कीस हजार का दहेज दिया है। यह हमारे समाज का दो मुँहापन है, जिसे लेखक झुन्नू बाबू के माध्यम से व्यक्त करता है। झुन्नू बाबू जैसे लोग ही हमारे समाज को दहेज़ के जहर में डुबोए हुए हैं।

**'आखिरी छलांग'** उपन्यास में यह भी देखने को मिलता है कि पहलवान को यह समझाने का प्रयास किया जाता है कि वह इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने वाले

अपने बीस साल के बेटे की शादी करे और उसमें दहेज की मांग करे, ताकि वह उस धनराशि को अपनी बेटी की शादी में दे दे। यह प्रस्ताव लेकर झुन्नू बाबू के साले के साथ खुद पहलवान के साले साहब उनके एक परिचित रेलवे में काम करने वाले मालबाबू को लेकर आते हैं, जो काफी मालदार हैं और अपनी इकलौती बेटी के लिए उपयुक्त वर की तलाश में हैं। पहलवान ऐसा व्यक्ति है जो अपने आस-पास के इलाके में काफी विख्यात है, जिसके कारण मालबाबू हर तरह से पहलवान को बेटे की शादी के लिए मनाने की कोशिश करते हैं।

असल में दहेज का मामला बहुत जटिल है। यह समाज की ऐसी कुरीति है, जिसके कारण और अनेक समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। स्थिति यह है कि लड़की के गुण और स्वभाव को नहीं देखा जाता, दहेज़ को देखा जाता है। लड़की की कीमत इससे तय होती है कि अपनी ससुराल में वह कितना दहेज लाई है। किसी जमाने में दहेज़ स्वेच्छा से दिया जाता था, किंतु आज मजबूरी बन गया है। इस मजबूरी ने हमारे देश में लड़कियों की पैदाइश पर रोक लगा रखी है और लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या घटती जा रही है। इस तरह का असंतुलन अन्य समस्याओं को जन्म दे रहा है। हमारे देश में कई ऐसे राज्य हैं, जहाँ आज लड़कियों की पैदाइश में कमी आई है और कुछ लोग इसका फायदा उठाकर लड़कियों का अपहरण कर उन्हें बेच रहे हैं। इस स्थिति से लड़कियों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। 'आखिरी छलांग' उपन्यास में बेटी के विवाह के लिए लड़का देखने का प्रसंग काफी विस्तृत और महत्वपूर्ण है। एक सामान्य किसान इस समस्या से जूझ रहा है। और तो और लड़के की माँ के बोल भी स्त्री विरोधी हैं। यह समस्या बड़ी गंभीर है और समाज इसी दिशा में चला जा रहा है।

### 3.4.3 सरकारी कर्ज और उसकी वास्तविकता

भूमंडलीकृत बाज़ार का सीधा असर खेती-बाड़ी पर पड़ रहा है। विकास के नाम पर किसान को कर्ज दिया जाता है। ऐसा नहीं है कि किसान ने कभी कर्ज न लिया हो। भूमंडलीकरण से पहले किसान गाँव के जमींदार, साहूकार, महाजन आदि से कर्ज लेता था, जिसे लौटाने में वह हमेशा असमर्थ रहता था। अक्सर साहूकार या महाजन कर्जदार के कर्ज न लौटाने पर उसकी जमीन या फिर उसके गाय-बैल हड़प लेता था। शिवमूर्ति के उपन्यास 'आखिरी छलांग' में उपन्यास का नायक पहलवान बताता है कि बाप-दादा के जमाने से किसान कर्ज के सहारे ही जी रहा है। अपने पिता द्वारा सुनी हुई बात की चर्चा करते हुए पहलवान कहता है **-"पचास-साठ साल पहले की घटना कि एक बार बाबा आँगन के ओसारे में बैठकर दोपहर का भोजन कर रहे थे तो दादी के मना करते-करते पिता के छोटे भाई ने अंदर आकर बताया कि मालगुजारी वसूलने वाले आए हैं। सुनकर बाबा के हाथ का कौर छूटकर थाली में गिर गया। बाबा से आगे खाया नहीं गया। वे उठ गए। मुँह धोया और वहीं ओसारे में पड़ी चारपाई पर पड़ गए।"**[36] इस कथन से जाहिर होता है कि कर्जदार किसानों को अपने घर पर मालगुजारी वसूलनेवालों को आते देख मुँह से उनका निवाला तक छूट जाता है। कर्ज देनेवाला साहूकार या महाजन या कोई और कर्ज न चुकने के एवज में किसान की जमीन जब्त कर लेता है, जिससे उसकी स्थिति बद से बदत्तर हो जाती है। भूमंडलीकरण के दौर में सर्व शक्तिमान और अदृश्य कंपनियाँ एवं बैंक कर्ज देने के मोहक जाल को फैलाते हैं और किसान को बेहतर जीवन देने का स्वप्न दिखाकर उन्हें इतना असहाय बना देते हैं कि किसान के पास आत्महत्या के सिवा कोई और विकल्प शेष नहीं बचता।

'आखिरी छलांग' उपन्यास में लेखक लिखता है, महज बत्तीस सौ रुपये के कर्ज में डूबे हुए पहलवान को सरकारी अमीन बीच बाज़ार में  भीड़ के सामने केवल इसलिए बेइज़्ज़त करता है क्योंकि वह कर्ज चुकाने में असमर्थ है। बेटे की शिक्षा, बेटियों की शादी, खेतों में खाद-बीज के लिए लगने वाला रुपया आदि वह खेती-बाडी से जुटा नहीं पाता है, जिसके कारण उसे कर्ज लेना पड़ता है। प्रकृति व आपदाएँ भी कम धोखा नहीं देतीं किसान को। असमय बारिश और सूखा किसानों के जीवन को दूभर बना देते हैं। खेती की कमाई से खेती का ही खर्च निकलना किसान के लिए मुश्किल होता है, फिर वह घर की अन्य जरूरतें कैसे पूरी कर सकता है।

सरकारी कर्ज की वास्तविकता यह है कि कर्ज न चुकाने पर किसान को तो जलील किया जाता है, लेकिन बड़े-बड़े उध्योगपति जिनकी प्राइवेट लिमिटेड कंपनियाँ हैं, उनके पीछे कोई नहीं पड़ता। इसका कारण है चुनाव के समय उद्योगपतियों द्वारा पार्टियों को दिया जाने वाला धन। उपन्यास का एक अन्य किसान खेलावन पहलवान से बड़ी-बड़ी कंपनियों के बारे में कहता है **-"उनका कानून बनाने में आला दर्जे का दिमाग लगा है। वे लिमिटेड कंपनी बनाते हैं। करोड़ों नहीं, अरबों का लोन लेते हैं। सब्सिडी लेते हैं। फिर भी अगर उनकी कंपनी 'सिंक' हो जाए अर्थात् डूबने लगे तो उसकी सेहत सुधारने के लिए बी आई एफ है, डिफ़रमेंट है।"**[37] ध्यातव्य है कि बत्तीस सौ रुपए के कर्ज के लिए पहलवान जैसे साधारण व इज्ज़तदार किसान को भरे बाज़ार में बेइज़्ज़त किया जाता है और बड़ी-बड़ी कंपनियों द्वारा लिए गए कर्ज के बदले कंपनी के डायरेक्टर को जिम्मेदार न मानकर उसे एक 'सिक यूनिट' अर्थात् बीमार कंपनी मानकर उसका कर्ज माफ कर दिया जाता है। यह आज के सरकारी कर्ज की वास्तविकता है।

सरकारी कर्ज की वास्तविकता को रेखांकित करते हुए कथाकार शिवमूर्ति 'आखिरी छलांग' में लिखते हैं **-"कभी-कभी पहलवान सोचते हैं कि काश उन्हें सही समय पर किसी ने आगाह कर दिया होता कि खेतीबारी से पेट भरने का आसरा छोड़कर पढ़ाई-लिखाई का भरोसा करें। मामूली चपरासी की जिंदगी भी औसत किसान की जिंदगी से बेहतर होती है - यह तब पता चल गया होता तो मिडिल, हाईस्कूल, इंटर्मीडियट तीनों में प्रथम श्रेणी में पास करने के बावजूद वे इस खानदानी दलदल में क्यों फंसते?"**[38] उद्धरण में स्पष्ट संकेत है कि पहलवान पढ़ा-लिखा है, प्रथम श्रेणी में इंटर्मीडियट की परीक्षा पास कर चुका है, फिर भी वह दुखी है। दुखी इस बात के लिए कि वह बाप-दादाओं द्वारा की जानेवाली खेती के पेशे में क्यों आया? वह खानदानी दलदल में क्यों फँसा? उससे बेहतर जिंदगी तो एक सामान्य चपरासी की है। कम से कम बेटी की शादी, बेटे की पढ़ाई में उसके गले का काँटा न बनती, जो न तो निगलते बन रहा है और न उगलते। लेखक पहलवान के माध्यम से कहना चाहता है कि यदि यही सोच और भी किसानों का हो गया तो वह दिन दूर नहीं, जब कोई भी किसानी के क्षेत्र में अपना कदम आगे नहीं बढ़ाएगा।

### 3.4.4 भूमंडलीकरण के दौर में किसान

उन्नीस सौ नब्बे तथा उसके बाद के दशकों में भूमंडलीकरण का दौर शुरू हुआ। भूमंडलीकरण के दौर ने सम्पूर्ण जन-जीवन को प्रभावित किया और इसमें बड़े-बड़े दावे किए गए कि भूमंडल में बोली-बानी, खान-पान, पहनावा-ओढ़ावा आदि एक जैसा होगा। पूरी दुनिया में एकता कायम होगी और खुशहाली का वातावरण चारों ओर फैल जाएगा, किन्तु यह एक छलावा था। 'लूटो नहीं तो लूट लिए जाओगे' यह नारा जीवन मूल्य बनकर सामने आया। पूँजीवादी शक्तियों के मायाजाल में भारत के

गाँव तथा शहर पूरी तरह फँस गए और भारतीय समाज उपभोक्तावादी सभ्यता का दंश झेलने को मजबूर हो गया। भूमंडलीकरण के संदर्भ में अरुण ह्रोता कहते हैं - **"भारत के संदर्भ में देखें तो एक ओर 'मॉल कल्चर' का विकास हुआ तो दूसरी ओर जीवन की आधारभूत सामग्री से वंचित आमजन अभिशप्त जीवन व्यतीत करने को विवश हुआ।"**[39] दरअसल भूमंडलीकरण के दौर में सबसे ज्यादा हानि किसान वर्ग की हुई है। देखा जाता है कि सरकार की तरफ से भी किसानों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया, जिसका फायदा पूँजीवादी ताक़तों ने उठाया। किसान अपनी फसल का मूल्य निश्चित नहीं करता। किसान की फसल का मूल्य बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ निश्चित करती हैं, जिसकी वजह से किसान हमेशा छले जाते हैं और बिचौलिये अधिक से अधिक मुनाफा कमाकर मालामाल होते हैं।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया निश्चित रूप से पूरी दुनिया पर अपना प्रभाव डाल रही है और कई मायने में इसके सकारात्मक पक्ष भी हम देखते हैं, किंतु इससे किसानों की आँखों के सपने उनकी आँखों में ही रह जाते हैं। यहाँ एक तथ्य यह भी विचारणीय है कि उन्नीस सौ नब्बे के उदारवाद से पूर्व भी किसानों की दशा शोचनीय ही थी। वास्तव में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने अर्थ व्यवस्था में असंतुलन पैदा कर दिया है, कृषि क्षेत्र की उपेक्षा की जा रही है। जिस भूमि पर खेती की जाती थी, उदारवाद के बाद वह उद्योगों के लिए इस्तेमाल की जाने लगी। शिवमूर्ति का 'आखिरी छलांग' उपन्यास किसान आत्महत्या की समस्या को उजागर करता है। उदारवाद से पूर्व और उदारवाद के बाद उसकी स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। शिवमूर्ति का किसान पहलवान है जो हर समस्या से जूझने का साहस रखता है।

उपन्यास का शीर्षक 'आखिरी छलांग' किसान की जिजीविषा अर्थात् उसके जीने की ललक का प्रमाण है। वह हारता नहीं।

### 3.5 पशु एवं प्रकृति चित्रण

एक सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य का जीवन उसकी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रकृति एवं अन्य जीवों पर निर्भर रहता है। मनुष्य की सोचने-विचारने की शक्ति ने उसे यह बल दिया है कि वह किस तरह से पशु एवं प्रकृति का उपयोग अपने दैनंदिन जीवन में करे। लेखक की भी यही स्थिति है। वह भी अपने अनुभवों को कलमबद्ध करता है। जहाँ उसका बचपन व्यतीत होता है, या जहाँ वह बाद में रहता है, उस जगह के पशु एवं प्राकृतिक छटा को वह अपने साहित्य में उतारता चला जाता है। मनुष्य के विकास में पशु एवं प्रकृति का हमेशा से विशेष योगदान रहा है, विशेषकर ग्रामीण जीवन में। पर्वत, पेड़-पौधे, नदी-नाले, पशु-पक्षी आदि मानव जीवन के अटूट अंग हैं। मनुष्य के संपूर्ण जीवन को उसके आस-पास का पर्यावरण उसे प्रभावित करता है, जिस कारण उसके मन में पशु एवं प्रकृति के प्रति प्रेम पनपता है। पशु एवं प्रकृति के प्रति यह प्रेम कभी-कभी इतना गहरा हो जाता है कि उसके अपने सगे-संबंधी भी उतने प्रिय और अपने नहीं लगते।

लेखक शिवमूर्ति के पास उनके अनुभव के रूप में उनके गाँव का जीवन, प्राकृतिक दृश्यों एवं पशु-पक्षियों का साथ सदैव रहा है। उनके उपन्यासों में गाँव के तालाब-पोखरे, नदी-नाले, पशु आदि का वर्णन सहज मिलता है। पशु जगत एवं प्रकृति का चित्रण अपनी रचनाओं में जिस प्रकार शिवमूर्ति ने किया है, वह उन्हें अपने समकालीन रचनाकारों से अलग एवं विशिष्ट बनाता है। किसान परिवार से

संबंधित होने के कारण शिवमूर्ति के साहित्य में गाय, बैल, बकरी, कुत्ता आदि पालतू पशुओं से उनका आत्मीय लगाव देखने को मिलता है। शिवमूर्ति के 'आखिरी छलांग' उपन्यास में हम देखते हैं कि उपन्यास का प्रारम्भ ही बैलों और गायों को सानी-पानी देने से होता है। लेखक 'आखिरी छलांग' उपन्यास में पहलवान के कथन के माध्यम से लिखता है -**"सबर करो। उन्होंने बैलों की तरफ देखते हुए कहा।"**[40] एक किसान के लिए उसके गाय, बैल, भैंस, बकरी आदि परिवार के सदस्य की तरह होते हैं। किसान को उनकी भूख-प्यास, रख-रखाव की चिंता लगी रहती है। यहाँ तक कि वे उनसे बात भी करते नज़र आते हैं। ये पशु किसान के धन हैं, जिन्हें वे दुलारते हैं और उनके जन्म एवं मृत्यु पर हर्ष और शोक मनाते हैं। यही कारण है कि उनके साथ उनका आत्मीय संबंध बन जाता है। **त्रिशूल'** उपन्यास में भी हम देखते हैं कि कथा नायक पाल साहब जब नौकरी से स्थानांतरित होकर नये मुहल्ले में आते हैं, तब एक ट्रक में उनका सारा सामान आता है और दूसरे ट्रक में उनकी पाली हुई गाय आती है। हिन्दू धर्म में गाय अत्यंत पूजनीय होती है। यदि कोई गाय पालता है तो उसे सीधा-सादा, नेकदिल  समझा जाता है। यह इस कथन से समझा जा सकता है - **"गाय देखकर ही फैसला सुना दिया पड़ोस की महिलाओं ने, "कोई भला आदमी आया है। खुद भी देखने में गाय-जैसा ही सीधा।"**[41] अपने घर में गाय रखना मनुष्य के सीधापन की निशानी है। लोग यह भूल जाते हैं कि गाय दूध भी देती है, जो बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी के लिए स्वास्थवर्धक है।

### 3.5.1 पशुओं का स्वभाव

शिवमूर्ति के साहित्य में पशु मानवीय मूल्यों के सूचक के रूप में दिखाई देते हैं। **'त्रिशूल'** उपन्यास में कथा नायक पाल साहब के घर का कुत्ता झबुआ की उनके

पड़ोसी शास्त्री जी से बिलकुल नहीं पटती। संभवतः यह झबुआ शास्त्री जी के स्वभाव को भली-भाँति जान गया है। यह इस उद्धरण से पता चलता है **-"पता नहीं क्यों, झबुआ की शास्त्री जी से बिलकुल नहीं पटती। वे गेट के बाहर खड़े होते हैं तभी वह सूँघ लेता है। भूँकने लगता है। खुला हो तब तो लगता है ऊपर ही चढ़ बैठेगा। उसके बँध जाने के बाद ही वे अंदर आते हैं।"**[42] कुत्ता अपने मालिक के प्रति बेहद वफादार होता है, यह बात हर कोई जानता है। शास्त्री जी को अपने दरवाजे पर पाकर पाल साहब ज्यादा प्रसन्न नहीं रहते। शायद, इसी वास्तविकता को झबुआ समझ रहा है और वह भी उन पर भोंककर अपनी अप्रसन्नता व्यक्त कर रहा है। वरना जो व्यक्ति बार-बार किसी के यहाँ जाता है, उसे देखकर भला पालतू जानवर क्यों भोंकेगा? जिस प्रकार पाल साहब के घर की गाय शुरू-शुरू में शास्त्री जी को देखकर उन्हें मारने के लिए सिर हिलाती थी, लेकिन कुछ समय के पश्चात् उसे उनकी आदत हो जाती है और वह उन्हें कुछ नहीं करती। संभवतः कुत्ता और गाय में यही अंतर है। कुत्ता ज्यादा वफादार होता है और गाय अपनी सिधाई के कारण चुप लगा जाती है।

**'त्रिशूल'** उपन्यास के अंत में जब महमूद पाल साहब के घर से विदा होता है, तब वह गाय के गले लगकर बहुत रोता है। इस पर लेखक लिखता है **-"महमूद गाय के गले से लगा सिसक रहा है। उसके पीछे झबुआ पूँछ गिराए खड़ा है। पास बँधा बछड़ा कुछ न समझते हुए भी उठकर खड़ा हो गया है और अपनी बड़ी-बड़ी पानीदार आँखें निकालकर मानो पूछ रहा है - क्या हुआ महमूद भाईजान को?"**[43] यह है मनुष्य और जानवरों का रिश्ता। महमूद और इन जानवरों को देखकर ऐसा लगता है,

जैसे दोस्त आपस में बिछड़ रहें हैं। जानवर जाति और धर्म का भेद नहीं जानते। वे सिर्फ प्रेम के भूखे होते हैं, जो यहाँ दिख रहा है।

शिवमूर्ति ने 'आखिरी छलांग' उपन्यास में पशुओं के भूख-प्यास लगने पर उनके स्वभाव में आए परिवर्तन को भी हमारे समक्ष रखा है। पहलवान के दोनों बैल पहलवान को देखकर उनका ध्यान इस तरह अपनी ओर खींचते हैं -**"ललिया थूथन उठाते हुए गले से हूँ-हूँ की आवाज़ निकालता है और चितकबरा गर्दन नीचे झुकाकर दोनों सींग आगे करके नाक से फ़ो-फ़ो करके गुस्सा दिखाता है।"**[44] इस तरह बैलों के स्वभाव को वही लेखक चित्रित कर सकता है जो खुद काफी समय तक बैलों के बीच रचा-बसा हो। यह शिवमूर्ति ही कर सकते थे।

### 3.5.2 पशुओं का मनोविज्ञान

मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो मनुष्य, पशु एवं पक्षी आदि के मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभवों एवं व्यवहारों का क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन करता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो क्रमबद्ध रूप से प्रेक्षणीय व्यवहार का अध्ययन करता है तथा प्राणी के भीतर के मानसिक एवं दैहिक प्रक्रियाओं - जैसे चिंतन, भाव आदि की जानकारी प्राप्त करता है। दरअसल मनोविज्ञान अनुभव का विज्ञान है। इसका उद्देश्य चेतनावस्था की प्रक्रिया के तत्वों का विश्लेषण करना होता है। इस संदर्भ में 'वाटसन' का कहना है - **"मनोविज्ञान, व्यवहार का निश्चित या शुद्ध विज्ञान है।"**[45]

कथाकार शिवमूर्ति ने पशुओं के मनोविज्ञान पर भी विचार किया है। 'आखिरी छलांग' उपन्यास में जब पहलवान अपना बछड़ा कसाई के हाथ बेच देता है; तब

बछड़ा अपना पगहा कसाई के हाथ से छुडाकर फिर अपने स्थान पर आ जाता है। ऐसा लगता है जैसे उसे मालूम है कि यह कसाई उसे जीवित नहीं छोड़ेगा। उसे मार डालेगा। वह अपने मालिक पहलवान के यहाँ ही सुरक्षित है। लेखक लिखता है -**"खूँटे से मुक्त होने की ख़ुशी से बछड़ा चार-छह कदम तो तेजी से चला किंतु जब पीछे से गाय के होकड़ने की आवाज़ आईं तो उसे कुछ गड़बड़ होने का अंदेशा हुआ। उसने पैर रोप दिए। खींचने पर एक कदम बढ़ाता फिर अड़ जाता।"**[46] अतः हम कह सकते हैं कि मनुष्य की तरह पशुओं का भी व्यवहार करने का अपना एक मनोविज्ञान होता है।

### 3.5.3 पेड़ों की सुरक्षा का प्रश्न

मनुष्य के जीवन की सुरक्षा पेड़-पौधों के कारण ही संभव है। पृथ्वी पर जीवन पेड़ों के कारण ही हो सकता है। जाहिर सी बात है कि इंसान का जीवन पेड़ों के होने पर ही निर्भर है। यह कहना गलत न होगा कि पेड़ हैं तो मनुष्य है। पेड़ों पर अन्य वन्य जीवों का निवास होता है। पशु-पक्षियों का चहकना, वीरान वनों का मधुर संगीत होता है। तरह-तरह की वनस्पतियों से हमारे लाइलाज रोगों का निवारण होता है, किन्तु जिस तरह से आज विकास के नाम पर पेड़ों की कटाई हो रही है, उससे भविष्य अंधकारमय हो सकता है। शिवमूर्ति खुद प्रकृति प्रेमी हैं। खेत-खलिहान से उनका नाता बचपन से लेकर अब तक रहा है, इसलिए उनके साहित्य में भी उसका रंग काफी हद तक झलकता है।

**त्रिशूल'** उपन्यास की शुरुवात में ही हम देखते हैं कि सुबह-सुबह **"महमूद लॉन में डहेलिया के पौधे लगा रहा है और लेखक उन्हें पानी दे रहा है।"**[47] उद्धरण का

आशय यह है कि कथानायक पाल साहब को पेड़-पौधों से काफी लगाव है। यही कारण है कि लेखक ने अपने कथा साहित्य में पेड़-पौधों का वर्णन भी किया है और उनकी सुरक्षा का प्रश्न भी उठाया है।

'आखिरी छलांग' उपन्यास का पहलवान अपने बचपन को याद करते हुए अपनी बुआ के घर के पास वाले गूलर के पेड़ का वर्णन करता है। वह कहता है - **"यह रहा सामने बुआ का गाँव। घर के पिछवाड़े वाला गूलर का पेड़ अभी भी जस का तस खड़ा है। बगल वाले घर की लड़की सतनी गिलहरी की तरह इस पर चढ़ कर गूलर तोड़ती थी।"**[48] लेखक इस तरह गूलर के पेड़ का वर्णन करके पेड़-पौधों के प्रति अपने प्रेम का परिचय दे रहा है। बुआ के गाँव जाने पर उसे गूलर का पेड़ पहले की तरह जस का तस नजर आता है। यह उसकी बारीक निरीक्षण शक्ति है, जो उसे गूलर के पेड़ को देखने के लिए विवश करती है।

### 3.6 समसामयिक अन्य स्थितियाँ

समसामयिक से आशय है - वर्तमान समय की स्थितियाँ। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक परिवेश में होनेवाली हलचल, उतार-चढ़ाव की जानकारी एवं व्याप्त समस्याओं के प्रति जागरूकता ही समसामयिक स्थितियाँ हैं। समसामयिक स्थितियों से उपजी समस्याएँ समाज और देश के हर क्षेत्र में देखने को मिलती हैं, जो समाज और देश के विकास में बाधक सिद्ध होती हैं। भ्रष्ट प्रशासन, पति-पत्नी संबंध, पूँजीवादी व्यवस्था, न्याय पालिका का सच आदि ये ऐसी अनेक समस्याएँ हैं, जो समाज और देश को खोखला करती जा रही हैं। इन स्थितियों से उपजी समस्याओं के निराकरण के बिना समाज और देश में सौहार्द का

वातावरण कायम नहीं हो सकता। यह तभी संभव है जब लोग इनके प्रति अपने कर्तव्यों को समझेंगे, क्योंकि लोगों के सहयोग के बिना निजी और सरकारी प्रयास निरर्थक होते हैं।

### 3.6.1 भ्रष्ट प्रशासन

जनता एवं सरकार के बीच मध्यस्थता का कार्य प्रशासन-व्यवस्था का है, किन्तु आज हम देखते हैं कि भ्रष्ट प्रशासन ने प्रशासकीय व्यवस्था का मज़ाक बना दिया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय प्रशासन में भ्रष्टाचार इस कदर फैल गया, मानो वह कोई सांसर्गिक रोग हो। जल्द से जल्द अति धन कमाने की लालसा ने सरकारी अधिकारी, पुलिस प्रशासन आदि को इतना भ्रष्ट बना दिया है कि आम लोग इस भ्रष्ट प्रशासन में पिसते चले जा रहे हैं। **'तर्पण'** उपन्यास में हम भ्रष्ट पुलिस व्यवस्था का जीता-जागता उदाहरण देखते हैं। जब दलित लोग रजपतिया के साथ हुए दुर्व्यवहार की रपट लिखवाने के लिए थाने में जाते हैं, तो वहाँ का दरोगा उनकी बात सुनने को तैयार नहीं होता। उन्हें वहाँ तब तक बैठाया जाता है, जब तक कि भाई जी एस॰ पी. और अपने एक परिचित दलित पार्टी के विधायक से बात करके कप्तान साहब पर दबाव नहीं डालते। जो पुलिस भाई जी और रजपतिया के पिता पियारे की बात जरा भी नहीं सुनती थी, वही कप्तान साहब के एक इशारे पर तुरंत सक्रिय हो जाती है और कार्यवाही करती है। भाई जी और पियारे की बात पुलिस इसलिए नहीं सुनती, क्योंकि भाई जी और पियारे से पहले धरमू पंडित थाने में पहुँचकर पुलिस को नाश्ता-पानी एवं पैसे देकर उसका मुँह बंद करा चुके हैं। शिवमूर्ति लिखते हैं -**"हाँ भाई! अभी दस बजे तो गए हैं, सबको नाश्ता-पानी कराकर।"**[49] यहाँ लेखक बताना चाहता है कि गरीबों, वंचितों और दलितों को न्याय

उनकी बेगुनाही से नहीं मिलता, बल्कि सिफ़ारिश एवं दबाव से मिलता है। कारण कि बड़े लोग अपने पैसे का असर दिखाकर अपने जुर्म पर परदा डालना चाहते हैं।

**'तर्पण'** उपन्यास में थाने में घटित एक और दृश्य हम देखते हैं, जहाँ मानवता तार-तार हो जाती है। एक बेगुनाह गरीब थाने में वहाँ कार्यरत मुंशी से अपनी नित्य-क्रिया के लिए गिड़गिड़ाता है, लेकिन मुंशी इतना अमानवीय है कि उस पर इसका कोई असर नहीं पड़ता। दोनों के बीच हुए संवाद को लेखक इन शब्दों में व्यक्त करता है -**"हे मुंशी जी। इस बार नहीं रुक रही है। मुंशी गरजा, अभी कल शाम को ही तो खोला था रे। छह बजे की इंट्री है। खाला का घर समझ रखा है कि जब चाहेगा टट्टी करने लगेगा।"**[50] यह मनुष्य की एक स्वाभाविक समस्या है। इसे रोका नहीं जा सकता। फिर भी थाने में एक बेगुनाह, गरीब इंसान पर कितना जुल्म किया जा रहा है, यह इस संवाद से देखा जा सकता है। पुलिस उस पर इस तरह का जुर्म इसलिए करती है, क्योंकि उस गरीब ने उसे कुछ देकर उसका मुँह बंद नहीं किया है। पुलिस की क्रूरता और भ्रष्टता का ऐसा दूसरा उदाहरण कम देखने को मिलेगा।

पुलिस प्रशासन की भ्रष्टता और अकर्मण्यता का चित्रण लेखक ने **'त्रिशूल'** उपन्यास में भी किया है। चाहे वह थाने से महमूद को छुड़ाने की घटना हो या मुसलमान दर्ज़ी के घर को जलाने की घटना। दोनों ही मामलों में पुलिस अपनी ज़िम्मेदारी और अपनी ईमानदारी नहीं निभा पाती। कथानायक जब महमूद को छुड़ाने के लिए थाने में जाता है, तब उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मुस्लिम दंगाई उसे घेर लेते हैं। इन दंगाइयों को यह मंजूर नहीं है कि महमूद अब किसी हिंदू के घर में काम करे। लेखक लिखता है -**"मैं भीड़ से घिर जाता हूँ।**

**सिर तथा कंधे पर पड़ती चोट। सहसा एक तेज प्रहार पेट पर। दर्द से ऐंठ जाता हूँ।"**[51] अंत में किसी तरह पाँच मुसलामानों की गवाही पर महमूद रिहा हो पाता है। यह पुलिस की नाकामी का सबूत है।

इसी तरह एक मुसलमान दर्ज़ी को जब उसके घर सहित जला दिया जाता है, तब भी पुलिस ठीक तरह से तहकीकात नहीं करती। पुलिस बहुत सारी सच्चाइयों को नजर अंदाज करती है। भीड़ में खड़े लोग बताते हैं कि दर्जी की झोपड़ी के दरवाजे की कड़ी बाहर से लगी हुई थी। इस बात को जानकर भी दरोगा अपनी जीप में बैठते हुए वहाँ के लोगों को धमकाकर कहता है**, -"आग ठीक से बुझा दो और भाग जाओ। कर्फ्यू लगनेवाला है।"**[52] इस प्रकार हम देखते हैं कि पुलिस सच पर परदा डालकर झूठ का साथ देती है और इससे गुनहगारों के हौसले बुलंद होते हैं।

### 3.6.2 पति-पत्नी संबंध

पति-पत्नी का संबंध एक ऐसा अटूट संबंध है, जिस संबंध पर सब कुछ न्योछावर हो जाता है। पति-पत्नी एक दूसरे के पूरक होते हैं, इस कारण हर सुख-दुख में वे साथ खड़े रहते हैं। पति-पत्नी के संबंधों की मधुरता एक-दूसरे के प्रति एकनिष्ठ सहयोग तथा अपनत्व की भावना से उत्पन्न होता है। शिवमूर्ति ने अपने उपन्यासों में पति-पत्नी के बीच के कोमल, तनावपूर्ण आदि सभी संबंधों के यथार्थ को प्रस्तुत किया है। उनके तीनों उपन्यासों में पति-पत्नी का संबंध अधिक ज्यादा तनाव पूर्ण नहीं है। **'आखिरी छलांग'** उपन्यास में पहलवान और उसकी पत्नी का संबंध श्रम और कर्म से एक-दूसरे के साथ जुड़ा हुआ है। पहलवान की पत्नी को अपने पति की बड़ी चिंता रहती है। पहलवान के घर से बाहर निकलते वक्त वह

कहती हैं **-"धूप तेज हो गई है। सिर में अंगोछा बांध लीजिए।"**[53] आशय यह है कि पत्नी, पति का बहुत ध्यान रखती हैं। पहलवान की पत्नी अपने पति को सीधा-सादा समझती हैं, इसलिए बेटी के रिश्ते के लिए बात करने गए अपने पति को लड़केवालों के साथ बात करने से मना करती हैं। सफर से लौटकर आए अपने पति की थकान को समझकर वह पैरों में तेल लगाकर मालिश भी करती हैं। वह अपने पति के स्वभाव से भली-भाँति परिचित हैं। लड़के वालों के घर की बात वह पहलवान से जानना चाहती हैं, किन्तु उन्हें यह भी पता है -"**कोई उम्मीद की बात होती तो पहलवान से बिना बताए घड़ी भर भी नहीं रहा जाता। कुछ नहीं बता रहे हैं, इसका मतलब है कि बताने लायक कुछ नहीं है।"**[54] यह एक अच्छी पत्नी का लक्षण है। पति के बिना बताए भी सब कुछ जान लेना। यहाँ पहलवान और उनकी पत्नी का संबंध सौहार्दपूर्ण है।

'त्रिशूल' उपन्यास में जहाँ कथानायक और उसकी पत्नी के बीच मधुर संबंध हैं, वहीं मिसरा जी और मिसराइन के बीच बिलकुल विश्वास नहीं है, क्योंकि ब्राह्मण होकर मिसराइन चोरी-छिपे महमूद से मांसाहारी खाना मँगवाकर खाती हैं। बात बढ़ने पर बीच-बचाव का काम कथानायक की पत्नी करती हैं। वे मिसरा जी और मिसराइन के बीच फँसे महमूद को बड़ी आसानी से छुड़ा लेती हैं। वे मिसराजी से कहती हैं -**"क्या है भाईसाहब? काहें चेलवा-चेलवा की रट लगाए हैं? मियाँ-बीवी के झगड़े में चेलवा को क्यों सानते हैं? आप चोरी से चेलवा से क्लब में दारू की बोतल मँगाते हैं तो क्या वह मिसराइन का गवाह बनता है? तब आपका गवाह क्यों बनेगा? जैसे मिसराइन आपका मुँह सूँघकर बुझ लेती है, वैसे आप उनका मुँह सूँघकर बुझिए।"**[55] पत्नी का समझदार होना पति-पत्नी के संबंध में बहुत जरूरी है।

इससे बहुत सारे मसले आसानी से हल हो जाते हैं। पति-पत्नी के संबंधों की चर्चा लेखक ने 'तर्पण' उपन्यास में भी की है। इस उपन्यास में पियारे और उनकी पत्नी के संबंध काफी अच्छे हैं, लेकिन धरमू पंडित और उनकी पत्नी के बीच बेटे चंदर को लेकर नोक-झोक होती रहती है। वे उन्हें डाँटते हैं, तो वे उनका पोल खोलती हैं।

### 3.6.3 पूँजीवादी व्यवस्था

पूँजीवादी व्यवस्था एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है, जिसमें उत्पति के सभी साधनों पर निजी व्यक्तियों का स्वामित्व होता है। साथ ही साथ आर्थिक क्रियाओं का संचालन निजी हित के उद्देश्य से किया जाता है। प्रेमचंद के समय में भी किसान की समस्या थी - ऋणस्तता। उस समय बनिए और ब्राह्मण किसानों को ऋण देकर और मनमाना ब्याज लेकर उनका शोषण करते थे। वर्तमान समय में सरकार और राष्ट्रीयकृत बैंक विकास के नाम पर कर्ज देकर किसानों का शोषण करते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था का प्रभाव किसानों पर किस तरह पड़ रहा है, इसका वर्णन करते हुए लेखक 'आखिरी छलांग' उपन्यास में कहता है -**"सब्सिडी तो हटाई ही जा रही है. ऊपर से अनाज की कीमतों पर भयानक नियंत्रण उनके उत्पाद पर उचित मूल्य पाने से वंचित किए दे रही है। डीजल, बिजली, खाद, कीटनाशक, जोताई, मड़ाई, मजूरी सबका रेट तो हर साल दस-पाँच रुपये बढ़ जाता है, नहीं बढती तो किसानों की पैदावार का दाम।"[56]** इस स्थिति में किसान की समस्याएँ अनंत हैं। उपन्यास का पहलवान विचार करता है कि अगर वह सरकारी नौकरी भी कर लिया होता तो उसके पास चार पैसे होते। उससे बेहतर स्थिति तो सरकारी नौकरी करने वाले चपरासी की है। यह पूँजीवादी व्यवस्था का दुष्परिणाम है।

पूँजीवादी व्यवस्था में आज कई तरह के खतरे किसानों के समक्ष आ गए हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा बीज पेटेंट कराने से किसानों के समक्ष मुश्किलें खड़ी होती हैं। यदि सड़कों का जाल बिछाया जाता है तो पानी के भाव गरीबों की जमीन चली जाती है। दूसरे उत्पादकों के उत्पाद के लिए मैक्सिमम रिटेल प्राइज तय होता है, जबकि किसानों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित किया जाता है। ऐसे में किसानों, मजदूरों का जीवन कैसे बेहतर हो सकता है। यह सब कुछ पूँजीपतियों को खुश करने की सरकारी मानसिकता के तहत होता है।

### 3.6.4 न्याय पालिका का सच

आज के समय में न्याय प्राप्त करना बहुत मुश्किल है। पहली बात तो यह कि न्याय प्राप्ति के लिए अनेक जटिल प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। न्यायालयों में बैठे हुए न्यायाधीश प्रमाणों के आधार पर फैसला सुनाते हैं। इस व्यवस्था में यदि अपराधी ताकतवर है तो वह अपने ढंग से मामले को रफा-दफा करा लेता है और मामले से बरी हो जाता है। कथाकार शिवमूर्ति ने अपने उपन्यासों में इस प्रकार की न्याय संबंधी प्रक्रिया और उसके सच का परदाफाश किया है। 'तर्पण' उपन्यास में हम देखते हैं कि रजपतिया के पिता पियारे की बड़ी बेटी ने आत्महत्या की है, क्योंकि उसके साथ किसी सवर्ण ने व्यभिचार किया था। पियारे गरीब है और छोटी जाति का है, इसलिए अपनी बड़ी बेटी को वह न्याय नहीं दिला पाता। इसी तरह की घटना जब उसकी छोटी बेटी के साथ भी होते-होते रह जाती है, तब वह दलित नेता भाई जी के कहने पर बलात्कार न होते हुए भी बलात्कार की रिपोर्ट दर्ज कराता है। पियारे जानता है कि यह झूठ है, फिर भी वह धरमू पंडित के बेटे चंदर के खिलाफ रिपोर्ट लिखवाता है और उसे जेल भी भिजवा देता है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात

यह है कि आज झूठे मुकदमे भी स्ट्रेटेजी के तहत किए जाते हैं। स्थिति यह है कि न्याय पालिका उसी को सच मानती है जो गवाहों और वकीलों की कानूनी बहसों से छन कर बाहर निकलता है।

**'त्रिशूल'** उपन्यास में भी हम देखते हैं कि बेकसूर महमूद को छुड़ाने के लिए पाल साहब किस-किस का दरवाजा नहीं खटखटाते? जिलाधिकारी के घर के चक्कर काटते-काटते वे महमूद के लिए बड़े परेशान हो जाते हैं। बेकसूर महमूद को मरणासन्न अवस्था में लाकर अंत में पाँच मुसलमानों की गवाही पर जमानत पर छोड़ा जाता है। बेकसूर महमूद को शास्त्री जी झूठे ही अपने पोते के अपहरण का मामला बनाकर फँसाते हैं और उसकी पूरी जिंदगी तबाह कर देते हैं। शास्त्री जी इस मामले में इतने चतुर हैं कि अपने घर का पूरा माहौल ऐसा बनाते हैं कि किसी को भी शक न हो। पोते के झूठे अपहरण के समय का चित्र खींचते हुए लेखक लिखता है **-"बच्चे की माँ का रोते-रोते बुरा हाल है। शास्त्री जी की पत्नी ने दरवाजे से सिर फोड़ लिया है। बार-बार बेहोश हो रही हैं।"**[57] ऐसा लगता है कि शास्त्री जी के पोते का सच में अपहरण हुआ है, जबकि हुआ कुछ नहीं है। ऐसे में न्याय शास्त्री जी को मिलना चाहिए कि महमूद को। यह बड़ा प्रश्न है?

## निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शिवमूर्ति अपने उपन्यासों में सांप्रदायिकता, वर्णवादी व्यवस्था, दलित अस्मिता, किसान जीवन की समस्या, वर्चस्ववादी हिंसक प्रवृति, पशु एवं प्रकृति चित्रण एवं समसामयिक स्थितियों के अंतर्गत भ्रष्ट प्रशासन, पति-पत्नी संबंध, पूँजीवादी व्यवस्था व न्याय पालिका का सच आदि मुद्दों को

उठाकर आज का वस्तुगत यथार्थ हमारे समक्ष रखा है। आज हमारा भारतीय समाज एक साथ कई समस्याओं के जाल में फँसा हुआ है। सांप्रदायिकता के विषय में शिवमूर्ति का मानना है कि यदि समाज को आज उन्नति के शिखर पर पहुँचना है तो सांप्रदायिकता के सीमित दायरे से ऊपर उठकर एक साथ मिलकर कार्य करना होगा। तभी समाज में सौहार्दपूर्ण वातावरण बनेगा। किसी जमाने में वर्णवादी व्यवस्था की आवश्यकता समाज में रही होगी, किन्तु आज नहीं है। दलित समाज के संदर्भ में लेखक का मानना है कि उच्च जातियों को दलितों के भी सम्मान की चिंता करनी होगी। किसानों के विषय में लेखक का कहना है कि अब किसान आत्महत्या नहीं, अपनी समस्याओं से लड़ सकता है।

अपने उपन्यासों में शिवमूर्ति प्रतिपक्ष की भूमिका निभाते हैं। वे हमें कानून और संविधान की उस सीमा पर ले जाते हैं, जहाँ अल्पसंख्यक और छोटी जातियों को आगे बढ़ने के लिए बहुत कुछ दिया गया है, किन्तु समाज और उसे लागू करनेवाली व्यवस्था पैरों में बेड़ी बनकर जकड़ी हुई है। 'त्रिशूल' न केवल मंदिर-मस्जिद की, बल्कि आज के समाज में व्याप्त उथल-पुथल और टूटन की कहानी है। इस उपन्यास में लेखक ओछे हिन्दुत्व और छोटी समझ को ललकरता है। 'तर्पण' उपन्यास पियारे के उच्च मनोभूमि पर जाकर समाप्त होता है जहाँ वह आत्मविश्वास से भरा हुआ दिखता है। दलितों में इसी आत्म विश्वास की जरूरत है। पहलवान की 'आखिरी छलांग' एक आशापूर्ण सकारात्मक छलांग है। इसमें अनेक संभावनाएँ हैं। अतः शिवमूर्ति अपने समय के सजग और प्रतिबद्ध रचनाकार हैं।

## संदर्भ सूची


1. विभूति नारायण राय, सांप्रदायिक दंगे और भारतीय पुलिस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 18
2. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 104
3. वही, पृ. 19
4. वही, पृ. 19
5. वही, पृ. 24
6. वही, पृ. 18
7. वही, पृ. 18
8. वही, पृ. 19
9. डॉ. सच्चिदानंद राय, हिन्दी उपन्यास: सांस्कृतिक एवं मानवतावादी चेतना, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, 1979, पृ. 133
10. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ.5
11. वही, पृ. 104
12. सं. विजय गुप्त, 'मंच' जनवरी-मार्च, 2011, पृ. 65
13. वही, पृ. 76
14. शिवमूर्ति, तर्पण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 16
15. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 45
16. वही, पृ. 59
17. शिवमूर्ति, तर्पण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 78
18. वही, पृ. 80

19. वही, पृ. 23

20. वही, पृ. 14

21. वही, पृ. 25

22. वही, पृ. 26

23. वही, पृ. 14

24. वही, पृ. 14

25. वही, पृ. 116

26. वही, पृ. 116

27. वही, पृ. 116

28. वही, पृ. 85

29. वही, पृ. 25

30. वही, पृ. 25

31. वही, पृ. 116

32. वही, पृ. 79

33. शिवमूर्ति, आखिरी छलांग, नया ज्ञानोदय, जनवरी, 2008, पृ. 79

34. वही, पृ. 79

35. वही, पृ. 86

36. वही, पृ. 83

37. वही, पृ. 84

38. वही, पृ. 93

39. सं. अरुण सिंह, 'इंडिया इनसाइड' साहित्य वार्षिकी, 2016, पृ. 63

40. शिवमूर्ति, आखिरी छलांग, नया ज्ञानोदय, जनवरी, 2008, पृ. 105

41. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995 पृ. 7

42. वही, पृ. 7-8

43. वही, पृ. 103

44. शिवमूर्ति, आखिरी छलांग, नया ज्ञानोदय, जनवरी, 2008, पृ. 75

45. http://ppup.ac.in

46. शिवमूर्ति, आखिरी छलांग, नया ज्ञानोदय, जनवरी, 2008, पृ. 100

47. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995 पृ. 5

48. शिवमूर्ति, आखिरी छलांग, नया ज्ञानोदय, जनवरी, 2008, पृ. 84-85

49. शिवमूर्ति, तर्पण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 31

50. वही, पृ. 33

51. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995, पृ. 96

52. वही, पृ. 41

53. शिवमूर्ति, आखिरी छलांग, नया ज्ञानोदय, जनवरी, 2008, पृ. 78

54. वही, पृ. 88

55. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995, पृ. 16

56. शिवमूर्ति, आखिरी छलांग, नया ज्ञानोदय, जनवरी, 2008, पृ. 84

57. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995 पृ. 66

# चतुर्थ अध्याय

# शिवमूर्ति का कथेतर साहित्य एवं नाट्य - सिने रूपांतरण

## प्रस्तावना

वैसे तो हिन्दी साहित्य में शिवमूर्ति एक कथाकार के रूप में माने और जाने जाते हैं। वस्तुतः तीन उपन्यास - 'त्रिशूल', 'तर्पण' 'आखिरी छलांग' और कुछ कहानी संग्रह उन्हें एक श्रेष्ठ कथाकार के रूप में पहचान दे चुके हैं। शिवमूर्ति के विषय में यह प्रायः कहा जाता है कि साहित्य जगत में कम लिखकर वे अधिक चर्चा में रहने वाले कथाकार हैं। ऐसा कम रचनाकारों के साथ होता है कि उनकी कोई भी कहानी या उपन्यास कमतर न हो। सभी एक से एक बढ़कर हों। शिवमूर्ति के विषय में यह कह पाना कठिन है कि उनकी कौन सी रचना दूसरी रचना से श्रेष्ठ है। मैं कहना चाहती हूँ कि जिस भी विषय को शिवमूर्ति ने लिया है, उसे उस मुकाम तक पहुँचा दिया है, जहाँ अन्य को कुछ कहने के लिए बचा ही नहीं। अपनी कहानियों और उपन्यासों के लेखन में वे हमेशा विद्वानों एवं सामान्य पाठकों के बीच चर्चा में रहे, लेकिन कहानी और उपन्यास के अलावा उन्होंने कुछ अन्य विधाओं को भी अपने लेखन का विषय बनाया है, जिनमें उनका संस्मरण 'सृजन का रसायन' (2014) उनके यात्रा वृतांत 'जैक लंडन के देश में' (2012), 'लू शुन के देश में' (2015) और उनके कथा साहित्य के नाट्य-सिने रूपांतरण शामिल हैं।

अपने संस्मरण 'सृजन का रसायन' में शिवमूर्ति मुख्य रूप से अपने जीवन से जुड़ी घटनाओं और अपने जीवन से जुड़े चरित्रों, संबंधियों, परिवार जनों के विषय में बताते हैं और यह भी बताते हैं कि वे कौनसी परिस्थितियाँ थीं, जिनके कारण वे लेखन के क्षेत्र में प्रवृत हुए। आशय यह कि वे अपने संस्मरण 'सृजन का रसायन' में अपनी रचना प्रक्रिया के विषय में बताते हैं। उनका मानना है कि माँ की तरह

एवं धरती की तरह लेखक की भी अपनी एक कोख होती है, जिसमें लेखन के बीज पड़ते हैं। अपने यात्रा वृत्तांतों में वे 'जैक लंडन के देश में' (2012) एवं 'लू शुन के देश में' (2015) अपनी विदेशी यात्राओं की चर्चा करते हैं और बताते हैं कि वे अपने प्रिय लेखकों से मिलने उनके स्मारक तक किस प्रकार पहुँचते हैं। इन यात्रा वृत्तांतों में लेखक का मानना हैं कि जो कुछ उसने अपने विद्यार्थी जीवन में इन साहित्यकारों के विषय में पढ़ा था, उसे देखने का साक्षात् अनुभव हुआ।

इसी तरह उनके नाट्य-सिने रूपांतरण के अंतर्गत उनकी उन कहानियों की चर्चा की गई है, जिनका नाट्य रूपांतरण हुआ है या फिर सिने रूपांतरण हुआ है। इन नाट्य और सिने रूपांतरणों से स्पष्ट होता है कि जो बात वे कहानियों में कहना चाहते हैं और पाठकों तक पहुँचाना चाहते हैं, वह इन दोनों दृश्य माध्यमों से और निखर कर प्रभावी ढंग से दर्शकों तक पहुँचा है। यहाँ कहना जरुरी है कि हमारे देश की अधिकांश जनता ऐसी है जो कहानियों और उपन्यासों को नहीं पढ़ पाती। कुछ पुस्तकों की अनुपलब्धता के कारण तो कुछ समयाभाव के कारण। ऐसे में दृश्य माध्यम उनके लिए बहुत सहायक सिद्ध होते हैं। स्थिति यह है कि शिवमूर्ति की कहानियों पर बने नाटक या चित्रपट आम जन के दिलो-दिमाग पर छा गए हैं। शिवमूर्ति का पूरा रचना संसार आम जन, जिनमें दलित, अल्पसंख्यक, किसान और स्त्रियाँ प्रमुख हैं, के इर्द-गिर्द घूमता है।

## 4.1 शिवमूर्ति का संस्मरण साहित्य

संस्मरण विधा मुख्यत: आधुनिक युग की देन है। लेखक अपने व्यक्तिगत अनुभव और स्मृति के आधार पर किसी व्यक्ति या विषय के संबंध में स्मरणीय

घटनाओं का उल्लेख रचना में करता है, इसी प्रक्रिया को संस्मरण कहते हैं। संस्मरण के संबंध में डॉ. नगेंद्र लिखते हैं **-"व्यक्तिगत अनुभव तथा स्मृति से रचा गया इतिवृत्त अथवा वर्णन ही संस्मरण है। इनमें लेखक प्रायः अपने जीवन का वृतांत अथवा जीवन में घटित घटनाओं का वर्णन करता है। इस दृष्टि से यह साहित्य रूप आत्मकथात्मक होता है।"**[1] ध्यातव्य है कि संस्मरण वर्तमान या भविष्य का नहीं, बल्कि अतीत का चित्रण होता है। इसके लेखन के लिए यह अनिवार्य है कि वर्णित व्यक्ति या घटना आदि के साथ लेखक का व्यक्तिगत नाता रहा हो। इसके अंतर्गत उन्हीं तथ्यों का वर्णन हो सकता है, जो वास्तव में घटित हो चुका है। संस्मरण में कल्पना के लिये कोई स्थान नहीं होता, यह पूर्ण रूप से वास्तविक तथ्यों-घटनाओं पर आधारित होता है।

'हिन्दी साहित्य कोश' में संस्मरण की परिभाषा इस तरह दी गयी है - **"संस्मरण-लेखक जो स्वयं देखता है, जिसका वह स्वयं अनुभव करता है, उसी का वर्णन करता है। उसके वर्णन के अनुसार किसी व्यक्ति, घटना, दृश्य, वस्तु को आत्मीयता के साथ याद करते हुए उसका विवेचन संस्मरण की संज्ञा पा जाता है।"**[2] अतः यह कहा जा सकता है कि संस्मरण बहुत ही लचकदार विधा है और इसका विस्तार वर्णनात्मक शैली में होता है। संस्मरण में सम्पूर्ण जीवन का चित्रण न कर कुछ खास घटनाओं का ही विवेचन किया जाता है, जो पूर्णतः केवल यथार्थ ही होता है। दरअसल संस्मरण कथा न होकर कथाभास है, जिससे लेखक अतीत की अनेक स्मृतियों में से कुछ रमणीय तथा कुछ दर्दभरी अनुभूतियों को साझा कर शब्द रूप देता है।

आधुनिक काल में अनेक लेखकों द्वारा संस्मरण लिखे गये हैं, जिनमें प्रमुख हैं - पंडित पद्मसिंह शर्मा, बनारसी दास चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, विष्णु प्रभाकर, महादेवी वर्मा, जैनेन्द्र कुमार, कृष्ण सोबती, कांतिकुमार जैन, काशीनाथ सिंह,

दूधनाथ सिंह, गिरिराज किशोर आदि। इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए शिवमूर्ति ने भी अपने जीवन से जुड़ी हर छोटी-बड़ी घटना को जोड़कर 'सृजन का रसायन' बनाया है। अपने जीवन की तमाम विषमताओं के साथ दो-दो हाथ करते हुए उन्होंने एक साधारण किसान परिवार से बिक्री कर अधिकारी और फिर लेखक के रूप में बड़ा नाम कमाया है। शिवमूर्ति ने अपने जीवन में आर्थिक तंगी झेली थी। यदि कहा जाय कि जीवन जीने के लिए एक सामान्य व्यक्ति को जो साधन चाहिए होते हैं, शिवमूर्ति उनसे वंचित रहे तो गलत न होगा। अपनी जीविका चलाने के लिए अपनी कक्षा के बाद बकरियाँ पालना, मजमा लगाना आदि काम से उन्होंने परहेज नहीं किया। विषम परिस्थितियों को मात देने वाला यह लेखक सरकारी परीक्षा उतीर्ण कर बिक्री कर अधिकारी के पद पर काम करते हुए वर्ष 2011 में सेवा-निवृत हुआ और स्वतंत्र लेखन कार्य में आज भी जुटा हुआ है।

### 4.1.1 संस्मरण में वर्णित लेखक एवं उससे जुड़े लोगों का जीवन

एक अच्छा व प्रामाणिक संस्मरण वही होता है, जिसमें लेखक अपने आप को पृष्ठभूमि के रूप में रखकर अपने विषय के विविध पक्षों को आत्मीयता और विनम्रता के साथ धैर्यपूर्वक खोलता चला जाता है। संस्मरण में जिन-जिन व्यक्तियों का जिक्र मिलता है, वे लेखक के आस-पास के सामान्य मनुष्य ही होते हैं। लेखक जिन व्यक्तियों को संस्मरण के लिए चुनता है, वे निश्चित रूप से वही होते हैं, जो लेखक के साथ सकारात्मक या नकारात्मक रूप से जुड़े होते हैं। लेखक उन व्यक्तियों को भी अपनी रचना का हिस्सा बनाता है, जो लेखक को सबसे ज्यादा प्रभावित करते हैं। वास्तव में संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। इसमें विषय और विषयी दोनों ही रूपायित होते हैं। इस रूप में जब मैं शिवमूर्ति के संस्मरण 'सृजन का रसायन' पर विचार करती हूँ तो उसमें मुझे शिवमूर्ति के जीवन से जुड़ी कई घटनाओं की जानकारी प्राप्त होती है। इसके साथ-साथ उनके

जीवन से जुड़े कई लोग मिलते हैं, जिनका शिवमूर्ति के साथ बड़ी आत्मीयता का संबंध रहा है। जैसे - उनके माता-पिता, उनकी पत्नी सरिता, जियावन दर्जी, डाकू नरेश गड़ेरिया, जंगू, धन्नू बाबा, संतोषी काका, परदेसिन अइया, शिवकुमारी आदि। इन सभी पात्रों का असर उन पर और उनके साहित्य पर पड़ा है। स्त्रियाँ 'सृजन का रसायन' की आत्मा हैं। शिवकुमारी के साथ उनके संबंधों को लेकर बहुत कुछ कहा-सुना जाता है, शिवमूर्ति ने इस संस्मरण पुस्तक में इस संबंध पर भी प्रकाश डाला है।

शिवमूर्ति का बचपन 'कुरंग' गाँव में प्रकृति के सानिध्य में बीता, जहाँ जंगल, झाड़ी महुवारी, अमराई के बीच से उनका आना-जाना होता था। इन्हीं के बीच वे खेले-कूदे व बड़े हुए। लेखक यह मानता है **-"बचपन और किशोरावस्था में मन की स्लेट एकदम साफ और नई-नकोरी रहती है। उस समय का देखा-सुना पूरी तरह जीवंत और चमकीले रूप में सुरक्षित रहता है। शायद यही उम्र होती है मन में लेखकीय बीज के पड़ने और अंकुरित होने की।"**[3] यही कारण है कि शिवमूर्ति बचपन का वह हादसा आज भी याद करते हैं, जब वह अपहरणकर्ता ठाकुर के हाथ से मरते-मरते बचे थे। जमीन के सिलसिले में जिस ठाकुर के साथ शिवमूर्ति के पिता का झगड़ा चल रहा था, उसी ठाकुर ने शिवमूर्ति के पिता पर दबाव बढ़ाने के लिए शिवमूर्ति का अपहरण कराया था और शिवमूर्ति को धान वाली कोठरी में कैद करके रखा था, ताकि बाद में वे उनका काम तमाम कर सकें। फिर भी नियति को कुछ और ही मंजूर था। ऐन समय पर ठाकुर की पत्नी धान लेने के लिए उस कोठरी में आ गयीं और शिवमूर्ति वहाँ से भाग निकले। अर्थात् अपनी जान बचाकर शिवमूर्ति सीधे अपने घर आ गए। इस घटना के कुछ ही दिनों बाद ठाकुरों ने शिवमूर्ति के पिता को भी मारने की योजना बनाई, किन्तु वह भी विफल हो गई। समय पर आकर एक चरवाहे ने उन्हें आगाह कर, इसलिए शिवमूर्ति का पूरा परिवार

उस समय बच गया। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि जिस ठाकुर ने शिवमूर्ति का अपहरण कराया था, उनके परिवार को मारना चाहा था, वही ठाकुर बाद में अपनी नातिन की नौकरी के लिए शिवमूर्ति के पास आए, जब वे बिक्री कर विभाग के अधिकारी थे।

शिवमूर्ति अपने पिता के कठोर अनुशासन के कारण ही पढ़ पाए। यह उनका अनुशासन ही था, जिसके कारण वे पढ़ाई के साथ-साथ 'रामचरिमानस' का पाठ भी सीखे, जो भविष्य में उनके लेखकीय जीवन में काफी उपयोगी साबित हुआ। जिस पिता ने कठोर अनुशासन के साथ शिवमूर्ति तथा उनकी बहन रानी को पढ़ने के लिए प्रेरित किया, वही जब गृहत्याग करके सन्यासी बने, तब शिवमूर्ति की बहन रानी ने पढ़ाई छोड़कर बकरियाँ पालना शुरू किया। हालाँकि शिवमूर्ति ने अपनी पढ़ाई जारी रखी और साथ-साथ पूरे घर की जिम्मेदारी भी संभाली। आर्थिक तंगी से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने स्कूल के बाद कचहरी के बाहर और मेलों में मजमा लगाया और तरह-तरह के उत्पाद बेचकर अपनी आर्थिक समस्या का समाधान निकाला। अपने उत्पाद की विश्वसनीयता को सिद्ध करने के लिए उन्होंने एक कैलेंडर में छपे लंबी जटाजूट वाले बाबा की तस्वीर को आधार बनाया और अपने आप को उनका शिष्य बताकर उसे  जन कल्याण का नाम दिया और मजमे में तरह-तरह की दवाइयों को बेचा। यह सब उन्हें अपनी छोटी उम्र में करना पड़ा। इतना ही नहीं, शिवमूर्ति के पिता जब आश्रम से घर आते, तब सम्पूर्ण गाँव के लिए और आश्रम के बाबाओं के लिए भंडारा करते, जिससे पूरे घर का राशन समाप्त कर देते। साथ में उधारी करके शिवमूर्ति के नाम कर्जा छोड़कर जाते। इन सब से परेशान होकर एक दिन शिवमूर्ति ने अपने पिता को मारने की भी योजना बनाई, लेकिन उस रात शिवमूर्ति जल्दी सो गए और सुबह उनके जागने से पहले ही पिताजी आश्रम लौट गए थे। अतः कहा जा सकता है कि पिता के असमय गृहत्याग

के कारण शिवमूर्ति हर तरह की मुश्किलों का सामना करते रहे और आज समाज में अपना अच्छा-खासा स्थान बना चुकें हैं। एक साधारण किसान के बेटे का बिक्री कर अधिकारी बनने तक का यह सफर काफी संघर्षमय रहा, फिर भी चेहरे पर बिना किसी तनाव  और शिकायत के उन्होंने अपना और अपनी बहन के परिवार का पूरा जिम्मा उठाया और हर एक बच्चे को समाज में उच्च मुकाम हासिल करने के लिए प्रेरित किया।

अपनी माँ की गैरमौजूदगी में बालक शिवमूर्ति के लिए तिवराइन अइया का घर देवी अन्नपूर्णा के घर जैसा था, जहाँ वह बेझिझक खा-पी सकता था। शिवमूर्ति के स्कूल से लौटने पर तिवराइन अइया उनकी भूख को जानकर उनके सामने दाल रख दिया करती थी, जो उस समय उनके लिए महाभोज से कम नहीं था। आज ऐसा घर शहर तो छोड़ो, गाँव में भी मिलना दुर्लभ है, जहाँ बेझिझक हमारे बच्चों को उनके माता-पिता की गैरमौजूदगी में पेट पूजा के लिए कुछ मिल जाए। इसी तरह अपनी गाय को याद करके भी शिवमूर्ति काफी दुखी रहते हैं। वह गाय गाँव में ही बेच दी गयी थी। शिवमूर्ति को अपनी वह गाय बड़ी प्रिय थी। जिस दिन गाय बेची गई थी, उस दिन वे गाय के गम में खाना नहीं खा पाये थे। दिन भर जैसे-तैसे समय काटते रहे और शाम होते ही गाय को रोटी खिलाने उसके पास चले गए। गाय के अलावा बालक शिवमूर्ति के घर में बैल भी था, जिसका नाम मकरा था। जब शिवमूर्ति के पिता ने गृहत्याग किया, तब शिवमूर्ति तेरह साल के थे। तेरह साल की कच्ची उम्र में हल चलाना आसान नहीं होता है। खेतों में हल चलते वक्त मकरा यह निर्णय लेता था कि उसे खेत में कहाँ से मुड़ना है। उस समय मकरा ने ही खेत जोतने के लिए हलवाहे की भूमिका निभाई थी। इतना ही नहीं, समय होने पर काम करने के लिए वह शिवमूर्ति को सचेत भी करता था। इस संबंध में शिवमूर्ति लिखते हैं **-"चारा देने, पानी पिलाने या रात में खवाई-पियाई के**

**बाद उनको मिलने वाली रोटी देने में देर होने पर तो वह हुंकार मारकर याद दिलाता ही था, एकाध बार तो ऐसा भी हुआ कि हल नाधने का समय हो गया, वह समय पर स्वयं उठकर खड़ा हो गया। पेशाब-गोबर किया। तब तक भी मैं जुवाठ लेकर उसके पास नहीं पहुंचा तो वह हुंकार भरकर सचेत करने लगा। मानो कह रहा हो, इतना आलस ठीक नहीं।"**[4] एक बैल का इतना समझदार होना और अपने मालिक को इस तरह सचेत करना अपने आप में अद्भुत है। लेखक इस बात को स्वीकार करता है कि उसकी जितनी मदद उस समय मकरे ने की, उतनी गाँव के किसी आदमी ने भी नहीं की। उसने कभी अपने मालिक के खेतों का नुकसान भी नहीं किया, वरन् बड़ी चतुराई के साथ अपने खेत छोड़कर वह अन्य किसानों के खेतों में जाकर चरकर आ जाता था| ध्यान देने की बात है कि जहाँ आज किसी इंसान से मदद मिलना कठिन हो गया है, वहाँ पशु होकर एक बैल का इतनी समझदारी से काम करना सच में अविस्मरणीय है। भला इसे कौन भूलेगा?

प्राइमरी स्कूल के शिक्षक पं. देवमणि मिश्र को अपने संस्मरण में शिवमूर्ति ने स्थान दिया है। उन्हें याद करते हुए कहते हैं **- "पं. देवमणि मिश्र गणित बहुत समझाकर, सावधान करके और हिन्दी बहुत रस लेकर पढ़ाते थे। दुलारने में भी आगे और दंड देने में भी। उनके बताए हुए ऐकिक नियम, लाभ-हानि, प्रतिशत और ब्याज के सूत्र तो इतने कंठस्थ हो गए थे कि उसी मजबूत आधार के बल पर प्रतियोगिता की वैतरणी पार कर गया।"**[5] गुरु ईश्वर से बढ़कर होता है। प्रत्यक्ष रूप में वह शिष्य की उँगलियों को पकड़कर सफलता की सीढियों तक पहुँचाता है। वह कुंभकार होता है जो कच्ची मिट्टी को सुन्दर घड़े का स्वरुप देता है। उसके दंड में भी बहुत बड़ा प्यार और मार्गदर्शन छिपा होता है। शिवमूर्ति भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि उनके शिक्षक पं. देवमणि मिश्र के कारण ही वे सरकारी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। यही सच है कि विद्यार्थी के जीवन में उसकी प्राथमिक शिक्षा उसके

भविष्य की शिक्षा की मजबूत नींव डालती है, जिसके कारण विद्यार्थी अपने जीवन में कामयाब होता है| और इससे भी बड़ी बात यह है कि ऐसे योग्य गुरु को शिष्य कभी अपनी यादों से ओझल नहीं कर पाता। शिवमूर्ति यही करते हैं। यहाँ ऐसे श्रेष्ठ गुरु को याद करके शिष्य भी श्रेष्ठ हो गया है।

बचपन में शिवमूर्ति के पिता ने उन्हें जियावन दर्जी के पास सिलाई और काज-बटन लगाने के काम में लगाया था, ताकि वे कोई हुनर सीख लें और भविष्य में उन्हें किसी प्रकार की आर्थिक तंगी का सामना न करना पड़े। जियावन दर्जी से शिवमूर्ति ने आठ-नौ साल की कच्ची उम्र में सिलाई और काज-बटन लगाना सीखा। इस काम के बदले में मिले पैसे से शिवमूर्ति अपनी पढ़ाई की किताबें खरीद लिया करते। जैसे-जैसे शिवमूर्ति बड़े होते गए, वैसे-वैसे उनमें पढ़ने-लिखने की दिलचस्पी बढ़ती गयी। उनकी फुफेरी बहन रंजना उन्हें राजा-महाराजाओं के किस्से-कहानियाँ सुनाती, इस कारण शिवमूर्ति को किताबें पढ़ने का शौक लगा। जब शिवमूर्ति आठवीं कक्षा में पढ़ते थे, तब उनका परिचय नकछेद पाण्डेय की लाइब्रेरी से हुआ। उन दिनों लेखक अपने मित्रों के साथ जानवरों को चराने वहाँ जाया करता और उनकी लाइब्रेरी से किताबें माँगकर पढ़ा करता। इस तरह पढ़ने के लिए प्रेरित करने वालों का संग शिवमूर्ति को मिलता गया और वे कामयाबी की सीढ़ी की ओर अग्रसर हुए।

जिस समय शिवमूर्ति इंटरमीडिएट में पढ़ते थे, उस समय उनके इलाके में चकबंदी शुरू हुई थी। इस सिलसिले में एक बार उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच विवाद शुरू हुआ। परिणाम यह हुआ कि अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए कई लोग सामने आए और डकैत व हत्यारे बन गए। बरसाती पासी, नरेश गड़ेरिया और जंगली अहीर, जो शिवमूर्ति के अच्छे मित्र थे, वे डकैत बन गए। शिवमूर्ति ने भी जब डकैत बनने की इच्छा अपने दोस्तों के सामने जाहिर की तो इन दोस्तों

ने उन्हें पढ़ने के लिए कहा और जरूरत पड़ने पर शिवमूर्ति की मदद करने का वायदा भी किया। ये ही दोस्त आगे जाकर पुलिस मुठभेड़ में मारे गए। एक और डाकू 'जंगू' का भी जिक्र उनके संस्मरण में मिलता है, जो गरीबों के साथ हमेशा खड़ा रहा और बंदूक की नोक पर शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाता रहा। उसे भी सन् 2006 में मुठभेड़ में मारा डाला गया, जिसकी लिखी कविता को शिवमूर्ति चाहते थे कि अपने किसी कथा के पात्र के माध्यम से पेश करें, लेकिन ऐसा न हो पाया। ऐसी स्थिति में शिवमूर्ति ने इस संस्मरण में उस कविता का जिक्र किया है। कविता इस प्रकार है -

**"युगों-युगों से दमित पुंसत्व**
**विद्रोह की अधिकार की आकांक्षाएँ**
**संघर्ष का माद्दा जो दबा हुआ है,**
**राख़ में चिंगारी-सा,**
**कि कुरेदो उसे,**
**फूंककर प्रज्वलित करो।**
**जलाकर ताप लो,**
**सारा शोषण, दमन, अत्याचार**
**कि बर्बर युग का**
**वह पौरुष ही है अभीष्ट**
**सभ्य कहलाते इस निहत्थे युग की,**
**भीरुता और जड़ता के कलंक से।**
**हाथ पर हाथ धरे**
**माथा झुकाए बैठी कायर जाति**
**कि उठ जाग ! नगाड़ा बजने लगा।"**[6]

शिवमूर्ति की रचनाओं पर गौर करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने आस-पास के व्यक्ति-चित्रों को ही अपने साहित्य के पात्रों द्वारा आवाज़ दी है। ये पात्र यथार्थ की धरती पर पले-बढ़े हैं और ये ही हमारा ग्रामीण यथार्थ भी प्रस्तुत करते हैं। शिवमूर्ति अपने संस्मरण में लिखते हैं **-"मेरी रचनाओं में ज़ोर जुल्म के खिलाफ खड़े होने वाले जो चरित्र आप देखते हैं, उनकी निर्मिति के पीछे मुझे 'अंजोरवा' का हाथ भी दिखता है। मेरे बचपन का दोस्त अंजोरवा। नाम रहा होगा राम अंजोर। प्यार से बुलाने के लिए 'अंजोरे' अंजोर यानी उजाला कर देने वाला और 'रेरी' मार कर यानी तुच्छ या नाचीज मानकर बुलाने के लिए अंजोरवा।"**[7] यहाँ लेखक शिवमूर्ति बताते हैं कि उनके मित्र के साथ उनकी कितनी घनिष्ठता थी और गाँव में अच्छे भले नाम को भी कैसे बिगाड़ दिया जाता है। असल में 'अंजोरवा' अपनी नानी के घर रहता था, क्योंकि उसकी माँ ने दूसरी शादी कर ली थी। 'अंजोरवा' लेखक के घर के बगल में परदेसिन अइया के गुजर जाने के बाद उनके ही घर में रहता था। अंजोरवा के साथ ज़ोर-जबरदस्ती करके उससे हलवाही करवाने का ठाकुरों का विचार था, लेकिन उसकी नानी ने साफ कह दिया था कि उसका नाती कभी किसी ठाकुर-बाभन की हलवाही नहीं करेगा। अंजोरवा जुबान का पक्का था। ठाकुरों की मार सहता रहा, लेकिन उसने कभी किसी ठाकुर-बाभन की हलवाही नहीं की। जबरदस्ती करने पर एक दिन एक लड़के की जांघ में वजनी गहदाला घुसा दिया और भाग खड़ा हुआ। लोगों ने उसे घर पर न पाकर उसकी नानी को ही पीट डाला। इस घटना के दो-तीन दिन बाद अंजोरवा अपनी नानी के साथ आधी रात को गाँव छोड़कर चला गया, लेकिन जाने से पहले उसने शिवमूर्ति को बताया कि **-"फिर आऊँगा, साले को मारने। थोड़ा बड़ा हो जाऊँ। वह सिर्फ कह नहीं रहा था, मुझसे वादा कर रहा था, संकल्प कर रहा था। यह सन् 60-61 की बात होगी।"**[8]

यह वह दौर था, जब खेतिहर मजदूर ठीक तरह से मजदूरी न मिलने पर गाँव से पलायन कर रहे थे। उनके इस पलायन को रोकने के लिए गाँव के ठाकुर हमेशा उनकी बहन-बेटियों की इज़्ज़त लूटने के नाम पर दिहाड़ी करवाते थे और बहुत कम मजदूरी देते थे। इसी कारण  अंजोरवा को गाँव छोड़ना पड़ा और जंगू, नरेश आदि को डाकू बनना पड़ा। बचपन के ये सारे चरित्र शिवमूर्ति के दिलो-दिमाग पर इस कदर छाए रहे कि बाद में अतीत के किवाड़ खुलते ही उनके कथा-साहित्य में ये घर कर गए।

अंजोरवा के अलावा एक और चरित्र है संतोषी काका, जिनकी जमीन पर पड़ोसी गाँव के दबंग सामंत ने छल-कपट से उनकी जमीन अपने नाम लिखवा ली। अपना खेत वापस पाने के लिए संतोषी काका ने बड़ी मिन्नत की, लेकिन उसका कोई फायदा नहीं हुआ। अंत में निराश  होकर उन्होंने कोर्ट का दरवाजा खटखटाया और मुकदमा दायर कर दिया। इस बीच उनके आठ साल के बेटे की लाश गाँव के तालाब में मिली। उन्हें भी मारने की धमकियाँ मिलीं। इन्हीं सब के कारण अपनी पत्नी को मायके भेज दिया और अपना पेट पालने के लिए 'चना ज़ोर गरम' बेचने लगे। गाँव के काफी लोगों ने उन्हें मुकदमा वापस लेने का सुझाव दिया, परंतु उनका कहना था **-"बात अब खेत वापस पाने या न पाने की नहीं रह गयी है बचवा। बात फँसी है ज़ोर-जुल्म के खिलाफ खड़े होने या हिम्मत हारकर पीछे हट जाने के बीच। जान नहीं रह जाएगी तो सब भूल जाएगा। पर जीते-जी पीछे हटा तो मैं खुद ही अपनी नज़रों से गिर जाऊंगा।"**[9] संतोषी काका के इस कथन में बड़ा दम है। वे आने वाली पीढ़ी को यह बताना चाहते हैं कि चाहे कुछ भी हो जाय, अन्याय के खिलाफ लड़ो। अन्याय के खिलाफ उन्हें झुकना मंजूर नहीं। संतोषी काका को स्मरण करते हुए शिवमूर्ति यह मानते हैं कि यही वे पात्र हैं जिनके कारण वे खुद जागरूक हुए और अन्याय का सामना करने के लिए हिम्मत जुटा पाए। अंततः संतोषी काका

का क्या हुआ, यह शिवमूर्ति को मालूम नहीं, परंतु आज भी शिवमूर्ति के दिलो-दिमाग पर संतोषी काका छाए हुए हैं और इंतज़ार कर रहें हैं कि लेखक कब उनके पात्र को अपने कथा-साहित्य का हिस्सा बनाएगा और लोगों तक पहुँचाएगा|

गाँव में पतुरिया अर्थात् वेश्या के रूप में जानी जाने वाली शिवकुमारी जिंदगी भर शिवमूर्ति की सच्ची दोस्त बनकर रहीं। शिवकुमारी से दोस्ती करने के कारण साहित्य जगत में और अपने गाँव में भी शिवमूर्ति को काफी बदनामी का सामना करना पड़ा, किन्तु इसकी परवाह किए बिना शिवमूर्ति और उनकी पत्नी सरिता जी ने शिवकुमारी से अपनी दोस्ती निभाई। असल में दोस्ती शिवकुमारी ने निभाई। जब-जब शिवमूर्ति ने संकटों का सामना किया, तब-तब शिवकुमारी ने मित्रता का धर्म निभाया। जब पहली बार शिवमूर्ति नौकरी ज्वाइन करने गए, तब उन्हीं का कंबल और अटैची लेकर गए। इतना ही नहीं, लेखक के घर की मरम्मत करवाते वक्त जब मजदूरों ने दगा दे दिया, तब शिवकुमारी ने सरिता जी, शिवमूर्ति की माँ और बहन के साथ मिलकर लगातार आठ दिनों तक मिट्टी ढोने का काम किया और आर्थिक रूप से सहायता भी की। सही मायने में पतुरिया होकर भी मित्रता का धर्म निभाना शिवकुमारी से सीखना चाहिए।

कथाकार शिवमूर्ति के जीवन से जुड़े हुए और भी अनेक किरदार हैं जिनका योगदान उन्हें बनाने में महत्वपूर्ण रहा है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका उनकी जीवन संगिनी सरिता जी की है। सरिता जी का जब गौना हुआ, तब शिवमूर्ति इंटरमीडिएट में पढ़ रहे थे। वे ससुराल आईं और शिवमूर्ति को पारिवारिक जिम्मेद्दारियों से मुक्त कर दीं। शिवमूर्ति को पढ़ने के लिए उन्होंने ही प्रेरित किया। मजमा लगाने के काम में भी सरिता जी का सहयोग उन्हें हमेशा मिलता रहा। इसी कारण वे कंपीटीशन की परीक्षा उतीर्ण कर गए और बिक्री कर विभाग में अधिकारी नियुक्त हुए।

कथाकार शिवमूर्ति ने अपनी जिंदगी में आए हुए उन तमाम पात्रों का वर्णन अपने संस्मरण 'सृजन का रसायन' में विस्तार से किया है, जो काल्पनिक न होकर संपूर्णतः वास्तविक हैं। मानवीय, अमानवीय, बेरुखी, दुर्व्यवहार, मित्रता, शोषण आदि जीवन के कई पहलुओं को संस्मरण के माध्यम से उन्होंने पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है। ये वे स्मृतियाँ हैं, जिन्हें अभी तक वे अपने कथा साहित्य में स्थान नहीं दे पाये हैं। अभी देना बाकी है। शिवमूर्ति का यह संस्मरण 'सृजन का रसायन' उनके जीवन से जुड़े कई अध्यायों को पाठक के साथ साझा करता है, जिससे पाठक  अपने प्रिय लेखक को अच्छी तरह जान और समझ जाता है। शिवमूर्ति की कलम से जो भी लिखा जाता है, पाठक उसे पढ़ता है। वे शिव की मूर्ति हैं, जिसे भी छू देते हैं, वह सोने की मूर्ति बन जाता है।

### 4.1.2 संस्मरण में वर्णित लेखक की रचना प्रक्रिया

रचना प्रक्रिया के तमाम तत्वों को उकेरती तथा एक कथाकार के जन्म लेने और बनने की यात्रा तथा वास्तविकता के कड़वे यथार्थ का बखान है - शिवमूर्ति का संस्मरण 'सृजन का रसायन'। यह पुस्तक शिवमूर्ति की रचना प्रक्रिया पर प्रकाश डालने वाली और विस्तार से जानकारी देने वाली रचना है। इस संस्मरण में कई आलेख और साक्षात्कार के प्रश्नोत्तर के रूप में उनकी सृजन प्रक्रिया को विस्तार कैसे मिला है? इसकी जानकारी दी गई है। शिवमूर्ति का मानना है -**"माँ की तरह या धरती की तरह लेखक की भी अपनी 'कोख' होती है, जिसमें वह उपयोगी, उद्वेलित करने वाली घटना या बिंब को टांक लेता है, सुरक्षित कर लेता है, अनुकूल समय पर रचना के रूप में अंकुरित करने के लिए। जिन परिस्थितियों में शिशु विकसित होता है, वही उसकी जिंदगी की भी नियामक बनती हैं और उसके लेखन की भी।"**[10] अर्थात् जिस तरह से माँ के गर्भ में पल रहे बच्चे का विकास दिन-ब-

दिन, महीने दर महीने होता रहता है, उसी प्रकार लेखक भी अपनी कोख में रचना के लिए उपयुक्त शिशु रूपी सामग्री एकत्रित करके उसे ठीक समय पर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। वास्तव में रचना प्रक्रिया में नैसर्गिक प्रतिभा के साथ-साथ लेखक का परिवेश भी काफी मायने रखता है। जिस परिवेश में लेखक पला-बढ़ा होता है, उसका सीधा असर उसकी रचना प्रक्रिया पर, उसके साहित्य पर पड़ता है। यह कहना गलत न होगा कि शिवमूर्ति में नैसर्गिक प्रतिभा जन्मजात थी। वे तेरह वर्ष की अल्पायु में ही अपनी स्कूल की नोट बुक में कहानी लेखन शुरू कर दिए थे। तेरह वर्ष की आयु में कहानी लेखन करना, प्रमाण है उनकी जन्मजात साहित्यिक प्रतिभा का।

शिवमूर्ति ने अपनी रचनाओं में उन अनुभवों, व्यक्तियों, पशुओं आदि का वर्णन किया है, जिनको उन्होंने अपने अंतःकरण में सँजो कर के रखा था। उनकी स्मृतियों के द्वार खुलते ही वे पात्र अपने आप ही शब्द रूप लेने लगते हैं। शिवमूर्ति की रचनाएँ उनकी अपनी निजी अनुभूतियों की उपज हैं, जिन्हें वे अपनी कल्पना से सजाकर, सँवारकर बड़ी शिद्दत और प्रामाणिकता के साथ अपनी रचना में प्रस्तुत करते हैं। उनका कहना है -**"मैं जब किसी यथार्थ दृश्य को देखता हूँ तो निष्पत्ति मेरी आँखों में कौंध जाती है। यानी यह सब जो हो रहा है उसका परिणाम क्या होगा? फिर शुरू होती है चरित्रों की खोज जो कथा को निष्पत्ति तक ले जाए।"**[11] शिवमूर्ति ने अपनी रचना प्रक्रिया में पात्रों के आविर्भाव को, घटना और दृश्यों के मिलाप को इस तरह एकाकार रूप दिया है कि वे पूर्ण रूप से वास्तविक नज़र आते हैं। शिवमूर्ति यहाँ यथा स्थान कल्पना का विस्तार पात्रों की प्रासंगिकता को दर्शाने के लिए होता है।

शिवमूर्ति अपने संबंध में और अन्य लेखकों के संबंध में मानते हैं कि किसी पात्र या चरित्र को देखकर लेखक वर्ग उसका वर्णन करते हैं। यह प्रक्रिया एक अंडे

के चूज़े में बदलने की प्रक्रिया के समान है। अपने लेखन के अंडे को सेना लेखक के विकास कार्य के लिए जिस तरह अनिवार्य है, उसी तरह अपने देखे - सुने को रचना का रूप देकर जन समुदाय को दिखाने-सुनाने की आकांक्षा भी रचना रचने का मूल कारण है। शिवमूर्ति के शब्दों में इसे इस प्रकार कहा गया है - **"मेरे मन में कहानी या रचना का मूल बिन्दु ऐसे ही किसी दृश्य, चरित्र या संवाद के देखने-सुनने से उभरता है। फिर इस मूल बिन्दु के चारों तरफ कहानी के अन्य अवयवों का ताना-बाना बुनना शुरू होता है। मेरे मन में कहानी कभी भी एकमुश्त मुकम्मल रूप में नहीं आती। ज्यों-ज्यों सोचने और लिखने की प्रक्रिया आगे बढ़ती है, कहानी आकार ग्रहण करती है। कभी-कभी तो मेरी कहानी के पहले और अंतिम ड्राफ्ट में मात्र दस प्रतिशत की ही समानता रह जाती है।"**[12] यहाँ देखा जाता है कि लेखक अपनी दैनंदिन जिंदगी में भी इतना सतर्क है कि वह अपनी रचना प्रक्रिया के लिए वह सामग्री जुटा लेता है, जिससे वह अपने सृजन कार्य को पूरा करता है। अपनी रचना में पात्रों, घटनाओं तथा संवादों के प्रति आकर्षण या उनसे जुड़ाव का कारण शिवमूर्ति अपनी फुफेरी बहन रंजना को मानते हैं, जो उन्हें रोज शाम के समय राजा, राजकुमार, राक्षसों के किस्से-कहानियाँ सुनाया करती थीं। आज भी वे किस्से-कहानियाँ उनकी स्मृति पटल पर विराजमान हैं। इसके साथ-साथ पिता द्वारा पढ़ाए गए 'रामचरितमानस' के पाठ भी उनकी रचना प्रक्रिया का अहम हिस्सा बन चुके हैं, जो उनके अचेत मन में कब घर कर गए, उन्हें पता ही नहीं चला।

शिवमूर्ति अपनी कहानियों को विश्वसनीय बनाने के लिए मुहावरों, लोकगीतों, लोकोक्तियों, अँग्रेजी शब्दों के देशी प्रयोग, अवधी भाषा का प्रयोग आदि प्रचुर मात्रा में करते हैं। ये सब उन्हें उनके आस-पास के समाज के लोगों से मिलते हैं। शिवमूर्ति की माँ के पास लोकगीतों की भरमार थी। जब तक वे जीवित थीं, तब तक रचना प्रक्रिया के लिए लोकगीतों का 'रॉ मटिरियल' उन्हीं से मिलता रहा। माँ के गुजर

जाने के बाद पत्नी तथा उनकी दोनों सालियों की मदद से उन्हें धारदार संवाद, बुझौवल और मज़ाक के 'इनपुट' मिलते रहे। गाँव में आज भी ऐसे गीतों के मुखड़े सुनाई देते हैं, जिनकी दो पंक्तियों में किसी का सारा दुख व्यक्त हो जाता है। यही शिवमूर्ति की रचना-प्रक्रिया की विशेषता है। इसके अलावा उनके द्वारा रचित स्त्री पात्र उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी उपलब्धि हैं। राधेश्याम सिंह अपने आलेख में लिखते हैं **- "चरित्र विनिर्मिति को शिवमूर्ति शब्दों में ठीक-ठीक उतार लेते हैं - यह उनकी कथा साधना है। इन चरित्रों में शिवमूर्ति द्वारा रची गईं नारियाँ उनकी उपलब्धि हैं। वे नारी मन के सजग विश्लेषक हैं। शिवमूर्ति के जीवन-संघर्ष में उनकी माँ, फिर बाद में पत्नी ने अपना सबकुछ दाँव पर लगाया। उनके भीतर के ममत्व, संघर्ष की क्षमता, प्रतिरोध का जज्बा, पीड़ा को सहने का उद्वेलन आदि सर्जना में सहायक तत्वों को शिवमूर्ति ने अपने एहसास का विषय बनाकर उन्हें प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाया है। यह विश्वसनीयता, एक साँचे में ढले होने के कारण स्त्री विमर्शकारों के यहाँ भी गायब है या संदिग्ध है।"**[13] स्त्री के मन को गहराई से समझ लेना यह शिवमूर्ति की खास विशेषता है। बचपन में माता का सानिध्य और जवानी में पत्नी का सानिध्य मिलने के कारण शिवमूर्ति स्त्री मन को अच्छी तरह से समझते थे।

कहना जरुरी है कि 'सिरी उपमा जोग' कहानी में आई लालू की माँ और कोई नहीं, बल्कि शिवमूर्ति की पत्नी सरिता जी हैं, जिन्होंने ससुराल में आकर सम्पूर्ण घर-गृहस्थी संभाली और शिवमूर्ति को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। सरिता जी जैसी स्त्री के सानिध्य से उनका जीवन सफल हो गया और वे एक उच्च सरकारी पद पर आसीन हुए। स्त्री के प्रति उनकी यही भावना निरंतर उनकी कहानियों में व्यक्त हुई है। पत्नी के अलावा एक और स्त्री उनकी असली जिंदगी में आयी थी, जिसने सखी बनकर हरदम उनकी सहायता की, नाम था - शिवकुमारी।

शिवकुमारी के संबंध में शिवमूर्ति बताते हैं **-"पतुरिया, वेश्या, बेड़िन ! ये शब्द पूरे देश में अपमान और तिरस्कार के प्रतीक हैं। इन्हें देखने की मेरी दृष्टि में जो परिष्कार हुआ है वह शिव कुमारी के सानिध्य के अभाव में शायद कभी न होता। जिन्हें कुलटा, पतित, डाइन या चुड़ैल कहते हैं ऐसी एक भी स्त्री से मेरा परिचय नहीं है। सोचता हूँ अगर ऐसे पात्रों का चित्रण करने की आवश्यकता हुई तो कैसे करूंगा?"**[14] सम्पूर्ण गाँव में वेश्या या नचनिया के रूप जानी जाने वाली शिवकुमारी शिवमूर्ति की बड़ी अच्छी दोस्त रहीं, जिसने आर्थिक रूप से शिवमूर्ति की हमेशा मदद की। इन तमाम स्त्री पात्रों के बीच घिरे रहने के कारण शिवमूर्ति की रचनाओं की स्त्री अंत तक अपनी लड़ाई खुद लड़ती नज़र आती है। उनकी रचनाओं में आने वाली स्त्रियाँ बड़े ही स्वाभाविक रूप से आती हैं। उनमें ज़रा सी भी कृत्रिमता नहीं दिखाई देती। जैसा स्त्री विमर्श शिवमूर्ति के यहाँ है, वह अन्यत्र नहीं दिखाई देता।

शिवमूर्ति की सृजन प्रक्रिया के संबंध में एक और पक्ष उभरकर सामने आता है, वह है उनकी दलित चेतना। स्वानुभव से सीखे गए शिवमूर्ति के जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ घटित हुईं, जिनमें उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग के लोगों का शोषण हो रहा था। जमींदारी उन्मूलन के समय ठाकुरों के कुछ खेत शिवमूर्ति के पिता के नाम हो गए थे। इस बात से नाराज होकर गाँव के ठाकुर ने उनके पिता को जान से मारने की साजिश रची, जिसके बारे में उनके पिता को खबर लग गई। समय रहते हुए पूरा परिवार जान बचाकर खेतों में रात भर छिपा रहा। उसी ठाकुर ने शिवमूर्ति का अपहरण भी करवा दिया था और उन्हें जान से मारने की साजिश भी रची थी, परंतु शिवमूर्ति बाल-बाल बच गए। इस जातीय आतंक का शिवमूर्ति के बालमन पर बहुत गहरा असर रहा। अपनी रचना-प्रक्रिया की प्रेरणा में इन घटनाओं के महत्व को शिवमूर्ति ने स्वयं स्वीकार किया है। वे कहते हैं **-"असुरक्षा और आतंक के ऐसे प्रसंगो ने, जो कई हैं और उम्र के अलग-अलग पड़ाव पर घटित हुए**

**हैं, मुझे अपना पक्ष चुनने में निर्णायक भूमिका निभाई होगी।"**[15] बाल सुलभ मन पर अपने बचपन के कई अच्छे-बुरे प्रसंगों का असर सकारात्मक या नकारात्मक रूप से रहता ही है। शिवमूर्ति के बाल मन पर भी रहा और इसे उन्होंने स्वीकार भी किया है।

शिवमूर्ति लोकजीवन से जुड़े अनेक प्रकार के प्रसंगों एवं दृश्यों को एकत्रित करते हैं और उसे एक माला में पिरो देते हैं। 'तिरिया चरित्तर', कहानी की पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए शिवमूर्ति ने कई अलग-अलग किरदारों को एकत्रित किया और फिर विमली को तैयार किया। गौतम शर्मा को देते हुए साक्षात्कार में उन्होंने खुद इस बात का समर्थन किया है। भट्ठे का अनुभव लेखक को पहले से ही था, क्योंकि उसके घर से एक कोस की दूरी पर वर्मा जी का भट्ठा था, जहाँ पर जाकर लेखक ने वहाँ की दिनचर्या देखी। अपनी नौकरी के दरम्यान भी लेखक को अलग-अलग भट्ठों पर जाना पड़ता था। भट्ठे का अपना अनुभव साझा करते हुए वे ओमा शर्मा से कहते हैं **- "हां, तो ऐसे ही मैं एक बार भट्ठे की जाँच करने गया था। वहाँ गया तो एक आदमी मड़ई में लेटा कुछ गा रहा था। वहाँ भट्ठे के नंबर दो वाले कागज तो नहीं मिले, लेकिन जो गीत मिला मैंने सोचा वह भी कम काम की चीज नहीं है......टुटही मड़हिया के हम हैं राजा, करीला गुजारा थोरे मा। तोर मन लागै न लागै पतरकी मोर मन लागल बा तोरे मा। ......एक दूसरे भट्ठे पर गए तो एक ट्रक आया था। पास की झोंपड़ी से एक लड़की निकली और ट्रक के मडगार्ड पर पैर रखकर ड्राइवर को धमकाते हुए बोली - अब आए हो सरऊ? वह ड्राइवर उतरा और उसे लेकर दूसरी ओर चला गया। यह बिंब मेरे भीतर रह गया। दूसरा बिंब हमारे घर काम करने वाली तेरह साल की लड़की का था, जिसे ससुराल जाने पर उसके जेठ ने भोगा था। तीसरा बिंब हमारी रिश्ते की ममेरी बहन थी, जिसे अवैध गर्भ ठहर गया था। उसकी पंचायत हुई थी। लड़की ने उस लड़के के बारे में बताया मगर**

**पंचों ने उसे नहीं माना, क्योंकि लड़के के पिता ने पंचों को खरीद लिया था। तो पंचायती अन्याय की बात मेरे मन में वहाँ से रह गयी।"**[16] इन सभी विषय वस्तुओं को शिवमूर्ति ने एक-एक करके जोड़ा और फिर 'तिरिया चरित्तर' जैसी बेमिसाल कहानी की रचना की। इन सभी बिंबों को एकाकार करना अपने-आप में एक बड़ी उपलब्धि है। ये सभी बिम्ब लेखक की रचना प्रक्रिया के मुख्य अंग बन गए। विमली की कहानी वास्तविक जीवन में घटने वाली वास्तविक कहानी है। लेखक ने भट्ठों पर या पंचायतों में जो कुछ देखा है, वही लिखा है। इसमे कुछ भी अवास्तविक नहीं है।

शिवमूर्ति किसी भी 'वाद' का समर्थन नहीं करते और न ही उसमें बँधते हैं। वे स्वतंत्र विचार रखने वाले व्यक्ति हैं। वे किसी विचारधारा के खूँटे से भी नहीं बँधे हैं। इस संबंध में उनका कहना है **- "विचारधारा रचना का प्राण है, लेकिन यह प्राण शरीर में कहाँ रहता है? क्या उसकी प्लेसिंग किसी एक स्थान पर सीमित होती है? वह तो पूरे शरीर में व्याप्त है। ऐसे ही विचारधारा पूरी रचना में व्याप्त रहती है। वह अलग से दिखाई दे तो यह रचनाकार की असफलता है। उसकी तासीर महसूस होनी चाहिए, वह दिखनी नहीं चाहिए।"**[17] इस कथन से स्पष्ट होता है कि शिवमूर्ति ने अपनी रचना-प्रक्रिया को किसी 'वाद' में बाँधकर नहीं रखा है। उनका बहुआयामी लेखन इस बात का गवाह है कि अपनी रचना-प्रक्रिया में वे बड़ी ही ईमानदारी के साथ अपने आस-पास के लोगों, अपने अनुभव और कौशल के दम पर एक ऐसी रचना पाठकों के सामने रखते हैं, जिसका पाठकों को बेसब्री से इंतज़ार रहता है।

'सृजन का रसायन' पुस्तक जीवनानुभवों से भरपूर साहित्य के अनेक प्रश्नों से संवाद करती है। यह पुस्तक बताती है कि आज के लेखक की चिंता किस बात को लेकर होनी चाहिए। आज जो भी आंदोलन समाज की बेहतरी के लिए चलाये

जा रहे हैं, वे बड़े ही मूल्यवान हैं। उन्हें प्रज्ज्वलित रखना आज के लेखक का सबसे बड़ा कर्तव्य है। दूर खड़े होकर ऐसे संघर्षशील लोगों के प्रति केवल कागजी सहयोग दिखाना ही पर्याप्त नहीं है। उनके सामने बहुत बड़ी चुनौती खड़ी होकर ललकार रही है। जागरण और प्रतिरोध के इस अभियान में लेखक को सशरीर शामिल होना होगा, ताकि झेलते-भोगते जन की पीड़ा उसके लेखन में जीवंतता के साथ आ सके और आन्दोलन में लगे लोगों को अपने आन्दोलन के लिए शक्ति मिल सके।

## 4.2 शिवमूर्ति का यात्रा साहित्य

मानव की प्रकृति गतिशीलता रही है। मानव जाति के प्रति प्रेम-भाव, प्रकृति और विभिन्न संस्कृतियों के प्रति जिज्ञासा उसे सतत चलायमान बनाए रखते हैं। मानव की यह गतिशीलता उसे अधिक जानने और सीखने के लिए प्रेरित करती है, जिसकी पूर्ति वह 'यात्रा' द्वारा करता है। यात्राएँ, मानव व्यक्तित्व का सहज निर्माण करती है। अज्ञात के प्रति जिज्ञासा का भाव उसे नए और दूरस्थ स्थानों की यात्रा करने के लिए प्रेरित करता है। जब मनुष्य अपने यात्रा के अनुभवों को लिपिबद्ध करता है, तब यात्रा वृत्तांत बनता है। यात्रा अर्थात् प्रवास का अर्थ होता है - अपने घर से दूर वास करना। वृत्तान्त का आशय है – एक वृत्त का अंत अर्थात् यात्रा के प्रारंभ बिंदु से यात्रा शुरू करके विभिन्न स्थानों की यात्रा के बाद पुनः प्रारंभ बिंदु पर पहुँचने से एक वृत्त पूरा होता है। इस प्रकार दुनिया का चक्कर या वृत पूरा करना – यात्रावृत या यात्रा वृत्तान्त है।

किसी स्थान या देश की यात्रा से स्थान या देश विशेष की संस्कृति, खान-पान और रीति-रिवाज़ आदि की जानकारी तो मिलती ही है, साथ ही प्रकृति या जीवन के विभिन्न पक्षों को समझने की नयी दृष्टि भी प्राप्त होती है। यात्राएँ एक धर्म को दूसरे धर्म के निकट लाती हैं। एक दूसरे को जानकर लोग आपस में

सौहार्दपूर्ण व्यवहार करते हैं। यात्रा करना मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति है। अपने जीवन काल में हर मनुष्य यात्रा अवश्य करता है। जब लेखक अपनी यात्रा के दौरान अपने देखे गए स्थानों का वर्णन अपने आलेख में करता है, तब उस साहित्य को यात्रा साहित्य कहते हैं। यात्रा साहित्य का उद्देश्य है - लेखक की यात्रा के अनुभवों को पाठकों के साथ साझा करना और पाठकों को भी उस स्थान पर जाने के लिए प्रेरित करना। जिन स्थानों की लेखक यात्रा करता है, उन स्थानों की प्राकृतिक विशिष्टता, वहाँ की भाषा, तौर-तरीके, संस्कृति, सामाजिक संरचना आदि के बारे में जानकारी यात्रा साहित्य के माध्यम से ही मिलती है। आधुनिक कथेतर गद्य साहित्य में यह बहुत ही लोकप्रिय विधा है। अनेक यायावरों ने अपने यात्रा वृतांतों में अपनी यात्रा के अनेक रोचक वर्णन प्रस्तुत किए हैं। यदि विदेशी यात्रियों के नाम लिए जायें तो इनमें ह्वेनसांग, फ़ाहियान, मार्कोपोलो बर्नियर, अल बरौनी आदि के नाम प्रमुख हैं। आधुनिक काल में भी अनेक यात्राकार हुए हैं, जिन्होंने अपने यात्रा वृतातों से यात्रा साहित्य को समृद्ध किया है, जिनमें राहुल सांकृत्यायन, सत्यदेव परिव्राजक, रामवृक्ष बेनीपुरी, मोहन राकेश, नासिरा शर्मा आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस कड़ी में शिवमूर्ति का नाम भी जोड़ा जा सकता है। शिवमूर्ति ने दो यात्रा वृतांत लिखे हैं - 'जैक लंडन के देश में' और 'लू शुन के देश में'। इन दोनों यात्रा वृतांतों को साहित्यिक यात्रा वृतांतों की कोटि में रखा जा सकता है।

### 4.2.1 'जैक लंडन के देश में' का विवेचन-विश्लेषण

शिवमूर्ति को भ्रमण करने का बहुत ही शौक है। यह शौक नशा तक है, इसलिए वे देश-विदेश के दुर्गम स्थानों पर पहुँच जाते हैं। 'जैक लंडन' जैसे लेखक की वर्णन क्षमता से प्रभावित होकर लेखक शिवमूर्ति ने वहाँ की स्थितियों का वर्णन करके अपने वृतांत में सौंदर्य उपस्थित करने में सफलता पाई है। एयरपोर्ट से लेकर

होटल में चेक इन करने, वहाँ पर उपयोग करने वाले फोन के सिमकार्ड से लेकर बहुत सारी बारीकियों का उन्होंने वर्णन किया है। 'इमिरेट्स' एयरलाइन की एयरहोस्टेस के सिर पर रखी लाल पगड़ी को देखकर उन्हें सिंदबाद कहानी की मरजीना याद आती है। सान फ्रांसिस्को एयरपोर्ट पर पहुँचने के बाद जब उनकी पत्नी अपना पर्स लाउंज में भूल आई, तब उन्हें बहुत डर लगने लगता है, क्योंकि उनका पासपोर्ट और जरूरी कागजात उसी में थे। आधे घंटे के बाद जब शिवमूर्ति उसे लेने लाउंज में गए तो उन्होंने पाया कि उनका पर्स वहीं पर सुरक्षित था। यह देखकर वे चौंक जाते हैं, क्योंकि उस समय आस-पास बहुत सारे लोगों की भीड़ थी। वहाँ भारतीयों की संख्या बहुत अधिक थी। वे हैरान हो जाते हैं कि विदेशी भूमि पर आकर भारतीय अपना स्वभाव कैसे भूल गए? पर्स भूलने की घटना और उसे सुरक्षित पा लेने की घटना लेखक के लिए अविस्मर्णीय  थी। शायद भारत में यह संभव न होता।

लेखक शिवमूर्ति होटल में पहुँचने के बाद फिर सैर के लिए निकलते हैं। अपनी टूअर गाइड एनी-डा से उन्हें काफी जानकारी मिलती है। वह जब ओकलैंड के बारे में बताती है, तब शिवमूर्ति जैक लंडन के बारे में पूछते हैं। इसके जवाब में वह शिवमूर्ति से कहती है **-"जब से मैं गाइड का काम कर रहीं हूँ आप पहले एशियाई और पांचवें विश्व पर्यटक हैं, जिन्होंने जैक लंडन के बारे में पूछा है। ड्यूटी के बाद मैं आपको वहाँ ले जा सकती हूँ।"**[18] इस उद्धरण से इस तथ्य का संकेत मिलता है कि आज कल पढ़ने वालों की संख्या या लेखकों को जानने की उत्कंठा काफी घटती जा रही है। ऐसे समय में लेखक को अपने प्रिय लेखक के बारे में जानने तथा उसके स्मारक तक पहुँचने की इच्छा को बहुत बड़ी बात माना जा सकता है। जैक लंडन के स्मारक को देखकर लेखक धन्य हो जाता है। वह सोचने लगता है कि अमेरिका जैसे देश ने कितने सम्मान के साथ अपने लेखक की

यादगार को सँजोकर रखा है। यहाँ लेखक के कहने का अभिप्राय यह है कि काश, ऐसा ही हमारे देश में भी होता ! लेखक शिवमूर्ति इस तथ्य को उद्‌घाटित करना चाहते हैं कि भारत देश में भी एक से एक लेखक पैदा हुए हैं, लेकिन यहाँ कितने लेखकों के स्मारक बने हैं? यह प्रश्न चिह्न है।

**4.2.2 'लू शुन के देश में' का विवेचन-विश्लेषण**

बचपन से ही शिवमूर्ति को चीनियों के बारे में जानने की बड़ी उत्कंठा थी। शिवमूर्ति जब छठीं कक्षा में थे, तब सन् 1962 में भारत-चीन युद्‌ध हुआ था। इस युद्‌ध के बाद 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' का नारा बहुत कम सुनाई देने लगा। थोड़ा बड़ा होने पर शिवमूर्ति ने चीन की जिज्ञासा के कारण चीनी यात्रियों - फ़ाहियान, हवेनसांग, चेयरमेन माओ और चीन की दीवार के बारे में पढ़ा। यह सब पढ़कर चीन के बारे में लेखक की जिज्ञासा और बढ़ी। इसके साथ-साथ जब शिवमूर्ति ने 'लू शुन' को पढ़ा तो उन्हें चीन के प्रति और नजदीकी महसूस होने लगी। इस संबंध में उन्होंने अमेरिका के यात्री मित्रों के साथ चीन की यात्रा करने की इच्छा प्रकट की, किन्तु किसी ने भी साथ चलने का उत्साह नहीं दिखाया। अंत में मन बनाकर शिवमूर्ति अपनी पत्नी सरिता जी के साथ अकेले ही इस यात्रा पर निकलते हैं।

चीन की यात्रा के दौरान चीनी लोगों को, उनके अभिवादन को, उनकी कद-काठी को देखकर लेखक के मन में यह विचार आया कि चीनियों ने इतनी क्रांति कर दी है कि अब वे अपने जीन्स में भी क्रांति कर रहे हैं क्या? इतना ही नहीं, लेखक की उत्कंठा उसे चीनियों के गाँव में भी ले गई, यह जानने के लिए कि उनका जीवन भारत जैसा है या नहीं। भारत में उगने वाले कोई पेड़ भी वहाँ नहीं

थे, ऐसा लेखक ने महसूस किया। लेखक को आश्चर्य तो तब हुआ, जब उसे वहाँ एक भी चिड़िया नज़र नहीं आई। इस संदर्भ में उनकी गाइड सिन्डी लेखक से कहती है - **"यह कहते हुए मुझे बड़ी शर्म महसूस हो रही है कि हमारे देश की सारी चिड़ियाँ हमारे पूर्वजों के पेट में चली गईं। अब हम उन्हें देखने, उनकी बोली सुनने के लिए तरसते हैं। अपने बच्चों को किताबों में उनके चित्र दिखाते हैं। अगर आपको हमारे देश में कहीं कोई चिड़िया दिख जाए तो समझिए अपनी जान जोखिम में डालकर वह चीन में रह रही है।"**[19] लेखक यहाँ महसूस करता है कि सिन्डी ने जो कहा है, वह एकदम सच है, क्योंकि बड़े-बड़े फूलों से लदे पार्क में लेखक को केवल एक गौरैया और आगे जाकर एक कौवा दिखाई देता है। सच में ये सारे प्राणी विश्व की सबसे बड़ी आबादी वाले देश की जनता के पेट में यदि जाएँगे, तो उनकी प्रजातियाँ कैसे जीवित रहेंगी? हमें नहीं भूलाना चाहिए कि पेड़-पौधे, कीड़े मकोड़े और पशु पक्षी हमारे वातावरण के रक्षक होते हैं यदि हम उनका भक्षण करेंगे तो प्रकृति हमारा भक्षण करना प्रारंभ कर देगी। वह कर भी रही है। इस उद्धरण से लेखक हमारा ध्यान इसी ओर खींचता है। यह स्वाभाविक है कि जब हम यात्रा के दौरान अपने देश की तुलना उस देश से करते हैं और अपने देश को बेहतर स्थिति में पाते हैं, तब मन खिल उठता है। लेखक के साथ भी यही हुआ है।

शिवमूर्ति ने काफी सारी यात्राएँ की हैं और वे हमेशा सुख-सुविधा पूर्ण ही रहीं हैं, किन्तु इस यात्रा के दौरान लेखक बहुत नाराज़ भी होता हुआ दिखता है। उसके होटल का नाम 'जोयस्ट' रहता है, लेकिन वहाँ पर कोई 'जॉय' यानी खुशी नहीं मिलती। होटल के कमरे में जरूरती सामान नहीं रहता। नाश्ता बिलकुल फीका-फीका रहता है। यह सब देखकर, न सहकर लेखक टूर मैनेजर से इसकी शिकायत करता है। इसके पश्चात् ज्यादा तो नहीं, लेकिन थोड़ा बदलाव जरुर आता है। यह मानवीय स्वभाव है कि जब हम पैसे देकर कोई चीज़ खरीदते हैं, तब यह चाहते

हैं कि वह थोड़ी बेहतर हो। अगर बेहतर न हो तो यह जरूरी है कि हम उसके खिलाफ आवाज़ उठाएँ। इन सब के कारण और सावधानी बरतने पर भी धोखा खाने पर लेखक और उनकी पत्नी का मन इस यात्रा से खट्टा हो जाता है।

इस यात्रा के दौरान लेखक को यह भी पता चलता है कि बढ़ती आबादी पर नियंत्रण पाने के लिए चीन ने वर्ष 2008 से पहले यह कानून बनाया था कि यदि कोई चीनी पति-पत्नी दूसरा बच्चा पैदा करना चाहते हैं तो उन्हें सरकारी खजाने में 8 से 20 हजार तक युवान जमा करना होगा। इस तरह की जोर-जबरदस्ती से सरकार ने कुछ हद तक आबादी पर नियंत्रण तो पा लिया, किन्तु लड़का-लड़की के अनुपात में फर्क आ गया। भारत के लोगों की मानसिकता की तरह वहाँ पर भी लोगों को लड़के ही चाहिए। इस मानसिकता पर लेखक कहता है **-"चीन पारंपरिक रूप से किसानों का देश रहा है, जहाँ पिता की जगह खेती का काम करने के लिए लड़के की जरूरत महसूस की जाती रही है। इसी के चलते लड़का प्राप्त करने की प्रबल इच्छा चीन में आज भी बरकरार है। इसी के चलते चीन में लड़का और लड़की का अनुपात 3.2 हो गया है।"**[20] उद्धरण से साफ पता चलता है कि चीन और भारत में लड़का-लड़की की मानसिकता एक जैसी है। यह कोई नहीं समझना चाहता है कि वर्तमान की चिंता में हम लोग अपना भविष्य अंधकारमय बना रहे हैं। लड़का-लड़की के इस भेदभाव ने दोनों देशों को इस कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है, जहाँ वर्तमान समय में यदि कोई ठोस कदम न उठाया गया तो भविष्य एकदम नारकीय हो जायेगा।

लेखक बताता है कि चीन में तलाक के मामले भी ज्यादा हैं। कब किसका तलाक हो जाएगा, कहा नहीं जा सकता। इसलिए पति-पत्नी अपनी कमाई का अकाउंट अलग-अलग रखते हैं और परिवार में होने वाला खर्च आधा आधा बाँट लेते हैं। सिन्डी का यह भी मानना है कि इकलौती संतान होने पर वह बिगड़ जाती

है। यदि परिवार में दो बच्चे हों तो दोनों का तालमेल अच्छा बना रहता है। चीन के कानून की वजह से सिन्डी को भी एक ही बच्चा है और वह बुरी सोहबत का शिकार हो चुका है। ऐसी स्थिति में कहा जा सकता है कि चीन और भारत के लोगों में जहाँ अंतर है, वहीं कुछ समानताएँ भी हैं। चीन की यात्रा के दरम्यान शिवमूर्ति ने चीन की हर छोटी-बड़ी जानकारी हासिल की है। उनका यह यात्रा वृतांत उनके पाठकों के लिए बहुत कुछ जानकारी देने वाला है, जैसे कि चीन में सारी चीजें भारत से महँगी हैं, वहाँ की लडकियाँ अपने लिए वर का चुनाव करने में दिल से नहीं दिमाग से काम लेती हैं, वहाँ की गलियाँ लखनऊ और वाराणसी की याद दिलाती हैं, कही भी वहाँ कुते नहीं दिखाई देते आदि। ये सभी जानकारियाँ इस बात का प्रतीक हैं कि यात्राकार ने वहाँ की हर चीज पर अपनी निगाह डाली है और चीन को भरपूर सामने लाने की कोशिश की है।

### 4.3 शिवमूर्ति के साहित्य का नाट्य रूपांतरण

नाट्य रूपांतरण की प्रक्रिया साहित्य में पहले से ही होती रही है। अच्छी कहानियों और उपन्यासों के कई नाट्य रूपांतरण हुए हैं। इनमें सबसे चर्चित मन्नू भंडारी का 'महाभोज' रहा है। कहानी एवं उपन्यास में प्रस्तुत कथा-वस्तु, पात्र, परिकल्पना, विचार आदि को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने के लिए नाट्य-रूपांतरण का सहारा लिया जाता है। नाट्य-रूपांतरण के अंतर्गत कहानी और उपन्यास के कथानक, पात्र चित्रण, देश-काल-वातावरण, संवाद आदि को अभिनय द्वारा रंगमंच पर मंचित किया जाता है। यहाँ एक तरह की स्वतन्त्रता होती है कि नाट्य-रूपांतरणकार अपने अनुसार कृति में परिवर्तन कर सकता है, किन्तु परिवर्तन अनावश्यक नहीं होना चाहिए। कहानी के नाट्य रूपांतरणकार सफ़दर हाश्मी का

माननना है -**"किसी महान और श्रद्धेय लेखक की कहानी का मंच के लिए रूपांतरण करना काफी जोखिम भरा काम है। दर्शक रूपांतरित कृति से भी मूल कहानी की कलात्मक उत्कृष्टता की अपेक्षा  करते हैं। ऐसी कठिन परीक्षा का ख्याल मात्र ही रूपांतरणकार को हतोत्साहित करने के लिए काफी है।"**[21] रूपांतरणकार को ईमानदारी के साथ दृश्य माध्यम से नाटक में वह भाव या अनुभूति पैदा करनी होती है, जो पाठक को कहानी में पढ़ने से मिली होती है।

कथाकार शिवमूर्ति के साहित्य में ग्राम्य-संस्कार के दर्शन भली-भाँति होते हैं। ग्राम्य-संस्कार से आशय मात्र लोक-संस्कृति के जीवन मूल्यों के पक्ष से ही नहीं है, बल्कि धूर्तता से भरे राजनीतिक और धार्मिक छल से भी है, जो भारतीय ग्रामीण समाज को भ्रष्ट होने वाली व्यवस्था से जोड़ रहा है। शिवमूर्ति के साहित्य की यही विशेषता रूपांतरण की ओर प्रेरित करती है। राजनीतिक और धार्मिक भ्रष्ट व्यवस्था को दृश्य माध्यम में प्रस्तुत करने के पीछे रूपांतरणकार का यही उद्देश्य रहता है कि इस समस्या को अधिक लोगों तक, प्रभावशाली ढंग से पहुँचाया जा सके। अब तक शिवमूर्ति की कई कहानियों का सफल मंचन हो चूका है, जैसे - कसाईबाड़ा, तिरिया चरित्तर, कुच्ची का कानून आदि। ये सभी मंचन दर्शकों के बीच काफी चर्चा में रहे।

### 4.3.1 कहानियों का नाट्य रूपांतरण

शिवमूर्ति हिन्दी साहित्य जगत में सर्वाधिक पढ़े जाने वाले कथाकार हैं। कम लिखकर वे सबसे ज्यादा चर्चा में रहे। 'कसाईबाड़ा', 'तिरिया चरित्तर', 'अकाल-दंड', 'कुच्ची का कानून' आदि कहानियाँ पाठक को मंत्रबिद्ध करने में समर्थ हैं। पाठक शुरू से लेकर अंत तक इसके बहाव में बहता चला जाता है। सत्तर-अस्सी के

दौर में समकालीन ग्रामीण जीवन की आधारभूमि पर ग्रामीणों की जीवन व्यथा को अपने कथा-साहित्य में गहरी संवेदना के साथ शिवमूर्ति प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानियों में छिपी है संश्लिष्ट नाटकीयता, जिसे नाट्यरूपांतरण के दरम्यान एक-एक दृश्य में देखा जा सकता है। शिवमूर्ति की कहानियों में आए पात्र जीवंत और मूर्तिमान लगते हैं। इसी कारण समूचे भारत के जाने-माने रंगकर्मियों को इनकी कहानियाँ आकर्षित करती हैं तथा नाट्य रूपान्तरण के लिए प्रोत्साहित करती हैं। 'कसाईबाड़ा' कहानी का नाट्य रूपान्तरण देश की अनेक नाट्य मंडलियों द्वारा किया गया है। इस नाटक के हज़ार से भी अधिक प्रयोग हो चुके हैं। इस कहानी को नाटक के रूप में शिवमूर्ति ने भी लिखा है। नाट्यकर्मियों का मानना है कि शिवमूर्ति की कहानियों का बड़ी आसानी से नाट्य रूपांतरण किया जा सकता है, क्योंकि इनमें संवाद बने बनाए मिल जाते हैं और इनका चित्रांकन इतना स्पष्ट होता है कि कलाकारों को इनमें छिपे भावों को अभिव्यक्ति देने में ज्यादा परिश्रम करना नहीं पड़ता।

'कसाईबाड़ा' कहानी एक राजनीतिक कहानी है, जिसमें लेखक ने गाँव के लोगों के भोलेपन का फायदा उठाने वाले लोगों का परदाफाश किया है। कहानी का आरंभ गाँव में शनिचरी के धरने पर बैठने की खबर फैलाकर होता है, किन्तु इसके मंचन में, आरंभ में ही बदलाव किया गया है। मंचन का आरंभ गाँव की पगडंडी पर भागती 16-17 साल की लड़की से होता है, जिसके पीछे मुश्टंडे पड़े रहते हैं। लड़की के मंच से ओझल होते ही भयानक दिखनेवाले गुंडों पर मंच की रोशनी पड़ती है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि इन गुंडों को दर्शक ठीक से देख सकें कि आज की वास्तविक स्थिति क्या है? असल में 'कसाईबाड़ा' का कथ्य इतना सशक्त है कि इसके सम्प्रेषण के लिए सेट आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती। बड़ी आसानी से इसका मंचन किया जा सकता है।

महिला जागृति के लिए काम करने वाली पटना की संस्था 'कोरस' ने शिवमूर्ति की चर्चित कहानी 'कुच्ची का कानून' का मंचन किया। पहली बार इस नाटक का आयोजन 'प्रेमचंद साहित्य संस्थान' और 'अलख कला समूह' ने किया। इस नाटक को देखने के लिए वरिष्ठ कथाकार मदन मोहन आए थे। नाटक के प्रस्तुतीकरण के बाद कथाकार मदन मोहन ने नाटक की निर्देशिका एवं कुच्ची का किरदार मंच पर बखूबी निभाने वाली 'कोरस' संस्था की सचिवा समता राय को स्मृति चिह्न देकर उनके अभिनय की प्रशंसा की। 'कुच्ची का कानून' कहानी एक ऐसी विधवा स्त्री की कहानी है, जो गाँव के गहरे अंधकूप से बाहर निकलती है और अपनी कोख पर अपना अधिकार माँगती है। वह कहती है कि कोख नारी का है और यह अधिकार उसे मिलना चाहिए। यह कहानी नारी जगत की प्रतिनिधि वेदना है। आज समाज का शादी सिद्धांत असफल हो गया है। ऐसे में स्त्री को गर्भ की स्वतंत्रता देनी होगी। इसमें समाज में जो दो तरह के व्यक्ति आएँगे, एक वे जिन्हें पिता का नाम प्राप्त है और दूसरे वे जिनके पिता का नाम अज्ञात है, दोनों को नागरिकता देनी होगी। इससे नारी सशक्त होगी। यही कहानी में भी दिखया गया है और नाटक में भी।

'तिरिया चरित्तर' नाटक में कहानी से अलग जाकर ऐसा कोई बदलाव नहीं किया गया है, जिससे इस कहानी की साहित्यिकता या प्रस्तुति संरचना पर कोई सवाल उठे। फिर नाटक भी तो साहित्य का एक अंग है, क्योंकि संवाद से अभिव्यक्त विचार और उसके पात्र सार तत्व का गठन करते हैं। 'तिरिया चरित्तर' को केंद्र में रखकर लिखा गया नाटक भी कहानी की ही तरह विमली की पीड़ा से अलग नहीं है। स्त्री अस्मिता और स्वतंत्रता जैसे महत्वपूर्ण प्रश्नों से जुड़ने वाला यह कथानक उस पितृ सत्तात्मक समाज से मुठभेड़ करता है, जिसके चंगुल से निकलने की नायिका 'विमली' हिम्मत दिखाती है। 'तिरिया चरित्तर' के अंत में नायिका 'विमली'

को दाग दिया जाता है। उसके माथे में गर्म कलछुल से निशान बना दिया जाता है जिंदगी भर के लिए। इस घटना के बाद समाज के चेहरे-चेहरे पर बहुत बड़ा सवाल खड़ा हो जाता है। यही कहानी का भी उद्देश्य है और नाटक का भी। यह कहानी जहाँ ख़त्म होती है, वास्तव में वहीं से शुरू होती है।

### 4.4 शिवमूर्ति के साहित्य का सिने रूपांतरण

लेखन और फिल्म निर्माण दो अलग-अलग रचना-प्रक्रियाएँ हैं। लेखन व्यक्तिगत होता है और धन इसमें गौण होता है, जबकि फिल्म निर्माण सामूहिक रचना-कर्म है। फिल्म निर्माण में अपार धनराशि की आवश्यकता होती है। इसमें काम करने के लिए अभिनेताओं, गायकों, वादकों सहित निर्देशक, निर्माता, छायाकार, मेकअप आर्टिस्ट आदि की जरूरत होती है। कथाकार यहाँ केवल सहयोगी की भूमिका निभाता है। सम्पूर्ण फिल्म निर्देशक के मार्गदर्शन पर चलती है। इसलिए साहित्यिक कृतियों के सिने रूपांतरण के लिए ऐसे निर्देशक की आवश्यकता होती है, जिसका साहित्य से परिचय हो और वह उस कृति में पूर्ण रूप से समाहित होकर उस पर फिल्म निर्माण करे।

एक श्रेष्ठ कथाकार की सबसे बड़ी उपलब्धि यह होती है कि उसकी कृति पर फिल्म बने, जो ज्यादा से ज्यादा लोगों तक एक साथ पहुँचे। हिंदी के कई कथाकारों की कहानियों और उपन्यासों पर फिल्में बन चुकी हैं। इनमें प्रेमचंद, भगवती चरण वर्मा और मन्नू भंडारी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। शिवमूर्ति ने भी अपने मन में यह अभिलाषा रखी थी कि कम से कम उनकी रचनाओं पर एक फिल्म का निर्माण हो। शिवमूर्ति की कहानियों को पटकथा के रूप में बदलना बड़ा ही सहज काम है, क्योंकि इनके यहाँ वर्णनात्मक शैली की तुलना में संवाद और नाटकीय शैली का प्रयोग अधिक हुआ है। इस कारण इनकी रचनाओं का सहज रूप

से फिल्मांकन किया जा सकता है और फिल्म की पटकथा को बड़े ही सरल और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है।

### 4.4.1 कहानियों का सिने रूपांतरण

शिवमूर्ति का साहित्य ग्रामीण परिवेश से सम्बद्ध है। उनके कथा-साहित्य में गाँव अपने पुरे यथार्थ रूप में उभरकर सामने आया है। गाँव को सबसे ज्यादा प्रभावित करती है वहाँ की राजनीति, खासकर पंचायती चुनाव, ब्लॉक प्रमुख आदि का चुनाव। शिवमूर्ति गाँव का सघनतम वर्णन अपने कथा-साहित्य में करते हैं। वैसे तो गाँव का वर्णन अन्य कथाकारों की रचनाओं में भी हुआ है, लेकिन शिवमूर्ति के साहित्य में दलित, स्त्री, अल्पसंख्यक और किसान जीवन की मूलभूत समस्याओं का जीवंत चित्र मिलता है, जो बेजोड़ है। यही कारण है कि उनकी कहानियों का सिने-रूपांतरण किया जा सका है। शिवमूर्ति के कथा साहित्य की विशेषता यह है कि वे खुद भी हमेशा गाँव से जुड़े रहे हैं। उनका लेखन स्वानुभूत है, परानुभूत नहीं। वे समस्याओं को उनकी गहराई में जाकर अलग तरह से देखते और लिखते हैं। इसी कारण वह पाठक को ज्यादा छूता और प्रभावित करता है।

शिवमूर्ति की कहानियों का सिने रूपांतरण बड़ी आसानी से किया जा सकता है, क्योंकि उनकी अधिकतर कहानियों में मौजूद हैं - दमदार पटकथा के तत्व। 'तिरिया चरित्तर' शिवमूर्ति की बड़ी ही प्रसिद्ध कहानी है। इस कहानी पर विख्यात सिने निर्माता बासु चटर्जी ने सन् 1994 में फिल्म बनाई। इस फिल्म में मशहूर कलाकारों का समावेश था। इन नामों में प्रमुख हैं - नसीरुद्दीन शाह, ओम पुरी, एम. एस. जहीर, राजेश्वरी आदि। इस फिल्म के निर्माण में दूरदर्शन और 'राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम' का आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ। कहानी और फिल्म में काफी अंतर होता है। कहानी एक साथ एक पाठक के संग आगे बढ़ती है, जबकि

फिल्म देखने के लिए विशाल जन समुदाय एक साथ इसे देखता है और तुरंत अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। निर्देशक बासु चटर्जी ने मूल कृति की आत्मा के साथ न्याय किया है, परंतु कुछ कमी रह गयी थी इस फिल्म में, जिसके कारण लेखक शिवमूर्ति को यह फिल्म पसंद नहीं आई। इसके कई कारण हैं। इस संदर्भ में शिवमूर्ति खुद अपने एक आलेख में कहते हैं -**“ओम पुरी सहित सारे कलाकारों ने बहुत मेहनत की। लेकिन जब 95 में दिल्ली में के सभागार में इसका प्रथम प्रदर्शन हुआ तो जिसे ‘प्रभाव’ कहते हैं, वह वैसा महसूस नहीं किया गया, जैसा कहानी पढ़कर लोगों ने महसूस किया था।”**[22]

शिवमूर्ति ने इस फिल्म में काफी तकनीकी कमियाँ देखीं। फिल्म की शुरुवात में विमली के साथ बकरी देखी जाती है। वह लगभग एक महीने का बकरी का बच्चा है। और आगे की फिल्म में जिस बकरी को विमली भट्टे पर लेकर जाती है वह काफी बड़ी है। इसका कारण है कि भट्टे की शूटिंग इलाहाबाद में हुई थी और विमली के घर की शूटिंग मुंबई में। मुंबई में बासु जी को वयस्क बकरी नहीं मिली तो उन्होंने छोटी बकरी से काम चला लिया। इसी तरह फिल्म में विमली की माँ का किरदार हृष्ट-पुष्ट महिला निभाती है, जबकि कहानी में विमली की माँ को बीमार और मजदूर तबके की औरतों में गिना गया है। यहाँ तक कि फिल्म में पहनी हुई उसकी साड़ी काफी कीमती है और वह उल्टे पल्ले में पहनी गयी है। उल्टा पल्ला अवध के गाँव में आज भी नहीं ओढा जाता, फिर फिल्म में यह क्यों दिखाया गया? यह बड़ा सवाल है। विमली का ससुर बिसराम कहानी में बड़ा ही मामूली सा आदमी बयान किया गया है, किन्तु फिल्म  में उसे बड़ा ही महँगा कुर्ता पहनाकर प्रस्तुत किया गया है। इस कारण पात्र की विश्वसनीयता पर काफी सवाल खड़े हो गए। इस तरह कथानक में कोई महत्वपूर्ण बदलाव किए बिना भी फिल्म का प्रभाव घट गया। जिन लोगों ने ‘तिरिया चरित्तर’ कहानी को नहीं पढ़ा था और पहली

बार फिल्म के रूप में उसे देखा, उन्हें यह फिल्म काफी पसंद आयी, किन्तु जिन लोगों ने कहानी पढ़ी थी और बाद में फिल्म भी देखी, उन्हें यह फिल्म पसंद नहीं आयी।

'सिरी उपमा जोग' कहानी पर वरिष्ठ नाट्यकर्मी प्रदीप घोष ने 'मरीचिका' नाम से एक फिल्म बनाई। इस फिल्म में प्रदीप घोष ने नायक की भूमिका निभायी और फिल्म निर्माण का व्यय उन्होंने ही वहन किया। जब यह कहानी सन् 1986 में 'सारिका' पत्रिका में छपी थी और प्रदीप घोष जी ने उसे पढ़ा तो उन्हें लगा था कि यह कहानी मानवीय संवेदनाओं से भरपूर है और यह जन मानस को बड़ी आसानी से ग्राह्य भी हो सकती है। यह सोच कर प्रदीप घोष ने इस कहानी की पटकथा लिखी डाली और फिल्म की शुरुआत की। यह सब करने के बाद जब घोष जी ने यह पटकथा शिवमूर्ति को देकर उनसे उस पर फिल्म बनाने की अनुमति माँगी, तब शिवमूर्ति ने साफ मना कर दिया। शिवमूर्ति चाहते थे कि फिल्म की पटकथा और बेहतर लिखी जाय। साथ ही वे यह भी चाहते थे कि फिल्म का स्तर थोडा ऊँचा रहे। प्रदीप घोष के लिए ये दोनों सुझाव संभव नहीं थे, क्योंकि प्रदीप घोष इस कहानी पर बनने वाली फिल्म की ज्यादा से ज्यादा शूटिंग कर चुके थे। उनके पास इतने पैसे भी नहीं थे कि शिवमूर्ति द्वारा बताए गए सुधार उसमें किये जा सकें। लिहाजा शिवमूर्ति को बिना बताए ही फिल्म निर्माण का काम पूरा कर लिया गया।

बाद में चलकर जिस दिन फिल्म का प्रिमियर शो लखनऊ में होने वाला था, उस दिन प्रदीप घोष और उनकी पूरी टीम डरी हुई थी। यह तथ्य इस उद्धरण से समझा जा सकता है **-"अब फिल्म का प्रिमियर शो होना था। हम लोगों ने रवीन्द्रालय (लखनऊ) में इसका प्रदर्शन करना तय किया था। डर था तो बस शिवमूर्ति जी का कि कहीं पता चल गया हो और वह वहाँ आ जाएँ तो पता नहीं क्या आफत आए। किताब में शिवमूर्ति जी की तस्वीर देख रखी थी। हमारी पूरी**

**टीम बाहर गेट पर अतिथियों के आदर-स्वागत में जुटी थी। पर हमारी आँखें दूर से आते अतिथि का मिलान उनके फोटो से कर रही थीं। अब तक शिवमूर्ति जी न दिखे तो लगा जैसे तूफान से घिरी हमारी नाव पाड़ (तट) को छू गयी है।"**[23] इस शो में शिवमूर्ति नहीं आए थे, यह देखकर प्रदीप घोष की जान में जान आई। दर्शकों ने इस फिल्म को पसंद किया। अखबारों की सुर्खियों में भी यह फिल्म रही, किन्तु इस फिल्म को बनाने में प्रदीप घोष और उनकी टीम को कितने पापड़ बेलेने पड़े थे, यह शिवमूर्ति को प्रदीप घोष ने बहुत बाद में बताया। सच जानकार न शिवमूर्ति नाराज हुए और न ही उन्होंने उनसे कुछ कहा। सच जानने के बाद सहृदय शिवमूर्ति केवल मुस्कराए और अपनी उदारता का परिचय दिया। यह शिवमूर्ति के स्वभाव की विशेषता है, जिसके कारण वे सहज भाव से सबके साथ पेश आते हैं।

'कसाईबाड़ा' कहानी पर सुशील कुमार ने दूरदर्शन के लिए एक फिल्म बनानी चाही, किन्तु फिल्मांकन की प्रक्रिया का कार्य चार-पाँच बार टल गया। इसके कई कारण थे, जैसे - कभी इसके नाम के चलते, कभी शूटिंग वाले गाँव में डकैती को लेकर या फिर सुशील कुमार का स्थानांतरण। अनेक रुकावटों को पार कर सुशील कुमार ने 'कथा कसाईबाड़ा' शीर्षक से यह फिल्म बनाई। फिल्म की शुरुआत और कहानी की शुरुआत में अंतर है। कहानी की शुरुआत शनिचरी के धरने पर बैठने की खबर से होती है, जबकि फिल्म के शुरू में ही सगुनी शनिचरी को बताती है कि सामूहिक विवाह एक छल था। कथा और पटकथा में यह फर्क इसलिए है, क्योंकि दृश्य माध्यम के द्वारा परिस्थिति की गंभीरता को दर्शक ठीक से समझ सके। जिन दर्शकों ने इस फिल्म को देखा, उनका कहना है कि स्थानीय कलाकारों को लेकर कम बजट में बनाई गई फिल्म 'तिरिया चरित्तर' फिल्म की तुलना में अधिक जमीनी और प्रभावकारी है।

'भरतनाट्यम्' कहानी को लेकर दूरदर्शन ने फिल्म बनानी चाही। फिल्म बनाने की अनुमति के साथ अनुबंध भी तैयार हुआ और चेक के रूप में शिवमूर्ति को एडवांस भी दिया गया। दूरदर्शन वालों ने खुद इसकी पटकथा लिखी और अवलोकनार्थ शिवमूर्ति के पास इसे भेज भी दिया। शिवमूर्ति इस कहानी की पटकथा से उतने प्रसन्न नहीं हुए। फिर भी यह फिल्म बनी और इसे दूरदर्शन पर दिखाया गया, जिसकी खबर शिवमूर्ति को उनके एक मित्र ने दी। शिवमूर्ति ने आज तक यह फिल्म नहीं देखी, हालाँकि इस फिल्म की डीवीडी प्राप्त करने की उन्होंने कई बार कोशिश की, परंतु वह उन्हें नहीं मिली। लेखक शिवमूर्ति इस फिल्म के बारे में बताते हैं **-"जिस तरह की पटकथा थी उसको देखते हुए कभी-कभी सोचता हूँ कि शायद यही ज्यादा अच्छा हो कि फिल्म न देखूँ?"**[24] एक कथाकार यही सोचता है जो शिवमूर्ति सोच रहे हैं। जो स्तर उसकी कहानी का है, वह बरकरार रहना चाहिए। फिल्मकारों की तरह उसका ध्येय पैसा कमाना नहीं होता, उसका ध्येय समाज तक अपना मंतव्य पहुँचाना होता है।

**निष्कर्ष**

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शिवमूर्ति ने कहानियों और उपन्यासों के अलावा संस्मरण एवं यात्रा वृतांत के लिखने में भी अपना हाथ आजमाया है। उनकी कुछ चर्चित कहानियों के नाट्य एवं सिने रूपांतरण भी हुए हैं। उपन्यासों के अब तक नाट्य सिने रूपांतरण नहीं हो सके हैं। प्रयास कई हुए, लेकिन ये प्रयास पूर्णता तक नहीं पहुँच सके। अपने 'सृजन का रसायन' संस्मरण में लेखक ने ग्रामीण जीवन से जुड़े हर छोटे-बड़े प्रसंग का वर्णन बड़ी बारीकी से किया है। अपनी प्राथमिक शिक्षा से लेकर बी.ए. करने तक के अपने सफर में जिन-जिन परिस्थितियों का सामना उन्हें करना पड़ा, उसे उन्होंने काफी विस्तार दिया है। इसके साथ-साथ जिन व्यक्तियों का उन पर प्रभाव पड़ा या जिन्होंने उन्हें हर कदम पर प्रेरित किया,

ऐसे दोस्त-मित्र, जैसे - अंगोरवा, शिवकुमारी, डाकू नरेश, आदि के विषय में भी बताया है। लेखक का स्पष्ट मत है कि उसके पास-पड़ोस के लोग और पारिवारिक परिस्थितियाँ ही उसे लेखन के क्षेत्र में आने के लिए प्रेरित कीं। इनमे भी उनकी पत्नी सरिता जी की विशेष भूमिका रही है। उसके लिए लेखन कबाड़ख़ाने से साईकिल कसने जैसा है। जैसे मिस्त्री अपने कबाड़े से छोटे-छोटे पुर्जे निकालता है, वैसे ही वह भी लेखन में मेल मिलाता है और रचना तैयार करता है।

अपने यात्रा वृतांत में लेखक ने अपने पसंदीदा लेखक 'जैक लंडन' को इस यात्रा वृतांत के जरिए श्रद्धांजलि अर्पित की है, साथ ही अपने प्रिय लेखक से जीवित रूप में न मिलने के प्रति खेद व्यक्त किया है। शिवमूर्ति ने अपने दूसरे यात्रा वृत्तांत 'लू शुन के देश में' के जरिए अपने बचपन के सपने को साकार किया है। चीन के बारे में लेखक ने जितना सुना-पढ़ा था, उसे अपनी आँखों से देखा और वहाँ के लोगों के खान-पान तथा वहाँ की प्राचीन धरोहर, जैसे - चीन की दीवार आदि को देखकर वहाँ के गाँव और खेती संबंधी जानकारी हासिल की। लेखक ने इन दोनों यात्रा वृतांतों में भारत की अमेरिका और चीन से तुलना की है और वहाँ की अच्छाइयों को सराहा भी है। लेखक मानता है कि अमेरिका और चीन जैसे देश अपने साहित्यकारों और प्राचीन धरोहरों को अच्छी तरह से सुरक्षित रखना भली- भाँति जानते हैं।

शिवमूर्ति के नाट्य रूपांतरण के अंतर्गत आयी कहानियाँ, जैसे - 'कसाईबाड़ा', 'तिरिया चरित्तर', 'कुच्ची का कानून' आदि का प्रमुखतः वर्णन किया गया है और नाट्य-सिने रूपांतरण में कहानी के बदलाव का सोदाहरण उल्लेख किया गया है। यहाँ इस बात पर जोर दिया गया है कि शिवमूर्ति की कहानियाँ संवाद, पात्र, परिवेश, भाषा के धरातल पर इतनी चुस्त और दुरुस्त हैं कि नाट्य रूपांतरणकारों और पटकथा लेखकों को ज्यादा कुछ नहीं करना पड़ता है। हाँ, इतना जरूर है कि

उनके उपन्यासों का नाट्य-सिने रूपांतरण अभी बाकी है। कारण कि यह काफी चुनौती पूर्ण है। आग में घी डालने जैसा है।

**संदर्भ सूची**


1. सं. डॉ. नगेंद्र, मानविकी परिभाषा कोश, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1968, पृ. 168
2. सं. देवेंद्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, हिन्दी साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 1987, पृ. 185
3. शिवमूर्ति, सृजन का रसायन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014, पृ. 10
4. वही, पृ. 19
5. वही, पृ. 26
6. वही, पृ. 89
7. वही, पृ. 84
8. वही, पृ. 86
9. वही, पृ. 83
10. वही, पृ. 07
11. सं. अरुण सिंह, 'इंडिया इनसाइड' साहित्य वार्षिकी, 2016, पृ. 82
12. शिवमूर्ति, सृजन का रसायन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014, पृ. 25
13. सं. अरुण सिंह, 'इंडिया इनसाइड' साहित्य वार्षिकी, 2016, पृ. 81
14. शिवमूर्ति, सृजन का रसायन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014, पृ. 54
15. वही, पृ. 15
16. सं. विजय राय, 'लमही' अक्टूबर-दिसंबर, 2012, पृ. 14-15

17. शिवमूर्ति, सृजन का रसायन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014, पृ. 114
18. शिवमूर्ति, 'जैक लंडन के देश में', shivmurty.blogspot.in, पृ. 2
19. शिवमूर्ति, 'लू शुन के देश में', shivmurty.blogspot.in, पृ. 2
20. वही, पृ. 2
21. सफ़दर हाश्मी, मोटेरम का सत्याग्रह - प्रेमचंद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 5
22. सं. विजय राय, 'लमही' अक्टूबर-दिसंबर, 2012, पृ. 153
23. सं. अरुण सिंह, 'इंडिया इनसाइड' साहित्य वार्षिकी, 2016, पृ. 153
24. सं. विजय राय, 'लमही' अक्टूबर-दिसंबर, 2012, पृ.156

# पंचम् अध्याय

# शिवमूर्ति का साहित्य : भाषिक एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य

## प्रस्तावना

कोई भी साहित्यकार अपनी साहित्यिक कृति के माध्यम से आम जन तक पहुँचना चाहता है। आम जन के जीवन की त्रासदी, उसका मर्म और उसका सच जानकर उसे उसी रूप में वह अपने साहित्य के जरिए पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास करता है। साहित्यिक कृति में सबसे महत्वपूर्ण उस कृति का कथ्य या वस्तु है। साहित्यकार जिस ढंग से अपने जीवनानुभवों को अपने साहित्य के पात्रों के साथ जोड़कर एक उत्कृष्ट रचना में ढालता है, और उन पात्रों को जीवंतता प्रदान करता है, उसे शिल्प कहते हैं। अपनी कृति को एक कलात्मक रूप देकर साहित्यकार उसे परिपूर्ण या विशिष्ट बनाने का प्रयास करता है। शिल्प का शाब्दिक अर्थ है - किसी चीज के बनाने या रचने का ढंग या तरीका। सरल भाषा में कहा जाए तो कह सकते हैं, शिल्प का अर्थ है - हाथ से बनायी हुई कोई वस्तु या कारीगरी। साहित्य में शिल्प का प्रयोग होने पर उसका अर्थ हो जाता है - साहित्यिक कृति के रचने का ढंग या तरीका। देखा जाता है कि साहित्य का रूप समय के साथ-साथ बदलता रहता है। रचनाकार अपने युगीन लोकजीवन की आंतरिक और बाह्य उलझनों को सही तरीके से अभिव्यंजित करने के लिए शिल्प संबंधी नए प्रयोग करता रहता है। शिल्प शब्द अँग्रेजी के 'टेकनिक' शब्द का हिन्दी पर्याय है। विविध शब्द-कोशों के अनुसार 'टेकनिक' शब्द हिंदी में क्रियाकल्प, प्रविधि, शिल्पविधि, प्रक्रिया, तंत्र पद्धति, रचना प्रणाली, रीति, शैली आदि रुपों में जाना जाता है। शिल्प को इस उद्धरण द्वारा और स्पष्टतया समझा जा सकता है - **"शिल्प विधि से तात्पर्य किसी कृति के निर्माण की उन**

**सारी प्रक्रियाओं तथा रचना पद्धतियों से है, जिनके माध्यम से रचनाकार या शिल्पकार अपनी अमूर्त जीवनानुभूतियों, मनः प्रभावों तथा विचारों और भावों को मूर्त रूप देकर अधिकाधिक संवेद्य और सौंदर्यमूलक बनाता है।"**[1] अतः कहा जा सकता है कि शिल्प-विधि का अर्थ है, वह विधि या तरीका जिससे लेखक रचनागत लक्ष्य की पूर्ति करता है।

एक रचनाकार का कौशल्य दूसरे रचनाकार के कौशल्य से हमेशा भिन्न होता है। इसी भिन्नता के कारण शिल्प में भी अंतर आ जाता है, क्योंकि प्रत्येक रचनाकार अपने विचारों को संप्रेष्य बनाने के लिए अनुकूल शिल्प का प्रयोग करता है। शिल्प पाठकों की अभिरुचि के कारण साहित्य के चुनाव में केवल सहायक ही नहीं होता, बल्कि शिल्पगत विशेषताओं के आधार पर उसे स्थायित्व प्रदान करने का काम भी करता है। यही शिल्पगत आकर्षण पाठकों को रचना को शुरू से लेकर अंत तक पढ़ने के लिए बाध्य एवं विवश करता है। जहाँ  तक कथाकार शिवमूर्ति का प्रश्न है, शिवमूर्ति स्वातंत्र्योत्तर समकालीन लेखकों में अपनी भाषा के लिए विशेष महत्व रखते हैं। अपने साहित्य में शिवमूर्ति ने ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। प्रेमचंद और रेणु की परंपरा को आगे बढ़ाने का काम शिवमूर्ति ने किया है। शिवमूर्ति ने अपने लेखन में दलित, दलित स्त्री एवं ग्रामीण जीवन को अभिव्यक्त करने के लिए शिल्प का कलात्मक प्रयोग किया है। शिवमूर्ति के जीवनानुभव, यथार्थ की भूमि पर इस कदर कसे गए हैं कि उसमें शैल्पिक उपकरणों को जबरन साहित्य में लाने की जरूरत नहीं पड़ती। उनके यहाँ शैल्पिक उपकरण अनायास ही आते हैं और सहज ही उनके ग्रामीण जीवनानुभवों को अभिव्यक्ति मिल जाती है। शिवमूर्ति के रचना संसार में प्रयुक्त शिल्प-विधान को मुख्य रूप से भाषा पक्ष और शैली पक्ष के रूप में विभाजित कर देखा जा सकता है। साथ ही इनके उपभेदों को भी सामने रखकर समझा जा सकता है।

## 5.1 भाषा पक्ष

साहित्यकार भाषा से ही अपने आपको व्यक्त करता है। यदि भाषा न होती तो कितना भी प्रभावशाली व्यक्ति क्यों न हो, वह अपने आपको व अपने विचारों को प्रस्तुत नहीं कर पाता। स्पष्ट है कि भाषा के माध्यम से ही साहित्य का सृजन होता है। भाषा मानवीय भावों के संप्रेषण का महत्वपूर्ण साधन है। भावों के माध्यम से मनुष्य अपने विचार अन्य मनुष्य या समाज तक पहुँचाता है और विचार को समाज तक पहुँचाने का सबसे बड़ा माध्यम साहित्य है। अर्थात् भाषा साहित्य की सृजनशीलता है। हिंदी साहित्य जगत में प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ रेणु के बाद भारतीय गावों की तरफ अपना साहित्य किसी ने केंद्रित किया है, तो वे शिवमूर्ति ही हैं। अपने कथा साहित्य में बड़ी विश्वसनीयता के साथ शिवमूर्ति ने ग्रामीण परिवेश को विस्तार दिया है। प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ रेणु के समय के गाँव और शिवमूर्ति के समय के गाँव में जो आज अंतर आया है, वही अंतर प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ रेणु के लेखन और शिवमूर्ति के लेखन में दिखता है। कहने का आशय यह है कि प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ रेणु के समय में किसानों व दलितों का शोषण मुख्यतया जमींदारों और महाजनों द्वारा किया जाता था और शिवमूर्ति के समय में किसानों व दलितों का शोषण सरकारी संस्थाओं द्वारा किया जाता है।

शिवमूर्ति अवध क्षेत्र की जमीन से जुड़े हुए रचनाकर हैं। वहाँ की बोली, भाषा, शब्द, मुहावरे, कहावतें, लोकोक्तियाँ, गीत आदि की गंध उनके कथा साहित्य में देखी जा सकती है। उनके कथा साहित्य में मुख्य रूप से गाँव तथा दलित स्त्री और वहाँ की समस्याएँ केंद्र में हैं। इसी ग्रामीण परिदृश्य को बड़े सहज और सचाई के साथ पहुँचाने का कार्य करती है उनकी भाषा। चूँकि शिवमूर्ति का

साहित्य गाँव से जुड़ा हुआ साहित्य है, इसलिए उनकी भाषा भी गाँव की भाषा है। लेखक बिना किसी लाग-लपेट के सरलता पूर्वक अपनी कहानी कहने में सफल हुआ है। शिवमूर्ति कहीं से भी कोई बात उठा लेते हैं और बड़ी आसानी से कथा का रूप दे देते हैं। मैं कहना चाहूँगी कि वे शिल्प की अपेक्षा विषय को अधिक महत्व देते हैं। वे अपने शिल्प से पाठक को चौंकाते नहीं, बल्कि पाठक को सहभागी बनाते हैं। शिवमूर्ति अपनी भाषा को इतना गाढ़ा बना देते हैं कि कहानी के मर्म को घोल लेने के पश्चात् पाठक की आँखों से अश्रु बहने लगते हैं। कथाकार राजेंद्र यादव  शिवमूर्ति की भाषा के विषय में कहते हैं - **"शिवमूर्ति में गजब का संपादन है। एक-एक पंक्ति में वे जो बात कहते हैं, वहीं दूसरे लोग एक पैराग्राफ में भी नहीं कह पाते। उनके पास बेहद सटीक और सार्थक भाषा और चुस्त शैली है, इसलिए मुझे उनके कम लिखने से बहुत शिकायत है।"**[2] यहाँ कहना जरूरी है कि शिवमूर्ति में कम से कम शब्दों में ज्यादा से ज्यादा अर्थपूर्ण कहने का सामर्थ्य है। वे अपने कथन में गागर में सागर भरते हैं। वे भाषा और शैली की गहराई को समझने और उसका प्रयोग करने में सिद्धहस्त हैं। शिवमूर्ति का साहित्य कुछ आप बीती और कुछ जग बीती के ताने-बाने से बुनी ऐसी चादर है, जो विघटन, विखंडन और प्रदूषण से भरे समय में जिंदगी में  मूल्यवान तत्वों को बचा लेने का आग्रह करती है।

### 5.1.1 शब्द प्रयोग

भाषा में शब्द प्रयोग की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शब्द ही भाषा को धारदार और जानदार बनाते हैं। इस दृष्टि से शिवमूर्ति के कथा-साहित्य की भाषा में ऐसा आकर्षण है, जो पाठक को रचना की शुरुवात से लेकर अंत तक बाँधे रखता है। इसका मुख्य कारण है शिवमूर्ति का अवध की मिट्टी से जुड़े रहना और

उसी मिट्टी के शब्दों का प्रयोग अपनी रचना में करना। शिवमूर्ति ने अपने साहित्य में शब्दों का प्रयोग पात्रों के अनुसार किया है। 'तर्पण' उपन्यास का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है, जब रजपतिया मदद के लिए अपनी गुहार लगाती है- **"अरे माई रे। गोहार लागा। धरमुआ कै पुतवा उधिरान बा रे।" का भवा रे कौन है रे?"**[3] इस उद्धरण में धरमू पंडित के बेटे चंदर के छेड़ने पर दलित लड़की रजपतिया अवधी में ही चिल्लाती है। 'अरे', 'धरमुआ', 'उधिरान' आदि शब्द अवधी में ही बोले जाते हैं। इन शब्दों के प्रयोग से वस्तुस्थिति और स्पष्ट हो जाती है।

'अकाल दंड' कहानी की सुरजी की भी कुछ यही स्थिति है। वह भी सेक्रेटरी से गुर्राती हुई कहती है- **"भलमानसी चाहौ तो अब चुप्पै भाग जाव। नाही त अबही गोहार लगाय देब त तोहर भद्दरा उतरि जाए।"**[4] यहाँ स्वाभाविक है कि गाँव की पात्र सुरजी गाँव की भाषा बोले। यहाँ 'भद्रता' शब्द को भद्दरा के रूप में बोला गया है। जैसे पात्र वैसे ही शब्द प्रयोग। इससे संवाद में वास्तविकता की सृष्टि होती है। इसी तरह चमारिन के लिए चमाइन, अक्ल के लिए अकिल, बच्चे के लिए लरिका, मुख्य मंत्री के लिए मुख मंतिरी, अंधा-बहरा के लिए आन्हर-बहिर, ज्ञान के लिए जियान आदि के प्रयोग से लेखक के शब्द सामर्थ्य का परिचय मिलता है। यह लेखक के गाँव की मिट्टी से जुड़ने का परिणाम है।

शिक्षित पात्र जैसे - 'कसाईबाड़ा' कहानी का दारोगा, लीडर, 'सिरी उपमा जोग' कहानी का ए. डी. एम., 'त्रिशूल' उपन्यास के पाल साहब आदि के जरिए अँग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है। 'कसाईबाड़ा' कहानी में पुलिस थाने में लीडर और दारोगा जी के बीच काफी अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग होता है, जो इस प्रकार है- **"ओ डोंट वरी फॉर दैट, मैं फ़ाइनल रिपोर्ट लगा दूंगा, आपके फेवर में।"**[5] जवाब में लीडर जी कहते हैं- **"मेरे पोलिटिकल प्रोस्पेक्ट पर भी तो**

**गौर कीजिए। परधानी के इलेक्शन में एकमात्र गोट ही वही है।"**[6] ध्यातव्य है कि जिस तरह के पात्र, उस तरह के शब्दों का प्रयोग कथाकार शिवमूर्ति के लेखन की विशेषता है। यहाँ दारोगा जी और लीडर जी दोनों शिक्षित पात्र हैं।

इसके साथ ही शिवमूर्ति अँग्रेजी के शब्दों को बोलचाल की भाषा में ढालकर भी प्रयोग करते हैं; जैसे - 'ड्राइवर' के लिए 'डरेवर', 'चान्स' के लिए 'चानस', 'टाइम' के लिए 'टैम', 'रेल्वे स्टेशन' के लिए 'रेल्वे टेशन' 'कंट्रोल' के लिए 'कंटरोल', 'ट्रेनिंग' के लिए 'टरेनिंग' आदि। शिवमूर्ति की कहानियों एवं उपन्यासों में अरबी और फारसी के शब्दों की भी भरमार है। सिर्फ एक उदधरण द्वारा इसे समझा जा सकता है - **"दरोगा जी को तो लीडर उसी तरफ लेकर अपने घर चला गया। शिकस्त ! मात।"**[7] यहाँ शिकस्त फारसी का शब्द है और मात अरबी का। इन बोलचाल के विशिष्ट शब्द प्रयोगों द्वारा शिवमूर्ति अपनी भाषिक क्षमता का परिचय कराते हैं। ये शब्द गाँव की बोली में अपना एक अलग प्रभाव उत्पन्न करने में सफल होते हैं।

### 5.1.2 पात्रानुकूल भाषा

रचनाकार अपने युग और समय की बदलती हुई स्थिति और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए अपनी ही भाषा में एक नयापन लाने का प्रयास करता है। उसकी यह भाषा परिवेश के अनुकूल होती है। उसकी रचना में प्रयुक्त शब्दावली, संवाद, मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि परिवेश के परिचायक होते हैं। रचनाकार अपने व्यक्तिगत जीवन तथा बाह्य जीवन में जिस भाषा का प्रयोग करता है, जरूरी नहीं कि वह वैसी ही भाषा का प्रयोग अपने लेखन में भी करे। किसी भी विधा की भाषा उसके शिल्प और कथ्य के अनुरूप ढलती है। कथाकार शिवमूर्ति अपने साहित्य में चित्रित युगीन समस्याओं को, बिम्ब, प्रतीक, मिथक

जैसे भाषीय मापदण्डों के माध्यम से व्यंजित करने का प्रयास करते हैं, क्योंकि उनके पात्र वस्तुतः उसी माहौल की उपज होते हैं।

देखा जाता है कि पात्र, देशकाल और वातावरण आदि के अनुरूप शिवमूर्ति की भाषा विभिन्न रूपों में प्रकट हुई है। यद्यपि इस दौर के अन्य कथाकारों - संजीव, पंकज विष्ट, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, अरुण प्रकाश, उदय प्रकाश, प्रेम कुमार मणि, धीरेंद्र अस्थाना, हरि भटनागर आदि ने काफी लिखकर कथा-साहित्य को एक भिन्न धरातल पर प्रस्तुत किया है, तथापि शिवमूर्ति इन कथाकारों की तुलना में कम लिखकर भी पाठकों के बीच अपनी एक महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज किए हुए हैं। कारण कि शिवमूर्ति अपनी रचनाओं में हाशिए पर पड़े हुए समाज को अपने समय का सबसे बड़ा सवाल मानते हैं। इसी को ध्यान में रखकर उन्होंने अपने साहित्य में एक से एक मजबूत पात्रों का निर्माण किया है, चाहे वह **'कसाईबाड़ा'** की शनिचरी हो, **'अकालदंड'** की सुरजी हो, 'तिरिया चरित्तर' की विमली हो, **'कुच्ची का कानून'** की कुच्ची हो या फिर **'आख़िरी छलांग'** का पहलवान। ये सभी पात्र शिवमूर्ति के साहित्य के अमर पात्र हैं। मैं कहना चाहूँगी कि जिस तरह से शिवमूर्ति की कहानियों के नारी पात्र अमर हुए हैं, उस तरह से उनके उपन्यासों के नारी पात्र अमर नहीं हुए हैं, हाँ, **'आख़िरी छलांग'** उपन्यास का पुरुष पात्र पहलवान अवश्य एक महत्वपूर्ण पात्र के रूप में उभरकर सामने आया है।

कथाकार शिवमूर्ति पात्रों के अनुरूप भाषा का प्रयोग करने में अद्वितीय हैं। 'कसाईबाड़ा' कहानी का एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है जिसमें शनिचरी अधरंगी से कहती है- **"अन्याय कै हद होत है तो ई धरती फाटि जात है अधरंगी बेटवा। विश्वास से फाटेगी बेटवा। सीता माता के खातिर फाटि रही।"**[8] उद्धरण में गाँव की

एक गरीब और अनपढ़ स्त्री के माध्यम से कथाकार ने ग्रामीण अंचल में प्रयोग होने वाले शब्दों का प्रयोग किया है। 'फाटि जात', 'बेटवा' इसी तरह के शब्द हैं।

गाँव ही शिवमूर्ति की जन्मभूमि व कर्मभूमि रही है। इसे केंद्रित करके उनका कथाकार दूर-दूर तक फैलता है। शिवमूर्ति को पढ़ने का अर्थ है - उत्तर भारत के गाँवों को उनकी समग्रता में जानना। लेखक 'आखिरी छलांग' उपन्यास में पहलवान के क्रियाकलाप का वर्णन, उनके अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हुए लिखता है- **"वे खँखारते हुए मँड़हे में बिछी अपनी चारपाई पर आकर बैठ गए। पत्नी हुक्का भरकर ले आई और पायताने बैठकर उनके पाँव दबाने लगी। वे लेटकर हुक्का पुडकाने लगे।"[9]** यहाँ ध्यान देने योग्य है कि पूरे उद्धरण में भाषा का प्रयोग पहलवानी अंदाज में किया गया है। 'खँखारना', 'हुक्का का आना', 'पाँव का दबाया जाना' इसी तरह के वाक्य हैं।

पात्र विशेष की बदलती मनःस्थितियों का चित्रण शिवमूर्ति की वाक्य संरचना में देखते ही बनता है। 'कसाईबाड़ा' कहानी में दारोगा, जो पहले लीडर को आप कहकर संबोधित करता था, अचानक उसे अपने ओहदे का अहसास होता है। दारोगा की इस बदलती हुई मनःस्थिति को शिवमूर्ति इस प्रकार की भाषा में दर्शाते हैं - **"सरकार का तख़्ता पलटने की साजिश करने वाले आप। इल्लिटरेट मास में रयूमर फैलाने वाले आप। वायलेंस और डिस्टरबेंस करवाने वाले आप। आप नहीं तुम, तुम्म ! सरकारी नीतियों के खिलाफ तुम्म। अंतर्जातीय विवाह के खिलाफ तुम्म। डेमोक्रेसी के लिए खतरनाक तुम्म। देश के लिए खतरनाक तुम्म। थाने के लिए खतरनाक तुम्म। आपके .....नहीं, तुम्हारे.....घर से गाँजा हम निकालेंगे। शराब हम निकालेंगे। अफीम हम निकालेंगे। छोकरी हम निकालेंगे। तुम्हारी लीडरी लील सकते हैं। मास्टरी चाट सकते हैं। करेक्टर मोड़ सकते हैं। फ्यूचर लीप सकते हैं......"[10]**

दारोगा की यह भाषा केवल दारोगा की भाषा नहीं है, बल्कि उसके ओहदे का 'पावर' भी है। एक क्षण में 'आप' से 'तुम' और 'तुम' से 'तुम्म' कहना उसके क्रोधित मनःस्थिति का द्योतक है।

कथाकार शिवमूर्ति जब अपने पात्रों को तराशते हैं, तब उनका सूक्ष्म चित्रकार हृदय देखने योग्य हो जाता है। वे वाग्जाली भाषा का खोखला मायाजाल खड़ा किए बिना चुम्बकीय भाषा पेश करते हैं। उनके यहाँ एक-एक वाक्य सोद्देश्य हैं। चरित्रों के मुँह से निकला हुआ एक-एक कथन व्यंजनापूर्ण है। इस दृष्टि से उनकी सर्वाधिक सफल कहानियाँ - 'सिरी उपमा जोग' और 'तिरिया चरित्रार' कहानियाँ हैं। 'सिरी उपमा जोग' की गँवई पत्नी अपने ए.डी.एम. पति को पत्र लिखती है, जो अपनी अनपढ़ पत्नी को त्यागकर फैशनेबुल शहरी लेडी से शादी कर चुका है **-"सरब सिरी उपमा जोग, खत लिखा  लालू की माई की तरफ से, लालू के बप्पा को पाँव छूना पहुँचे।"**[11] पत्र का एक -एक वाक्य गाँव में रहने वाली स्त्री की पूरी कथा कहता है। इसी तरह एक उदाहरण 'तिरिया चरित्तर' कहानी से, जहाँ विमली गाय-बैल की तरह दागी जाती है- **"छन्न ! कलछुल खाल से छूते ही पतोहू का चीत्कार कलेजा फाड़ देता है। कूदती लोथ ! मांस जलने की चिरायंध !"**[12] प्रस्तुत उद्धरण से पतोहू के दागने का पूरा चित्र सामने आ जाता है। शिवमूर्ति की भाषा की यह विशेषता है कि वे पात्रों की मनोदशा को भली-भाँति जानते हैं और उसी के अनुरूप भाषा को सहेजते जाते हैं। अपने कथा-साहित्य में शिवमूर्ति ने किताबी भाषा का प्रयोग न करके, परिवेश की उस भाषा का प्रयोग किया है, जिसमें उनके पात्र जीते हैं।

### 5.1.3 वाक्य विन्यास

भाषा प्रयोग का आधार वाक्य रचना है। वाक्य रचना ही हमारे विचारों और भावों को अभिव्यक्त करती है। अतः वाक्य विन्यास का शुद्ध, रोचक संयत और

प्रभावोत्पादक होना आवश्यक है। भाषा शास्त्र के अनुसार गद्य के तात्विक विवेचन के लिए व्याकरण के नियमों का पालन करना लेखक के लिए जरूरी होता है। वाक्यों का समुचित प्रयोग विराम चिह्नों के प्रति सावधानी लेखक की व्याकरणिक क्षमता का द्योतक है। इस दृष्टि से देखा जाए तो शिवमूर्ति अपने कथा-साहित्य में भाषा के कई रूप-रंगों का प्रयोग करते हैं। उनकी कहानियों के वाक्य छोटे-छोटे होते हैं। उनके वाक्यों में सहायक क्रियाओं का प्रयोग कम होता है। 'अकाल-दंड' कहानी का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है- **"बदबू का भभका। आँखें लाल। अबे हट ! पीकर आया है क्या? शरीर पस्त ! भीगा हुआ। पसीना कि पानी? चावल की माड़ है यह तो ! माड़ से लथपथ कुरता - धोती। किसने फेंका जूठा? हुजूर माथे पर यह चोट ! इतना खून ! धोती भी तर है ! कैसे हुआ? सेवादार घबड़ा गया।"**[13] क्या कुछ नहीं कहा गया है इन वाक्यों में? लगता है मंचन या फ़िल्मांकन के लिए जिसकी जरूरत पड़ती है, वह सब कुछ है यहाँ।

'आखिरी छलांग' उपन्यास की शुरुवात में पहलवान अपनी छोटी बेटी के विवाह के संबंध में बाहर जाने की तैयारी करता है। उस समय का वर्णन छोटे-छोटे वाक्यों में इस तरह किया गया है **- "वे उठे। बंडी पहनी। धोती खोलकर नए ढंग से पहनी। साइकिल निकाल कर पोंछा। दोनों टायर दबाकर हवा का अंदाज़ा लगाया। कुर्ता-जाकिट पहना। तलवे की धूल झाड़कर जूता पहना।"**[14] इन छोटे-छोटे वाक्यों से शिवमूर्ति अपनी भाषा को अधिक सुसंगत और धारदार बनाते हैं, जिससे वे अन्य रचनाकारों की तुलना में भिन्न साबित होते हैं। पहलवान का बंडी पहनना, साइकिल पोंछना, टायर का हवा देखना, जूता पहनना आदि सब भिन्न प्रकार का है, जो बरबस अपनी ओर खींचता है।

शिवमूर्ति के द्वारा रचे गए वाक्य बड़ा तीखा अनुभव कराते हैं। इनका फलक बहुत व्यापक होता है। उन्हें पढ़ते समय ऐसा लगता है, जैसे सब कुछ आँखों के आगे घट रहा हो। अवधी, भोजपुरी के शब्द कथा के अर्थ गांभीर्य को बढ़ा देते हैं। 'तर्पण' उपन्यास का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है, जब धरमू पंडित्त का बेटा जेल से रिहा होकर घर आता है - **"बेटे को सबसे पहले हनुमान जी का दर्शन कराने ले जाते हैं धरमू। प्रसाद चढ़ाने के बाद पुजारी एक माला चन्दर के गले में डालकर माथे के बीचों-बीच लाल रोरी का टीका लगा देता है। दोनों लड़के भी एक-एक माला चन्दर के गले में डाल देते हैं। चंदर भैया जिंदाबाद।"**[15] इस वाक्य विन्यास में आज के अपराधियों के जेल से छूटने का पूरा दृश्य सामने आ जाता है। यही कथाकार शिवमूर्ति की विशेषता है।

### 5.1.4 बिम्ब योजना

बिम्ब को ही अँग्रेजी में 'इमेज' कहते हैं, बिम्ब का अर्थ है- परछाई, चित्र या प्रतिछाया। बिम्ब के प्रयोग से मस्तिष्क में वर्णित घटना का चित्र सामने आ जाता है। कोई भी रचनाकार जब अपने शब्दों के माध्यम से रूप, रस, गंध भरकर वस्तु विशेष को प्रस्तुत करता है, तब बिम्ब का निर्माण होता है। बिम्ब के बारे में यह भी कहा जा सकता है कि बिम्ब सूक्ष्म मनोभावों को अभिव्यक्त करता है और रचनाकार की रचना को उर्वरता प्रदान करता है। 'हिन्दी साहित्य कोश' में बिम्ब को इस प्रकार समझाया गया है - **"मनुष्य के जीवन में बिम्ब विधान का बड़ा महत्व होता है। प्रस्तुत परिवेश के संवेदनाओं और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त उसके मानस में अतीत की तथा कभी अस्तित्व न रखने वाली वस्तुओं और घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएँ भी रहती हैं। बिम्ब शब्द इसी मानस प्रतिभा का पर्याय है।"**[16]

हम कह सकते हैं कि बिम्बात्मक भाषा का उद्देश्य किसी व्यक्ति, चरित्र एवं वस्तु को केन्द्रित करके उसका चित्रण करना है।

जब हम कथाकार शिवमूर्ति के साहित्य को देखते हैं तो पाते हैं कि उन्होंने वस्तुस्थिति का चित्रण करते समय बिम्बात्मक भाषा का सफल प्रयोग किया है। **'कसाईबाड़ा'** कहानी में जब शनिचरी अनशन पर बैठती है, तब उस समय का बिम्ब लेखक ने इस प्रकार खींचा है - **"परधानजी की दुतल्ली बिल्डिंग के सदर दरवाजे पर बोरी बिछाकर किसी मोटे प्रश्न चिह्न् - सी बैठी है शनिचरी। लीडर जी ने गांधीजी का छोटा-सा फोटो देकर कहा है, "इन्हीं का ध्यान करो। अन्यायी का हृदय परिवर्तन होगा या सर्वनाश।"**[17] एक तरफ दुतल्ली बिल्डिंग है और ठीक उसके सामने बोरी बिछाकर एक बड़े प्रश्नचिह्न की तरह शनिचरी बैठी है। शनिचरी यहाँ सिर्फ शनिचरी नहीं है, बल्कि वह एक दलित स्त्री है जो दलित समाज के बड़े प्रश्न का बिम्ब बनकर आयी है। गांधी जी का फोटो अहिंसा का बिम्ब है। ये बिंब बताना चाहते हैं कि गाँधी जी के अहिंसा के पथ पर चलकर बड़ी से बड़ी लड़ाई लड़ी जा सकती है। चाहे सामने वाला कितना भी ताकतवर क्यों न हो?

बिम्ब योजना का एक अच्छा उदाहरण 'कुच्ची का कानून कहानी में भी मिलता है। यह उस समय का प्रसंग है, जब कुच्ची के गाँव का पंच बलई पांडे कुच्ची के चचेरे देवर बनवारी को अपने चाचा की संपत्ति हथियाने के लिए कुच्ची के शरीर पर काबू पाने की दुर्बुद्धि रचता है। वह कहता है **- "उसे मर्द चाहिए, मर्द मिल जाएगा। तुम्हें परापर्टी चाहिए, परापर्टी मिल जाएगी। रमेसर दोनों परानी को रोटी चाहिए, उनकी रोटी पक्की हो जाएगी। सबका उखड़ा कूल्ह बैठ जाएगा।"**[18] बनवारी को बलई पाण्डे की दी हुई सलाह विचारणीय है। यहाँ 'उखड़ा कूल्ह' में

बिंब है जो इस बात का सूचक है कि सबकी जरूरतें पूरी हो जाएँगी। 'बैठ जाएगा' का अर्थ है- सब ठीक हो जाएगा।

शिवमूर्ति ने अपने 'आखिरी छलांग' उपन्यास में प्राकृतिक बिम्बों का अनूठा प्रयोग किया है। वे लिखते हैं - **"दरअसल पिछली खरीफ की शुरुआत में तो बहुत अच्छी बरसात हुई थी। लगता था, इस साल कहीं धान रखने की जगह नहीं बचेगी, लेकिन उत्तरा नक्षत्र ने धोखा दे दिया। झकझोर पुरवा बहाने लगी। नीले आसमान में सफ़ेद बगुलों की तरह बादलों के टुकड़े दिखते और गायब हो जाते। भीषण सूखे के सारे लक्षण प्रकट हो गए।"**[19] सफेद बगुलों की तरह बादलों के टुकड़े चित्र-बिंब का विधान रचते हैं। इसका आशय यह है कि भयंकर सूखा पड़ने वाला है। शिवमूर्ति इस तरह की बिम्बात्मक भाषा का प्रयोग करके अपनी भाषागत विशिष्टता का परिचय देते हैं। वे इन सटीक बिम्बों के माध्यम से अपने कथा-साहित्य में अव्यक्त को व्यक्त करने का प्रयास करते हैं।

### 5.1.5 प्रतीक विधान

रचनाकार अपनी रचना में प्रतीकों की सहायता से भावों, विचारों, वस्तुओं, विषयों आदि का बोध कराता है। कभी-कभी मानव के मन में उठने वाली भावनाएँ रचना में प्रस्तुत होने में असमर्थ हो जाती हैं, ऐसे में प्रतीकों के माध्यम से रचनाकार उन भावनाओं को अभिव्यक्ति देता है। शिवमूर्ति ने वर्तमान जीवन की जटिलताओं, गुत्थियों एवं रहस्यों को खोलने के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया हैं। आज मनुष्य के जीवन में इतनी समस्याएँ आ गई हैं और उनसे वह इस प्रकार उलझ गया है कि उसे उनसे निकल पाना कठिन हो गया है। ऐसे में रचनाकार के लिए प्रतीक बड़े काम के हो जाते हैं।

शिवमूर्ति के कथा-साहित्य के अंतर्गत आने वाले लगभग सभी शीर्षक प्रतीकात्मक हैं। 'कसाईबाड़ा' कहानी का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है। गाँव में लीडराइन और परधानिन कहती हैं कि ये गाँव पूरा कसाईबाड़ा हो गया है और गाँव का प्रधान और लीडर इसके कसाई हैं, हत्यारे हैं। प्रधान और लीडर ये दोनों अपने गाँव के जिम्मेदार व्यक्ति हैं, लेकिन इनके मन में किसी के प्रति भी मोह, माया, दया, करुणा कुछ भी नहीं है। इस संदर्भ को ध्यान में रखकर लेखक लिखता है- **"ई गाँव लंका है। इहाँ लंकादहन होवेगा। रावन तू ही हो। लीडर बना है भिभीखन।"**[20] सभी शब्द विनाश के प्रतीक हैं; जहाँ कुछ भी सुरक्षित नहीं है।

'अकाल-दंड' कहानी में भी प्रतीकात्मकता है, जिसके माध्यम से लेखक बताना चाहता है कि जहाँ एक तरफ अकाल के कारण गरीब जन अकाल का शिकार हो रहें हैं, वहीं दूसरी तरफ अकाल के समय व्यभिचारी स्वभाव के कारण सेक्रेटरी को एक सामान्य स्त्री दंड देती है और ऐसा दंड देती है, जैसा इसके पहले कभी देखने-सुनने को नहीं मिला। यह अकाल के समय का अदभुत दंड है। इस दंड के माध्यम से लेखक उन सरकारी कर्मचारियों को संदेश देता है कि किसी भी स्त्री को कुदृष्टि से देखने की सज़ा बहुत ही भयंकर हो सकती है, जिसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता। उदाहरण इस प्रकार है - **"सेक्रेटरी के तंबू के अंदर-बाहर भीड़ जमा हो गयी है। अंदर का दृश्य बड़ा भयानक है। सेक्रेटरी बाबू पलंग पर नंग-धड़ंग पड़े छटपटा रहे हैं। सुरजी ने हँसिये से उनकी देह का नाजुक हिस्सा अलग कर दिया है।"**[21] उद्धरण में 'अकाल दंड' के प्रतीक के माध्यम से एक स्त्री के संघर्ष को गंतव्य तक पहुँचाया गया है।

'जुल्मी' कहानी प्रतीक है, उस जुल्मी पति का, जिसने बिना किसी अपराध के अपनी विवाहिता पत्नी को छोड़कर दूसरी शादी कर लिया है और मजबूर होकर

पत्नी भी दूसरी शादी कर लेती है। दोनों शादी-शुदा हैं और एक मेले में मिलते हैं। पत्नी कोइली अपने को नहीं रोक पाती और अपने पहले पति के गले से लिपट जाती है। रोदन भरे गीत में वह कहती है **-"कौने कसुरवा ना, जुल्मी कौने कसुरवा ना। चित से हमका देहल्या उतारी, जुल्मी कौने कसुरवा ना।"**[22] ज़ुल्मी प्रतीक है उस अत्याचार का जो बिना किसी अपराध के पति द्वारा पत्नी को दिया जा रहा है। समाज की नज़रों में पत्नी ने भी दूसरी शादी कर ली है, लेकिन अंदर-अंदर वह अब भी टूट रही है। इस प्रकार शिवमूर्ति अपनी कहानियों और उपन्यासों में प्रतीकों के माध्यम से अपने उद्देश्य को पाठकों तक पहुँचाते हैं।

### 5.1.6 मुहावरे, कहावतें, अफवाहें एवं लोकोक्तियाँ

मुहावरे, कहावतें, अफवाहें एवं लोकोक्तियाँ साहित्य की वे विशिष्टताएँ हैं, जिनके प्रयोग से कम से कम शब्दों में बहुत कुछ कहा जा सकता है। इनसे भाषा निखर जाती है और उसमें जान आ जाती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इनके प्रयोग से भाषा सशक्त, गतिशील, प्रभावी एवं धारदार हो जाती है। इन सभी का संबंध लोक जीवन और संस्कृति से होता है। अतः ये सभी कथन प्रायः आम जन के बीच बोले व सुने जाते हैं। इन्हें भाषा का श्रृंगार कहते हैं। शिवमूर्ति के कथा-साहित्य में मुहावरों, कहावतों, अफवाहों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग ग्रामीण जीवन, वहाँ के रीति-रिवाज तथा परंपरा आदि को दर्शाने के लिए किया गया है।

जब कोई वाक्यांश अपने सामान्य अर्थ को छोड़कर किसी विशेष अर्थ में परिवर्तित हो जाता है, तो उसे मुहावरा कहते हैं। मुहावरे में शब्द में छिपे भाव के अर्थ को ज्यादा महत्व दिया जाता है। मुहावरे के प्रयोग से भाषा और भी ज्यादा रुचिकर, आकर्षक और प्रभावशाली बनती है। किसी गूढ या रहस्यमयी भाषा को

कम शब्दों में कहने के लिए मुहावरों का प्रयोग किया जाता है। मुहावरों के प्रयोग से भाषा कैसे धारदार बनती है, इसका कुछ उदाहरण दृष्टव्य है, - जैसे 'बनाना रिपब्लिक' कहानी में 'आँख का 'काँटा बनना', 'कपार पीट लेना', सिर पर हाथ रखना' आदि मुहावरों का प्रयोग किया गया है। इसी कहानी में जग्गू अपने पिता से कहता है **-"परधानी लड़ने को कहता है ठाकुर।" उत्तर में जग्गू के पिता कहते हैं -"इसीलिए बुलाया था। कहा नहीं कि मुझे पागल कुत्ते ने काटा है जो ठाकुरों-बाभनों के गाँव में परधानी लड़ूँगा। लड़कर उनकी आँख का काँटा बनना है क्या?"**[23] इस उदाहरण से पता चलता है कि बात की गंभीरता को समझाने के लिए 'पागल कुत्ते ने काटा', 'आँख का काँटा बनना' आदि मुहावरों का प्रयोग किया गया है। शिवमूर्ति ने मुहावरों का प्रयोग करके अपनी भाषा की खूबसूरती बरकरार रखी है। शिवमूर्ति की कहानियों में कुछ क्रियाओं के नए अर्थ भी सामने लाए गए हैं, जैसे -'पीटना' एक कर्म है, जो मारने के अर्थ में प्रयुक्त होता है, लेकिन 'अकाल-दंड' कहानी में कहा गया है कि रंगी बाबू **"गल्ले की चोर-बाजारी करके हर महीने हजार-डेढ़ हजार रुपए पीट लेते हैं।"**[24] यहाँ 'पीट लेना' का अर्थ रुपए ऐंठना है। शिवमूर्ति ने 'पीटना' क्रिया का नये और अलग ढंग से संदर्भ प्रस्तुत किया है, जिससे उसके प्रचलित अर्थ में बदलाव आया है।

मुहावरों की तरह कहावतें भी भाषा को सशक्त बनाती हैं। इनके माध्यम से जीवन के सत्य बड़ी खूबी के साथ प्रकट होते हैं। ये ग्रामीण जन के नीतिशास्त्र हैं। बचपन से लेकर बुढ़ापे तक जिंदगी के हर मोड़ पर हमें कहावतें मिलती रहती हैं। इनका संबंध कहीं न कहीं पौराणिक कहानी से भी जुड़ा रहता है। कहावतों का प्रयोग अपनी बातों की पुष्टि के लिए किया जाता है, साथ ही जीवन की वास्तविकता के साथ इनको जोड़ा जाता है। कहावतें सारगर्भित, संक्षिप्त एवं

लोकप्रिय होती हैं। शिवमूर्ति अपने कथा-साहित्य में यत्र-तत्र कहावतों का प्रयोग करते हैं। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं।

**"जेकर काम उही से होय, गदहा कहै कुकुर से रोय।"**[25] यह दरोगा जी और लीडर जी के बीच बातचीत का संदर्भ है। कहावत में 'गधा' और 'कुत्ता' शब्द आया है। ये दोनों जानवरों में निम्न माने जाते हैं। जब किसी मनुष्य को छोटा आँका जाता है या फिर उसे नीचा दिखाना होता है तो उसके लिए इस तरह के शब्दों का प्रयोग किया जाता है। गधा कुत्ते से रोकर कहता है कि तुम भोंकने का काम करो, मेरे लिए बोझ ढोना ही बेहतर है।

**"कर्मक्षेत्रे-युद्धक्षेत्रे सब जायज है।"**[26] यह कहावत भी 'कसाईबाड़ा' कहानी की है, जिसमें एक लीडर अपनी पत्नी से कह रहा है। उसका कहना है कि जीवन के कर्मक्षेत्र में और जीवन के युद्ध क्षेत्र में सब सही है। गलत कुछ नहीं है। आगे बढ़ना है, लड़ाई जीतनी है तो अच्छे-बुरे का विचार त्यागकर सिर्फ सफल होने के बारे में सोचना होगा। कर्मक्षेत्र एक युद्ध क्षेत्र है।

**"सियार के सामने सिंह की हाजिरी।"**[27] यह कथन 'अकाल दंड' कहानी से लिया गया है, जिसमें लेखक रंगी बाबू और सेक्रेटरी के बीच के संबंधों का जिक्र करता है। वक्त-वक्त की बात है, नहीं तो सियार के सामने शेर को हाजिरी देने न जाना पड़ता। यहाँ रंगी बाबू शेर हैं और सेक्रेटरी सियार है। फिर भी उसके बुलावे पर रंगी बाबू को उसके पास जाना पड़ता है।

**"जहाँ गुड़ रहेगा वहाँ चिउँटा जाबै करंगे।"**[28] यह कहावत 'तर्पण' उपन्यास में पंडिताइन द्वारा दलित पियारे से कही गयी है। पंडिताइन अपने बेटे को 'चिउँटा' के रूप में पेश करती हैं और पियारे की बेटी रजपतिया को गुड़ के रूप

में। उनका सोचना है कि जहाँ गुड़ जैसी रजपतियाँ रहेंगी, वहाँ चंदर जैसे चींटे जाएँगे ही। ऐसा कहकर पंडिताइन अपने व्यभिचारी पुत्र पर परदा डालने का काम करती हैं। उसे सही साबित करने की कोशिश करती हैं।

**"जेकर मुँह देखे दुख उपजै तेहिंका करना परै सलाम।"**[29] यह वाक्य भी 'तर्पण' उपन्यास का ही है, जो गाँव के बुजुर्ग दलपत बाबा अपने गाँव के दलित जनों से कह रह हैं। यह कहावत एक बुजुर्ग द्वारा अपनी बिरादरी के लोगों को सीख देने के लिए कही गयी है। यह थाना-पुलिस के अधिकारियों पर टिप्पणी की गई है। दलित दलपत बाबा थाना-पुलिस के लोगों के बारे में कहते हैं कि जिनके चेहरे से नफरत है, थाने  में जाने पर उन्हें सलाम करना होगा।

'अफवाहें' एक उड़ती हुई खबरें हैं, जिन्हें बाजारु खबर कह सकते हैं। ये सांप्रदायिक ताकतों के लिए या दलित समाज के लिए हथियार का काम करती हैं। जहाँ अनपढ़ देहातियों की अफवाहें दस को प्रभावित कर सकती हैं, तो पूंजीपति सामंती ताकतों द्वारा फैलाई गई अफवाहें आबादी के एक बड़े हिस्से को प्रभावित और परेशान का सकती हैं। शिवमूर्ति अपने रचना संसार में प्रायः अफवाहों का प्रयोग करते हैं। 'त्रिशूल' उपन्यास में शास्त्रीजी अपने पोते को षड्यंत्र के तहत छिपा देते हैं और अफवाह फैलाते हैं कि उसका अपहरण हो गया।

अफवाह का प्रसंग 'तर्पण' उपन्यास में भी मिलता है। चंदर की गिरफ्तारी के समय का वर्णन करते हुए लेखक लिखता है- **"अगले दिन तक पास-पड़ोस के गाँवों में खबर फैल जाती है कि बड़गाँव के चमारों ने पंडित को जेल भेजवा दिया। कोई कहता है कि बाप-पूत दोनों अंदर हुए हैं। कोई कहता है सिर्फ बेटा।"**[30] अतः कह सकते हैं कि अफवाहों का कोई ठोस और सत्य आधार नहीं होता। ये उड़ती हुई खबरें हैं।

'लोकोक्ति' शब्द दो शब्दों के मेल से बना है। लोक और उक्ति, जिसका अर्थ  है - लोक में प्रचलित उक्ति या बात। किसी बात को प्रमाणित करने के लिए या अनुभूति की सार्थकता को सिद्ध करने के लिए लोकोक्तियों का सहारा लिया जाता है। लोकोक्तियाँ भाषा की शक्ति होती हैं, जिनके प्रयोग से भाषा के सम्प्रेषण में सरलता और सौन्दर्य में वृद्धि होती है और भाषा प्रभावी बन जाती है। ग्रामीण भाषा में लोकोक्तियों का बोलचाल की भाषा में प्रयोग आम बात है। शिवमूर्ति के यहाँ भी लोकोक्तियाँ आई हैं। इस प्रकार मुहावरें, कहावतें, अफवाहें और लोकोक्तियों के प्रयोग के द्वारा शिवमूर्ति अपने कथ्य को पाठकों तक पहुँचाने में सफल हुए हैं।

### 5.1.7 गीत योजना

कथा-साहित्य में कथा को आगे बढ़ाने के लिए या पात्र की समस्या को हू-ब-हू चित्रित करने के लिए, या फिर अतीत की गहराइयों में उतरने के लिए लेखक गीतों का सहारा लेता है। ये गीत लोक प्रचलित और बड़े ही मर्मस्पर्शी होते हैं। ऐसे गीत परंपरा से आए हुए गीत होते हैं, जिन्हें किसी को सुनकर समझने में कोई कठिनाई नहीं होती, लेकिन गीतों की योजना को कलमबद्ध करने के लिए लेखक का गीतों से संबंधित परिवेश का अनुभव होना बहुत जरूरी है, तभी ये गीत अपनी उपस्थिति से अपनी सार्थकता प्रकट करने में सक्षम हो सकते हैं। जहाँ तक शिवमूर्ति के कथा-साहित्य में गीतों की उपस्थिति  का प्रश्न है, ये बड़े ही सहज और स्वाभाविक रूप में आए हैं। गीतों को पढ़ते हुए यह नहीं लगता कि ये बाहर से लाकर जोड़े गए हैं। ये गीत बड़े सहज ढंग से पात्रों के हृदय से फूट पड़ते हैं।

शिवमूर्ति का मानना है कि बोलियों में प्रचलित गीतों से भाषा समृद्ध होती है और इससे इनकी अभिव्यक्ति क्षमता बढ़ती है। इस संदर्भ में स्वयं

शिवमूर्ति ने कहा है - **"मैंने यह पाया है कि जहाँ गद्य अवरुद्ध हो जाता है, रुक जाता है, वांछित अर्थ देने में असमर्थ हो जाता है वहाँ लोकगीत की एक पंक्ति आ कर अभिव्यक्ति को धार देती है।"**[31] लेखक के इस कथन को उसी की कहानी 'केशर कस्तूरी' की केशर के इस गीत से समझा जा सकता है। अपने मौसा से गीत के जरिए केशर कहती है-

**"मोछिया तोहार बप्पा 'हेठ' न होइहै**

**पगड़ी केहू ना उतारी, जी-ई-ई।**

**टुटही मँड़इया मा जिनगी बितउबै**

**नाही जाबै आन की दुआरी जी-ई-ई।"**[32]

प्रस्तुत लोकगीत में केशर के मन का सारा दर्द छलक उठा है। 'केशर कस्तूरी' कहानी के अंत में इस गीत का प्रयोग करके कथाकार शिवमूर्ति ने पाठक की संवेदना को कहानी की नायिका केशर के व्यथित मन के साथ एकाकार कर दिया है। गीत में 'मोछिया', 'पगड़ी', इज्जत के प्रतीक हैं और 'टुटही मँड़इया', 'आन की दुआरी' कष्ट सह लेने के अर्थ को ध्वनित करते हैं। इससे केशर की सहनशक्ति का परिचय मिलता है।

'तिरिया चरित्तर कहानी में भी कथाकार शिवमूर्ति ने गीत योजना को स्थान दिया है। इस कहानी का पुरुष पात्र 'बिल्लर' कहानी की नायिका 'विमली' को सुनाकर यह गीत गाता है -

**"अरे, टुटही मड़इया के हम हैं राजा**

**करीला गुजार थोरे मा,**

**तोर मन लागै न लागै पतरकी,**

**मोर मन लागल बा तोरे मा....।“**[33]

यह श्रृंगार रस से परिपूर्ण लोकगीत है। इसमें बिल्लर अपने प्रेम का इजहार कर रहा है। वह अपने को टूटी हुई मँड़ई का राजा कह रहा है। उसका मन विमली में लगा हुआ है जो दुबली-पतली और सुंदर है।

‘तिरिया चरित्तर’ कहानी में ही लेखक एक विदाई का गीत लिखता है। यह गीत विमली के विदाई के समय का है। डोली उठते ही वह चीत्कार उठती है-

**“आपन देसवा छोड़ाया मोरे बपई,**

**आपन दुअरिया छोड़ाइउ मोरी माई।“**[34]

इस गीत में यह बताया गया है कि विमली का गाँव-देश, जामुनी का जंगल सब कुछ छूट रहा है। उस का चूल्हा-चक्की जो कल तक उसका था, आज वह पराया हो गया है। अपनी ससुराल जाती एक ग्रामीण स्त्री की पीड़ा यहाँ ध्वनित हुई है।

कहानियों के साथ-साथ अपने उपन्यासों में भी शिवमूर्ति ने गीतों का प्रयोग किया है। ‘तर्पण’ उपन्यास में चंदर के जेल जाने की और धरमू पंडित की बदनामी की चर्चा पूरे दलित समाज में मनोरंजन का साधन बन जाती है। झाँझ और मृदंग के ताल पर मछ्ली की तरह कमर लचकाकर नर्तकी गाकर बताती है -

**“अरे पूत के कुकरमे धरमू गए जेहलखनवा**

**गए जेहलखनवा हो गए जेहलखनवा**

**मुँगरन मार परत होई हैं**

**जेहलखनवा मा धरमू रोवत होई हैं”**

**कम्बल ओढ़ाने के बाद मुँगरे की मार पड़ती है जेल में। ऐसे ही नहीं कमर टेढ़ी हो जाती।**

**“मुँगरा क्या होता है उस्ताद ?”**

**“ऐं मुँगरा नहीं जानती ? शहराती हो क्या ?”**

**“नहीं उस्ताद। प्योर देहाती हूँ।”**

**“फिर? इतनी बड़ी हो गई तूने कभी मुँगरा नहीं देखा?”**

**“नहीं उस्ताद ! कब्भी नहीं, उस्ताद।”**

**“देखना चाहती हो?”**

**“नहीं उस्ताद।” वह हँसते हुए दूर भाग जाती है।”[35]**

‘नर्तकी’ और ‘उस्ताद’ को माध्यम बनाकर शिवमूर्ति जो बात गद्यात्मक भाषा में नहीं कह सकते थे, उसे वे पद्यात्मक रूप देकर अपने कथ्य तक पहुँचने में सफल होते हैं। बात बहुत हल्के ढंग से हँसी-मज़ाक के अंदाज में कही गयी है, किन्तु इसके भीतर का गूढ़ार्थ बहुत ही मार्मिक और बेधक है। गाँव के ब्राह्मण के जेल जाने पर उसी गाँव के दलित खुशियाँ मना रहें हैं।

‘त्रिशूल’ उपन्यास में लेखक ने सांप्रदायिकता और छुआछूत को ध्यान में रखकर गीतों का संयोजन किया है। उपन्यास का पात्र लोकगायक पाले वर्ण,

जाति, धर्म, ईश्वर और मूल्यों में मिलावट की बात से अपने समाज में जागृति लाना चाहता है। वह अपने गीतों में कहता है -

**अरे धोबी भइया मितवा हमार मन धोइ दे**

**धोबी भइया मितवा**

**अरे, धरम की लदनी, पखंड का गदहा**

**साई के दुवरवा विमल एक पोखरा**

**मोर मन कहै  मोका ओही मा चभोइ दे**

**धोबी भइया मितवा हमार मन धोइ दे।"**[36]

कथाकार शिवमूर्ति के गीतों की विशेषता यह है कि वह प्राय: 'अरे' से शुरू होते हैं। यह लेखक की संबोधन शैली है जो पाठक को अपनी ओर आकर्षित करती है। प्रस्तुत गीत में मन को धोने की बात कही गई है। वह भी विमल पोखरे में। यह पूरा गीत आतंरिक शुचिता पर बल देता है।आज समाज में इसी आतंरिक शुचिता की आवश्यकता है।

### 5.1.8 शीर्षक की सार्थकता

शीर्षक किसी भी रचना का प्राणतत्व होता है। शीर्षक ऐसा हो जिससे पूरी रचना के संदर्भ में जानकारी प्रकट हो सके। जिस प्रकार प्राण के बिना शरीर का कोई मूल्य नहीं होता, उसी प्रकार यदि शीर्षक में प्राण नहीं फूँका गया है, तो उस रचना का पाठक के लिए कोई महत्व नहीं माना जा सकता, क्योंकि आकर्षक शीर्षक पाठक को अपनी ओर खींचता है। शीर्षक से ही पाठक में रचना को पढ़ने

की उत्सुकता जागती है और रचना अपनी प्रासंगिकता सिद्ध करती है। इस दृष्टि से जब मैं शिवमूर्ति के कथा-साहित्य पर विचार करती हूँ, तो पता चलता है कि चाहे कहानी हो या उपन्यास, उनके शीर्षक पाठकों के दिल-दिमाग पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं और पाठक रचना को पढ़ने के लिए लालायित हो जाता है। उदाहरणस्वरूप कहानियों के अंतर्गत 'तिरिया चरित्तर', 'कुच्ची का कानून', 'अकाल-दंड', 'कसाईबाड़ा', 'जुल्मी', 'केशर कस्तूरी' और उपन्यासों के अंतर्गत 'त्रिशूल', 'तर्पण' और 'आखिरी छलांग' को लिया जा सकता है। शिवमूर्ति की विशेषता यह है कि उनके शीर्षक बहुत छोटे होते हैं और कौतूहल को बढ़ाने वाले होते हैं। शीर्षक पढ़कर ही पाठक उनकी कहानियों और उपन्यासों को पढ़ने में अपनी रुचि दिखाने लगता है। इन शीर्षकों में कहीं व्यंग्य की प्रधानता है, तो कहीं समाज में फैली हुई विद्रूपताओं का सच व्याप्त है।

'तिरिया चरित्तर' शीर्षक भर्तृहरि के श्लोक 'त्रिया चरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम्' से प्रेरित है। कथाकार इस वाक्य का प्रयोग स्त्री पर आरोपित समाज के सबसे बर्बर विद्रूप को रेखांकित करने के लिए करता जान पड़ता है, लेकिन कहानी की सभी स्त्रियों को देखने से पता चलता है कि इसमें एक भी किरदार ऐसी नहीं हैं, जिसके चरित्र को 'त्रिया चरित्र' की परिभाषा में पढ़ा जा सके। न तो विमली, न उसकी माँ और न मनतोरिया की माई। ये सभी प्रगतिशील पात्र हैं। कहानी का समाज इस प्रगतिशीलता को 'तिरिया चरित्तर' कहकर नकारता है। यही इस शीर्षक की सार्थकता है।

'अकाल-दंड' कहानी में खुद 'सुरजी' सेक्रेटरी बाबू के शरीर का सबसे नाजुक हिस्सा काटकर उस व्याभिचारी को उसके किए की सजा देती है। 'कसाईबाड़ा' कहानी में वर्णित पूरा गाँव कसाईबाड़ा हो गया है। इस कहानी में

आदर्श विवाह के नाम पर गरीब लड़कियों से धंधा कराया जाता है। 'जुल्मी' कहानी उस जुल्मी पति पर केंद्रित है, जो अपनी बेगुनाह पत्नी को छोड़कर दूसरी शादी कर लेता है। 'कुच्ची का कानून' शीर्षक यह बताता है कि कुच्ची जैसी गाँव की अशिक्षित और गरीब स्त्रियाँ अब अपनी कोख पर अपना हक जताने लगी हैं। अब उन्हें किसी समाज और सरकार के दायरे के दबाव में रहकर जीना मंजूर नहीं है। 'केशर कस्तूरी' कहानी की केशर में नियति को स्वीकार कर प्रारब्ध से लड़ने का जो जज्बा है, वही उसे केशर से कस्तूरी बना देता है। इस प्रकार शिवमूर्ति ने अपने शीर्षकों के माध्यम से पाठकों का मन मोह लिया है।

जहाँ तक उपन्यासों के शीर्षकों का प्रश्न है, 'त्रिशूल' उपन्यास का शीर्षक भौतिक, दैहिक तथा दैविक शूलों का प्रतीक है जो समाज के ह्रदय में गहरे गड़ा है। जहाँ अपने पुरखों की चुप्पी को तोड़ने तथा उसका तर्पण करने के लिए रचा गया 'तर्पण' उपन्यास दलित समाज द्वारा ली नयी करवट का आगाज है, तो 'आखिरी छलांग' उपन्यास सकारात्मक सोच की तरफ लगाई गयी छलांग है। इस प्रकार शिवमूर्ति की कहानियों और उपन्यासों के शीर्षक बहुत छोटे, आकर्षक और पाठकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ते हैं।

## 5.2 शैली पक्ष

किसी भी साहित्यिक कृति की सुंदरता में उसकी शैली का महत्वपूर्ण योगदान होता है। शैली से ही कृति में कलात्मकता आती है। प्रत्येक रचनाकार की अपनी-अपनी शैली होती है। यही कारण है कि प्रत्येक रचनाकार की रचना में एक नूतनता नज़र आती है। विभिन्न विद्वानों ने समय-समय पर शैली को अपने ढंग से विश्लेषित करने का प्रयास किया है। 'मानक हिंदी कोश' में शैली की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है -**"शैली का अर्थ होता है 'तरीका', 'ढंग', साहित्य में बोल या**

**लिखकर विचार प्रकट करने का वह विशिष्ट ढंग जिस पर वक्ता या उसके काल आदि की छाप होती है।"**[37] परिभाषा के अनुसार यह ज्ञात होता है कि शैली पर वक्ता, लेखक और समय का प्रभाव होता है। शैली के संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह का यह मन्तव्य विचारणीय है - "**कथानक की धारणा बदल गयी है - जीवन का एक लघु प्रसंग, मूड, विचार अथवा विशिष्ट व्यक्ति, चरित्र ही कथानक बन गया है अथवा उसमें कथानक की क्षमता मान ली गयी है।"**[38] उद्धरण में इस बात पर बल दिया गया है कि समकालीन कथा-साहित्य का कथानक आज कई शैलियों में व्यक्त हो रहा है। चरित्र ही अब कथानक बन गया है। जहाँ तक शिवमूर्ति की कहानियों और उपन्यासों में शैली के प्रयोग की बात है, इनमें वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, संवाद, नाटकीय, चित्रात्मक, व्यंग्यात्मक, पूर्वदीप्ति, मिथक कथात्मक, विचारपरक आदि शैलियों का प्रयोग हुआ है।

### 5.2.1 वर्णनात्मक शैली

वर्णनात्मक शैली साहित्य की परंपरागत और सबसे ज्यादा प्रचलित शैली है। इसके प्रयोग से रचनाकार को विषय विस्तार के लिए अपेक्षाकृत अधिक भूमि मिल जाती है और इसमें कलात्मकता का उतना ध्यान रखना नहीं पड़ता है। वर्णनात्मक शैली में रचनाकार पाठकों के समक्ष एक सजीव एवं प्रभावपूर्ण वर्णन प्रस्तुत करता है और अपने विषय को विस्तार देता है। प्रकृति या घटना का विस्तृत वर्णन करने के पीछे लेखक का उद्देश्य होता है कि वह पाठकों के सामने विषय या घटना की स्पष्ट तस्वीर खड़ी कर सके। पात्रों के हाव-भाव का अंकन करने के लिए वर्णनात्मक शैली ही सबसे उपयुक्त होती है। विषय या घटना के बारीक से बारीक बिन्दु को इस शैली के माध्यम से लेखक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस शैली को अपनाने से लेखक निर्लिप्त भाव से कथा का

वर्णन करता चला जाता है और पाठक की आँखों के सामने दृश्य खड़ा होता चला जाता है।

कथाकार शिवमूर्ति ने भी अपने कथा साहित्य में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। 'केशर कस्तूरी' कहानी का एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है- **"केशर नाम का चुनाव भी उसने खुद किया। पहले उसका नाम था-केश कुमारी। पुकारने के लिए संक्षिप्त नाम 'केशा' प्रयोग में आता था। एक दिन किसी आगंतुक ने उससे नाम पूछा और 'केशा' के बजाय 'केशर' सुन लिया। तारीफ कर दी- वाह! कितना सुंदर नाम है- केशर कस्तूरी, रूप और गंध दोनों एक साथ।"**[39] प्रस्तुत उद्धरण में केशर के नामकरण की पूरी कहानी वर्णनात्मक शैली में बताई गयी है। यह बड़ा ही सजीव और प्रभावपूर्ण वर्णन है।

इसी तरह का एक वर्णन 'त्रिशूल' उपन्यास से भी उद्धृत किया जाता है, जिसमें लेखक सरकारी कॉलोनी और पारंपारिक मोहल्ले के बीच के अंतर को सामने रखता है - **"पाँच महीने पहले स्थानांतरित होकर इस शहर में आया तो कोई सरकारी आवास खाली नहीं मिला। इस मुहल्ले में आना पड़ा। कुछ असुविधाजनक लगा था तब। सरकारी कॉलनी की अपनी अलग संस्कृति होती है। वहाँ सभी साल-दो साल पहले के आए होते हैं और साल-दो साल के अंदर जाने का मन बनाए रहते हैं। प्रकृति और प्रवृत्ति से बनजारे। पड़ोसी से न ज्यादा लगाव हो पाता है न दुराव। जितना चाहे अपना विस्तार करें, जितना चाहे परिसीमन। जबकि पारंपरिक मोहल्लों की अपनी संस्कृति होती है। आचार-विचार का अपना स्थानीय रूढ तरीका। इस मोहल्ले में रहने के बाद पता लग रहा है कि वास्तव में पड़ोसी से मिलने वाली आत्मीयता क्या होती है।"**[40] शिवमूर्ति ने इन पंक्तियों में

सरकारी और पारंपरिक मोहल्ले का वर्णन वर्णनात्मक शैली में बहुत ही सुंदर और प्रभावपूर्ण भाषा में प्रस्तुत किया है।

### 5.2.2 आत्मकथात्मक शैली

इस शैली में कहानी का प्रमुख चरित्र ही कहानी के लिए सब कुछ होता है। उसी चरित्र के आस-पास कहानी की सारी घटनाएँ घटित होती हैं। अर्थात् आत्मकथात्मक शैली में लेखक अपने जीवन में घटित घटनाओं, प्रभावों और अपने मानसिक उत्थान-पतन को चित्रित करता है। आत्मकथात्मक शैली में लेखक 'मैं' के रूप में आता है, जिससे उसके व्यक्तित्व के साथ-साथ तत्कालीन युग-परिवेश भी प्रकट होता चलता है। साहित्य में जो कथा प्रथम पुरुष या उत्तम पुरुष में प्रस्तुत की जाता है, वह आत्मकथात्मक शैली कहलाती है। कथाकार शिवमूर्ति ने भी आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग अपने कथा साहित्य में किया है। 'भरतनाट्यम्' कहानी का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है- **"मास्टरी छोड़ने के बाद घर में रही सही साख भी समाप्त हो गयी थी। हर सदस्य मुझसे पहले से अधिक दूर हो गया।"**[41] नौकरी न करने से या यूं कहिए कि अपनी नौकरी के साथ समझौता न करने से कहानी का 'मैं' अपने ही परिवार के लिए बोझ बन जाता है। इस शैली में पाठक सम्पूर्ण कहानी को 'मैं' के माध्यम से देखता-सुनता है।

कथाकार शिवमूर्ति ने 'केशर कस्तूरी' कहानी भी आत्मकथात्मक शैली में लिखी है। कहानी का प्रारंभ ही इस शैली में होता है। 'पापा' और बेटी में इस तरह बात होती है- **"पापा, आपके ए. सी. साहब आए हैं, बेबी ने कमरे में घुसते हुए सूचित किया। मैं चौंक गया। पूछा- कहाँ हैं? बाहर सड़क पर जीप में ही बैठे हैं। मैंने कलम और रजिस्टर फेंकते हुए आवाज लगाई और उलटकर बिस्तर से नीचे उतर आया।"**[42] चूँकि इस संवाद में लेखक स्वयं महत्वपूर्ण पात्र का स्थान ग्रहण

करके कहानी का प्रत्यक्ष वर्णन पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है, अतः इसमें प्रभावात्मकता अधिक उभरकर सामने आई है। लेखक और पाठक एक दूसरे के और निकट हो गए हैं।

वास्तव में आत्मकथात्मक शैली का उद्देश्य है कि वह अपनी गत स्मृतियों को पुनर्जीवित कर साहित्य में आत्म परीक्षण करे। अतः लेखक किसी पात्र के माध्यम से प्रथम पुरुष में अपने विचार अभिव्यक्त करता है। इस शैली से रचना में अधिक यथार्थ, स्वाभाविक और विश्वसनीय मोड़ आ जाता है। शिवमूर्ति ने 'त्रिशूल' उपन्यास की सम्पूर्ण कथा नैरेटर के रूप में कथा-नायक पाल साहब के माध्यम से इसी शैली में कही है। 'त्रिशूल' उपन्यास का यह उदाहरण इसकी पुष्टि में प्रस्तुत है - **"शास्त्रीजी मेरे निकटतम पड़ोसी हैं। बाईं ओर ठीक बगल का मकान है उनका। व्यवसायी हैं। विद्यालयों, क्लबों और कई संस्थाओं में पदाधिकारी हैं। सबके दुख दर्द में शामिल होने को तत्पर रहते है।"**[43] इस उद्धरण से ध्वनित होता है कि शास्त्री जी कथानायक पात्र साहब के बहुत ही निकटतम लोगों में से एक हैं। वह शास्त्री जी का सब कुछ जानता है। इससे कथा की विश्वसनीयता बढ़ी है।

### 5.2.3 संवाद शैली

संवाद शैली को वार्तालाप या कथोपकथन भी कहते हैं। नाटक में संवाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं, फिर भी संवाद शैली का प्रयोग कथा-साहित्य में भी किया जाता है। कथा को गतिशील बनाने के लिए तथा कथा में पात्रों के कार्यकलाप को अधिक सुचारु रूप से चलाने के लिए संवाद महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संवाद, पात्र-प्रसंग, कथा-वस्तु के अनुरूप छोटे-बड़े, रोचक, व्यंग्यात्मक आदि प्रकार के हो सकते हैं।

शिवमूर्ति के कथा-साहित्य में पात्रों की विविधता दिखाई देती है। यदि ये पात्र ग्रामीण हैं, तो ग्रामीण भाषा में संवाद बोले जाते हैं। इस दृष्टि से 'कुच्ची का कानून' कहानी में नर्स 'कुट्टी' और 'कुच्ची' का संवाद पति के 'डेमन' होने की बात के साथ बच्चा 'गिफ्ट' कैसे लिया जाता है, यह द्रष्टव्य है -

**"एक दिन मुस्कुराकर पूछा - दूसरी शादी कब बनाएँगा?**

**कुच्ची भी मुस्कुराई - जब तुम बनाएगा।**

**--ना बाबा। हम तो कब्भी नहीं बनाएँगा।**

**क्यों?**

**--हमको जलने से बहुत डर लगता। दारू पीकर आएँगा और केरासिन डालकर जला देगा।**

**लेकिन बाद में पता चला कि इसके तो एक बेटा भी है। सात-आठ साल का। एक दिन बस्ता टाँगे स्कूल से अस्पताल आ गया था।**

**कुच्ची ने पूछा - तुम्हारे तो बच्चा है?**

**--बच्चा बनाया, मगर शादी नहीं बनाया।**

**--तो बच्चा कैसे बनाया?**

**--बच्चा एक फ्रेंड से 'गिफ्ट' लिया। उसके साथ महीने भर सोया और बच्चा मिल गया। फ्रेंड बोला–शादी बनाएगा? हम बोला -नहीं। हसबैंड बनाते ही 'लभर' डेमन बन जाता। डेमन समझती?**

**मरद की जरूरत तो पड़ती है न। --कुच्ची मुस्कुराई।**

**--जरूरत पड़ने पर मरद मिल सकता। जरूरत पड़ने पर बच्चा मिल सकता।-**

**सैंडल खटकटकर जाती हुई कुट्टी मुड़कर मुसस्कुराते हुए बोली–मरद नहीं, हसबैंड खतरनाक होता।"[44]**

उद्धरण से ज्ञात होता है कि नर्स कुट्टी को हिन्दी भाषा ठीक से नहीं आती, फिर भी वह बड़े ही रोचक ढंग से कुच्ची को समझाती है कि शादी के पश्चात् पति का स्वभाव बदल जाता है, और वह खतरनाक हो जाता है। यही संवाद कुच्ची के जीवन का 'टर्निंग पॉइंट' साबित होता है। जिस प्रकार नर्स कुट्टी ने बिना शादी किए बच्चा हासिल किया था, उसी प्रकार गाँव की कुच्ची भी बच्चा हासिल करती है। नर्स कुट्टी के संवाद की यह विशेषता है कि कुच्ची भी वैसा ही करने के लिए प्रेरित होती है।

शिवमूर्ति के पूरे कथा साहित्य में संवाद बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। वे संवाद लेखन के जादूगर हैं। जैसे पात्र वैसे ही संवाद के लिए वे विख्यात हैं। 'ख्वाजा, ओ मेरे पीर!' कहानी का एक संवाद यहाँ उद्धृत है, जिसमें लेखक के मामा और मामी बहुत दिनों के बाद परस्पर मिलते हैं। दोनों के बीच संवाद इस प्रकार होता है-

**"फिर मामा को देखने की कोशिश करते हुए पूछा-**

**"केस अहा?**

**-भल अहि!**

**- मुँड़वा कै पिरबवा बंद भा कि नाही?**

**-अब ऊ मरेन पै बंद होए।**

**थोड़ी देर बाद मामा ने पूछा - तू भले अहा?**

**-जियरा जियत बा।"**[45]

वृद्धावस्था में बहुत दिनों के बाद मिलने पर एक पति-पत्नी के बीच का यह संवाद है। संवाद से यह ध्वनित होता है कि लंबे अंतराल के बाद भी मिलने पर इन दोनों के बीच एक दूसरे के प्रति प्रेम में कोई कमी नहीं आई है।

संवाद शैली का एक बहुत ही प्रभावी वार्तालाप 'त्रिशूल' उपन्यास का यहाँ प्रस्तुत किया जाता हैं, जिसमें कथानायक पाल साहब और उनके पुत्र के बीच बातचीत होती है। बातचीत इस प्रकार है-

**"पापा, आज हमारे स्कूल में मुसलमान आए थे।**

**-ऐं, कैसे पता चला?**

**-स्कूल के 'पियन' ने बताया।**

**-मुसलमान कौन होते हैं बेटा?**

**-बच्चे पकड़ने वाले, आग लगाने वाले, छुरा भोंकने वाले!**

**-किसने बताया?**

**-सभी बच्चे जानते हैं।**

**-उन्हें किसने बताया?**

**-पता नहीं।**

**-तुमने किसे बताया?**

**-महमूद को।**

**-उसने क्या कहा?**

**-वह हँस रहा था।**

**-बेटा, मुसलमान तो महमूद भी है।**

**-नहीं पापा। वह तो भाईजान है।"[46]**

उपन्यास में वर्णित पिता-पुत्र का यह संवाद इस ओर इंगित करता है कि सांप्रदायिकता के तहत बच्चों को भी किस तरह गलत संदेश दिया जाता है। यह पूरा संवाद भारतीय समाज में फैलते हुए आपसी वैमनस्य की वास्तविकता को उजागर करता है। इस वैमनस्य में बच्चों को भी नहीं छोड़ा जाता।

### 5.2.4 नाटकीय शैली

कथा में वर्णित घटना, परिस्थिति और चरित्र का उद्घाटन करने के लिए कथाकार नाटकीय शैली का प्रयोग करता है। पात्रों के संवाद ही नाटकीय शैली के महत्वपूर्ण तत्व हैं। कथा के वर्णन में कलात्मकता लाने के लिए लेखक नाटकीय शैली का प्रयोग करता है। वह नाटकीय संवादों के द्वारा कथा में कौतूहल निर्माण कर पाठक को कथा से जोड़े रखने में सफल होता है। शिवमूर्ति ने अपने कथा-साहित्य में पात्रों की भाषा बड़े ही नाटकीय ढंग से प्रस्तुत की है। इसी कारण उनकी ज़्यादातर रचनाओं का मंचन भी हो सका है। नाटककार को नाटक के लिए संवाद लिखने में ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ती। शिवमूर्ति की 'तिरिया चरित्तर ' कहानी की शुरुवात ही नाटक की तरह होती है, जहाँ एक बूढ़ी माँ अपनी बेटी को जगा रही है। उदाहरण इस प्रकार है **- "विमली ! ए विमली !....एकदम्मै मर गई का रे ..." ज़ोर लगाते ही बुढ़िया को खाँसी आ जाती है। "यह हरजाई तो खटिया पर गिरते ही मर जाती है।" बुढ़िया खटिया के पास जाकर विमली को झिंझोड़ने लगी, "मरघट ले चलौं का रे?" हड़बड़ाकर उठती है विमली और आँख मींजते हुए झोपड़ी के बाहर चली जाती है।"**[47] यह पूरा उद्धरण एकदम नाटकीयता लिए हुए है। पढ़ते समय लगता है कि कोई नाटक का दृश्य देखा जा रहा है।

अपनी रचना में शिवमूर्ति मनुष्यों के साथ-साथ पशुओं में भी नाटकीय स्थितियाँ उत्पन्न करते हैं, जिनमें जीवन का उल्लास, पशुओं का प्रेम, उनका हावभाव आदि झलकता है। 'त्रिशूल' उपन्यास का महमूद जब पाल साहब का घर छोड़कर जा रहा होता है, तब का वर्णन बड़ा ही नाटकीय है। वर्णन द्रष्टव्य है- "**महमूद गाय के गले से लगा सिसक रहा है। उसके पीछे झबुआ पूँछ गिराए खड़ा है। पास बँधा बछड़ा कुछ न समझते हुए भी उठकर खड़ा हो गया है और अपनी**

**बड़ी-बड़ी पानीदार आँखें निकालकर मानो पूछ रहा है-क्या हुआ महमूद भाईजान को?"**[48] कथाकार शिवमूर्ति जानवरों के चित्रण में कमाल की महारत हासिल किए हुए हैं। उनके पात्र जानवरों से इतना प्यार करते हैं कि बिछड़ने पर वे फूट-फूट कर रोते हैं। वे इस तरह के चित्रण में गजब की नाटकीयता पेश करते हैं।

'तर्पण' उपन्यास का अंत लेखक बहुत ही नाटकीय ढंग से करता है। पहली बात तो यह है कि बिना किसी गुनाह के पियारे  जेल जा रहा है। गुनाह उसके बेटे ने किया है और दूसरी बात यह है कि जेल जाते समय पियारे को किसी तरह के दुख का अहसास नहीं है। पाठक भी जिसकी कल्पना नहीं करता, वह घटित होता है- **"जेल वाहन की जाली से मुँह सटाकर फागुन की ठंडी पुरवा को फेफड़े में भरता है पियारे और आँखें मूँद लेता है। उसे लगता है, जैसे पुरखों का तर्पण करने के लिए 'गया- जगन्नाथ जी' जा रहा है।"**[49] इसी नाटकीय मोड़ पर उपन्यास समाप्त होता है। जेल जानेवाला निर्दोष व्यक्ति यहाँ महसूस करता है कि वह धार्मिक अनुष्ठान के लिए जा रहा है, जो बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है।

### 5.2.5 चित्रात्मक शैली

चित्रात्मक शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है - चित्र के रूप में, चित्रमय या चित्रयुक्त। जब एक लेखक अपनी रचना में ऐसे शब्द तथा वाक्य का चयन करता है कि वे शब्द और वाक्य पाठक के मन-मस्तिष्क में चित्र की भाँति छा जाते हैं तथा चित्र की भाँति हृदय में उतर जाते हैं, तो उसे चित्रात्मक शैली कहते हैं। यह शैली कहानी, उपन्यास, रेखाचित्र, संस्मरण आदि सभी विधाओं में पायी जाती है। इस शैली का प्रयोग शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों और उपन्यासों दोनों में किया है। 'सिरी उपमा जोग' कहानी का एक चित्र यहाँ प्रस्तुत है, जो गाँव के एक देहाती लड़के का है। वह ए.डी. एम. साहब के दफ्तर के पास खड़ा है- **"अर्दली लड़के को**

**ध्यान से देख रहा है। मटमैली सी सूती कमीज और पाजामा, गले में लाल रंग का गमछा, छोटे-कड़े-खड़े-रूखे बाल, नंगे पाँव। धूल-धूसरित चेहरा, मुरझाया हुआ।"**[50] इस पूरे चित्रण से ज्ञात होता है कि लड़के की स्थिति बेहद शोचनीय है।

शिवमूर्ति ने 'तर्पण' उपन्यास में मुन्ना के इंतज़ार में खड़े भाई जी द्वारा तालाब की सुंदरता का चित्र खींचा हैं -**"वे ताल की सुंदरता निहारने लगते हैं। किसी जमाने में सचमुच हाथी के डुबान का पानी रहा होगा। ताल को चारों तरफ से घेरे भीटे पर बँसवारी रुसहनी और बकाइन की घनी झड़ियों का राज है। इनके बीच में लाल अंगार की तरह अभी-अभी फूलना शुरू कर रहें हैं पलास। पीछे की ओर चौथे कोने से ताल का एक भाग पूँछ की तरह आगे तक बढ़ गया है। ताल के पानी में पड़ता हरियाली का प्रतिबिंब उसे और काला तथा रहस्यमय बना रहा है।"**[51] यह शिवमूर्ति की भाषा की ही कलात्मकता है, जो बड़ी ही सहजता के साथ शब्दों के माध्यम से तालाब का सुंदर चित्र खींचा गया है। शब्दों में पूरा तालाब उभरकर आ गया है।

### 5.2.6 व्यंग्यात्मक शैली

व्यंग्यात्मक शैली में किसी व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति, घटना की कठोरता पर व्यंग्य कसा जाता है। कभी यह व्यंग्य हास्यात्मक तो कभी तीखे चुभते शब्दों के माध्यम से किया जाता है। एक तरह से किसी को ताना मारना इस शैली का मुख्य उद्देश्य होता है। व्यंग्यात्मक शैली से ऐसे प्रखर शब्द रूपी बाण छोड़े जाते हैं, जो सीधे दिल पर वार करते हैं। मानव जीवन की विद्रूपताओं को उजागर करने के लिए यह शैली बड़ी कारगर सिद्ध होती है। व्यक्ति और समाज की कमजोरियों को बड़ी ही बुद्धिमत्ता के साथ ऐसे संकेतों से प्रस्तुत किया जाता है कि वह व्यक्ति या समाज हँसी का विषय बन जाता है।

शिवमूर्ति भी अपने पात्रों के जरिए व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग यथा प्रसंग करते हैं। उनकी कहानी 'भरतनाट्यम्' का पूरा ताना-बाना शीर्षक से लेकर विषयवस्तु तक व्यंग्यात्मक शैली में ही रचा गया है। कहानी का नौजवान शिक्षित बेरोजगार 'मैं' अपने पिता जी के विषय में कहता है- **"जी हाँ! बाप ही कहना ठीक लगता है। लगता है 'बाप' नहीं 'बाघ' कह रहा हूँ। दोनों ही के नाम पर मेरे आगे लाल-लाल आँखें कौंध जाती हैं। 'पिताजी' संबोधन उनके लिए ठीक नहीं बैठता। मेरे ख्याल में 'पिताजी' बहुत ही पालतू, सीधा-सादा जीव होता होगा, जो प्रायः शहरों में पाया जाता होगा या फिर प्राइमरी अथवा मिडिल स्कूल का चोटी-धोतीधारी 'गुरुजी' होता होगा।"**[52] उद्धरण में पिताजी पर व्यंग्य किया गया है। वे बाप नहीं वाघ हैं जिनकी लाल-लाल आँखें डरावनी हैं।

'आखिरी छलांग' उपन्यास में पहलवान अपने बेटे की शादी के सिलसिले में दहेज की माँग करने वाली पहलवानिन पर व्यंग्य इस प्रकार करता है **-"तुम भी बेटे की ऊंची से ऊंची कीमत लगवाने का मनसूबा बाँध रही हो?"**[53] पहलवान द्वारा जब 'तुम भी' बोला जाता है, तब यह व्यंग्य है उन पर जो दहेज में लड़की वालों से बहुत सा धन वसूलना चाहते हैं, जबकि वे खुद भी अपनी लड़की की शादी की खोज में दहेज की समस्या से जूझते हैं। पहलवान खुद अपनी लड़की की शादी खोज रहा है, लेकिन पहलवानिन इससे बेखबर हैं।

### 5.2.7 पूर्वदीप्ति शैली

वर्तमान कथा साहित्य में पूर्वदीप्ति शैली का भी काफी प्रचलन है। इसे 'फ्लेश-बैक' शैली कहते हैं। इस शैली में अतीत की घटनाओं को पात्रों की स्मृति के आलोक से दीप्त करके प्रस्तुत किया जाता है। इस शैली के माध्यम से पात्र विगत स्मृतियों द्वारा वर्तमान कथा को अपने अतीत से जोड़ देता है। इस शैली

में पात्र को अपने विगत जीवन का स्मरण रहता है। यह शैली मुख्यतः सिनेमा से संबंधित है, जिसमें घटनाओं को तत्काल न दिखाकर किसी पात्र को स्मृति में लौटाकर दिखाया जाता है। इसमें एक ही घटना पर पात्र के दोहरे मनोभावों का प्रभाव सरलता से दिखाया जा सकता है। 'सिरी उपमा जोग' कहानी में पूर्वदीप्ति शैली का सुंदर चित्रण हुआ है। इस सौंदर्य को इस उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है, जिसमें कहानी के नायक की पहली पत्नी अपने पति को अपनी दशा का वर्णन तथा किसी उचित समाधान की अपेक्षा करती हुई पत्र लिखती है, जिसे पढ़कर कहानी का नायक अतीत में चला जाता है। लेखक लिखता है- **"चिट्ठी खोलकर वे पढ़ना शुरू करते हैं- सरब सिरी उपमा जोग खत लिखा लालू की मई की तरफ से, लालू के बप्पा को पाँव छूना पहुँचे।" अचानक जैसे करंट लग जाता है उनको। लालू की माई की चिट्ठी। इतने दिनों बाद। पसीना चुहचुहा आया है उनके माथे पर । सन्न!"**[54] इस पत्र में जो शब्द आए हैं और जिस तरह की भाषा का प्रयोग उसमें किया गया है, उसे पढ़कर पात्र पाठक भीतर से हिल उठता है। वह सन्न हो जाता है। वह पूरी तरह से अतीत की गहराइयों में खो जाता है।

'त्रिशूल' उपन्यास में कथा नायक 'मैं' अपने प्राइमरी स्कूल के सहपाठी हसन को याद करता है। उदाहरण इस प्रकार है- **"मेरे घर से मील भर दूर था उसका टोला। दोनों आधे रास्ते तक साथ ही साथ स्कूल से लौटते। एक दिन लौटते हुए उसने अपनी समस्या बताई थी। गाँव का पियक्कड़ खोखन सिंह बाजार के दिन धुत्त होकर देर रात गए लौटता और हसन के टोले की ओर जा निकलता। हसन की बेवा माँ को तंग करने। तब हम लोग पाँच में पढ़ते थे और तंग करने का मतलब अपनी जरूरत भर को समझने लगे थे।"**[55] प्रस्तुत उद्धरण में कथानायक 'मैं' अपनी पाँच साल की उम्र में सहपाठी हसन की बेवा माँ के साथ ठाकुर द्वारा किए हुए दुर्व्यवहार को याद करता है। उसका सहपाठी मित्र

किस तरह से खोखन सिंह के डर से आधी रात तक पगडंडी की सरपताही में बैठा रह गया था।

### 5.2.8 मिथक कथात्मक शैली

मिथक परंपरागत अनुश्रुति है जो किसी पौराणिक कथा एवं घटना से संबन्धित होती है। मिथक शब्द अँग्रेजी के 'मिथ' के हिंदी रूपांतरण से निर्मित है। विशेषतः इसका संबंध विश्व की उत्पत्ति तथा देवताओं से है। मिथक एक ऐसा विश्वास है जो बिना किसी तर्क के स्वीकारा जाता है। वर्तमान समय में लेखकों ने अपना मिथक शास्त्र खुद तैयार किया है, ताकि उन्हें अपनी रचनाओं में विश्वासों का संवाहक बनाया जाए। साहित्य मिथक नहीं है, किंतु साहित्य में मिथक का साभिप्राय प्रयोग होता है। रचनाकार अपने युगीन यथार्थ को और जटिल मानसिकता को प्रस्तुत करने के लिए मिथकों का सहारा लेते हैं। यही कारण है कि कथाकार शिवमूर्ति ने भी अपने साहित्य में मिथकों का सहारा लिया है। 'त्रिशूल' उपन्यास का शीर्षक ही मिथक पर आधारित है।

लेखक ने 'कसाईबाड़ा' कहानी में शनिचरी और अधरंगी के वार्तालाप में मिथक कथात्मक शैली का सहारा लिया है। अनशन पर बैठी शनिचरी अधरंगी से कहती है- **"अन्याय के हद होत है तो ई धरती फाटि जात है अधरंगी बेटवा।" अधरंगी कहता है- "अभी तक तो मैंने कभी फटते नहीं देखी।" शनिचरी फिर कहती है-"विश्वास से फटेगी बेटवा। सीता माता के खातिर फाटि रही।"**[56] यह पूरा संवाद धरती और मिथक पर आधारित है। मिथक एक विश्वास है, जहाँ तर्क के लिए कोई स्थान नहीं है।

### 5.2.9 विचारपरक शैली

इस शैली की भाषा बहुत ही संयत और गंभीर होती है। विचारधारा किसी भी रचना का प्राण तत्व है। जिस तरह सम्पूर्ण शरीर में प्राण वास करता है, उसी तरह विचारधारा भी पूरी रचना में व्याप्त रहती है। जैसे खाने में नमक दिखाई तो नहीं देता है, परंतु उसके स्वाद को चखा जा सकता है, वैसे ही रचनाकार के विचार उसके कथा-साहित्य में सर्वत्र फैले रहते हैं। विचारधारा के इस फलक पर जब हम शिवमूर्ति के साहित्य पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि उनकी रचना प्रक्रिया में कोई कृत्रिमता नहीं है, बल्कि उनमें सहज बोध है। अपने आस-पास के समाज में वे जो कुछ भी देखते हैं, उस पर गहराई से विचार करते हैं और अपना मत रखते हैं। उनके मत को समझने के लिए 'त्रिशूल' उपन्यास के शास्त्री जी और कथा नायक पाल साहब का संवाद देखा जा सकता है- **"एक बात पूछना चाहता हूँ। जानना आवश्यक है। आप आस्तिक हैं या नास्तिक?"**[57] इस प्रश्न का उत्तर देकर पाल साहब शास्त्री जी को दुखी नहीं करना चाहते और न ही पड़ोसी के संबंधों में कोई दूरी बढ़ाना चाहते हैं। अतः वे उत्तर में सिर्फ इतना ही कहते हैं - **"मैं यह तो मानता हूँ कि ब्रह्मांड का नियामक कोई सत्ता है। किन्तु यह नहीं मानता कि यह नियामक अयोध्या के राजा रामचन्द्रजी महाराज हैं या थे।"**[58] पाल साहब के इस जवाब से जब शास्त्री जी को तसल्ली नहीं मिलती, तो पाल साहब आगे कहते हैं - **"संक्षेप में इतना ही कि मेरी कल्पना का ईश्वर केवल हिंदुओं का ईश्वर नहीं है। वह सभी धर्मावलम्बियों का है। विभिन्न धर्मों के उद्भव से पूर्व था। और इनके न रहने पर भी रहेगा। विभिन्न धार्मिक ब्रांड के ईश्वर स्वयंभू नहीं। उन्हें हमने अपनी जरूरत, अपने स्वार्थ के अनुसार गढ़ा है।"**[59] आशय यह कि शिवमूर्ति की विचारधारा मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने की है। वे 'वसुधैव कुटुंबकम्' के पक्षधर हैं।

शिवमूर्ति की विचारपरक शैली उनकी हर रचना में देखने को मिलती है। 'तर्पण' उपन्यास में वे दलितों के प्रवक्ता के रूप में सामने आते हैं तो 'आखिरी छलांग' उपन्यास में वे किसानों में आत्म विश्वास जगाते हैं। उनकी कहानियों की सभी दलित स्त्रियाँ कभी हार नहीं मानतीं। वे डट कर मुश्किलों का सामना करती हैं और आने वाली दलित पीढ़ी के लिए, विशेषकर स्त्रियों के लिए प्रेरणा स्त्रोत बनती।

### 5.3 कथेतर साहित्य में भाषा का प्रयोग

कथाकार शिवमूर्ति के कथेतर साहित्य के अंतर्गत उनका संस्मरण 'सृजन का रसायन' और उनके दो यात्रा वृत्तांत 'जैक लंडन के देश में' और 'लू शुन के देश में' शामिल हैं। 'सृजन का रसायन' में मुख्य रूप से उन्होंने अपने जीवन से जुड़ी हुई घटनाओं और जीवन से जुड़े हुए लोगों का चित्रण किया है। साथ ही यह भी बताया है कि उनके लेखन की प्रक्रिया क्या रही है। 'सृजन का रसायन' में जब भाषा के प्रयोग पर विचार किया जाता है तो पाया जाता है कि उसमें शुद्ध खड़ी बोली हिंदी का प्रयोग हुआ है। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है, जिसमें लेखक अपनी पत्नी के विषय में लिखता है- **"पत्नी के आने के पूर्व मैं इतना समझदार नहीं था कि दुख, गरीबी, विपत्ति या संघर्ष का विश्लेषण कर पाता। जैसे गाँव-पवस्त में अन्य लोग हालात से जूझ रहे थे, मैं भी जूझने लगा। और जब तक कुछ समझदारी आती, उससे पहले ही पत्नी आकर मेरे साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी हो गयीं। वक्त पड़ने पर वे बगल में सटकर खड़ी दिखने लगीं। आश्वस्तिभाव के साथ - मैं हूँ न।"**[60] उद्धरण में 'गाँव-पवस्त', कंधे से कंधा मिलाकर', 'मैं हूँ न' वाक्य भाषा में चार चाँद लगाते हैं।

'जैक लंडन के देश में' यात्रा वृत्तांत की भाषा मुख्य रूप से खड़ी बोली है, लेकिन बीच-बीच में अँग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं लेखक दार्शनिक मुद्रा में भी हो गया है। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है- **"जैक लंडन स्क्वेयर जाकर मन तृप्त हो गया। करीब एक दशक पहले इस स्क्वेयर पर चीमा मानुमेंट की स्थापना हुई है। काँसे की 18 फीट ऊँची आड़े उड़ते ईगल के धुले हुए पंख की पृष्ठभूमि में नारी मूर्ति। अद्भुत, अद्भुत। कितना सँभालकर, सँजोकर रखा है इस देश के लोगों ने अपने प्रिय लेखक की यादगार को। मन करता था इस मनोरम स्थल पर बैठे ही रहें।"**[61] यहाँ लेखक पूरी तरह से विचारक की भूमिका में हो गया है और उसकी भाषा कथात्मक हो गई है।

'लू शुन के देश में' यात्रा वृत्तांत लेखक के चीन यात्रा से संबंधित है। इस वृत्तांत में लेखक काव्यात्मक हो गया है। वृत्तांत की शुरुवात वह 'इस पार हमारा भारत है, उस पार चीन जापान देश' से करता है। वह फिर अपने होटल 'डे इन ज्वाइस्ट' के अनुभव का चित्रण करते हुए लिखता है- **"कमरा और बाथरूम तो बड़ा था, लेकिन नहाने के लिए बनाया गया शीशे का केबिन इतना छोटा कि उसमें खड़े होने के बाद झुकना मुश्किल। कैसे होटल में इंतजाम किया है इन लोगों ने। मेरी आदत पीढ़े पर इत्मीनान से बैठकर नहाने की है। खड़े-खड़े नहाना भी कोई नहाना हुआ। यह तो उसी तरह मजबूरी में निबटाना हुआ, जैसे भूतकाल में कभी समयाभाव या स्थानाभाव के चलते एकाध आनंददायक काम खड़े-खड़े निबटा लिए जाते थे। थोड़ी ठंड भी थी इसलिए शाम का स्नान मैंने मुल्तवी कर दिया।"**[62] ध्यातव्य है कि इस उद्धरण में लेखक ने अरबी भाषा 'मुल्तवी' का भी प्रयोग किया है। 'आनंददायक काम खड़े-खड़े निबटा लिए जाते थे' वाक्य में लेखक रूमानी हो गया है।

**5.4 नाट्य एवं सिने रूपान्तरण में भाषा का प्रयोग**

यदि शिवमूर्ति की कहानियों और उपन्यासों को देखा जाय  तो कहा जा सकता है कि उन्होंने अपनी सभी कहानियों और उपन्यासों का ऐसा ताना-बाना बुना है कि वे शत-प्रतिशत नाटकीयता एवं सिनेमाई अंदाज़ में ही लिखे गए हैं। नाट्य-सिने रूपांतरणकारों को ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ती है। ज़्यादातर कहानियों का नाट्य रूपांतरण कहानियों की ही तर्ज पर रखा गया है। चाहे 'कसाईबाड़ा' कहानी का रूपांतरण हो, चाहे 'तिरिया चरित्तर' कहानी का रूपांतरण। उनके उपन्यासों पर नाट्य-सिने रूपांतरण तो हुआ है, लेकिन उसे दर्शकों तक पहुँचाने का प्रयास जारी है।

**निष्कर्ष**

शिवमूर्ति ने अपने कथा साहित्य में भाषा का प्रयोग पात्रों के अनुकूल, बिम्बों, प्रतीकों, लोकगीतों और मुहावरों-लोकोक्तियों की साज-सजा के साथ किया है। उनके द्वारा दिये गए शीर्षक बहुत ही छोटे और आकर्षक होते हैं, जिन्हें देखते ही रचना को पढ़ने का कौतूहल जाग उठता है। इन सबके बावजूद कथाकार शिवमूर्ति की भाषा सरल और सहज है, जिसमें हर जगह अवध क्षेत्र की मिट्टी की गंध गंध महसूस की जा सकती है। जहाँ तक शैली की बात है, उन्होंने वर्णनात्मक आत्माकथात्मक, संवाद, नाटकीय, चित्रात्मक, व्यंग्यात्मक, पूर्वदीप्ति, मिथक और विचारपरक शैलियों का प्रयोग किया है, लेकिन ज़्यादातर अपनी रचनाओं में उन्होंने आत्मकथात्मक शैली 'मैं' का प्रयोग किया है। इस तरह के प्रयोग से रचना की विश्वसनीयता और पठनीयता बढ़ी है।

शिवमूर्ति की कथाभाषा जिस गहराई से चरित्रों और प्रसंगों की रचना और संयोजन करती है, उसकी सफलता का रहस्य लेखक के उस कौशल में है जो सारी

सीखें उस कथा जमीन से लेता है, जो उसे रचना की ओर प्रवृत्त करती और अपने रोज़मर्रा बोलचाल के पदों और मुहावरों से सहयोग करती चलती है। उनका शिल्प लाजवाब है। शिवमूर्ति वाक्यों को सूई-धागे लगाकर एक चादर बुनते हैं। शापित किन्तु शाश्वत जीवन की जीवंत दास्तान होती है वह चादर। जैसी जिंदगी होती है, वैसा ही धागा होता है - कच्चा, पक्का, मटमैला, सुंदर, अधूरा, पूरा।

**संदर्भ सूची**


1. डॉ. जवाहर सिंह, हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्प विधि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1986, पृ. 1
2. सं. विजय गुप्त, मंच, जनवरी-मार्च, 2011, पृ. 238
3. शिवमूर्ति, तर्पण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ. 10
4. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991, पृ. 34
5. वही, पृ. 15
6. वही, पृ. 15
7. वही, पृ. 17
8. वही, पृ. 20-21
9. शिवमूर्ति, आखिरी छलांग, नोटनल.कोम, पृ. 3
10. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991, पृ. 13
11. वही, पृ. 52
12. वही, पृ.123
13. वही, पृ.41
14. शिवमूर्ति, आखिरी छलांग, नोटनल.कोम, पृ.86
15. शिवमूर्ति, तर्पण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ. 94

16. धीरेंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, भाग-1, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 1986, पृ. 53
17. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1521,पृ. 07
18. शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2017 पृ. 84
19. शिवमूर्ति, आखिरी छलांग, नोटनल.कोम, पृ. 76
20. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991, पृ.53
21. वही, पृ. 51
22. शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2017 पृ. 152
23. वही, पृ. 35
24. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991,पृ. 53
25. वही, पृ. 16
26. वही, पृ. 26
27. वही, पृ. 40
28. शिवमूर्ति, तर्पण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ. 14
29. वही, पृ. 17
30. वही, पृ. 52
31. सं. अरुण सिंह, 'इंडिया इनसाइड' साहित्य वार्षिकी, 2016, पृ.-153

32. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991,पृ. 164
33. वही पृ. 84
34.वही पृ. 101

35. शिवमूर्ति, तर्पण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ. 102
36. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995 ,पृ. 54
37. सं. रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, पाँचवा खंड, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1964, पृ. 193
38. डॉ. नामवर सिह, कहानी नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1982 पृ. 14-15
39. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991, पृ. 134
40. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995 ,पृ. 6
41. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991,पृ. 70
42. वही पृ. 124
43. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995 ,पृ. 06
44. शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2017 पृ. 93
45. वही, 29
46. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995 ,पृ. 26
47. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991, पृ. 91
48. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995 ,पृ. 103
49. शिवमूर्ति, तर्पण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ. 116
50. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991,पृ. 52
51. शिवमूर्ति, तर्पण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ. 103
52. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991,पृ. 61

53. शिवमूर्ति, आखिरी छलांग, नोटनल.कोम, पृ. 97

54. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991,पृ. 53

55. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995 ,पृ. 100

56. शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991,पृ. 20-21

57. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995 ,पृ. 09

58. वही पृ. 09

59. वही पृ. 09-10

60. शिवमूर्ति, सृजन का रसायन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014, पृ. 54

61. शिवमूर्ति, जैक लंडन के देश में ,यात्रा वृत्तांत, पृ. 06

62. शिवमूर्ति, लू शुन के देश में ,यात्रा वृत्तांत, पृ. 05

# उपसंहार

साहित्यकार जिस युग में जीता है, उस युग के अपने अच्छे-बुरे अनुभवों को अपने कथा साहित्य के जरिए अभिव्यक्त करता है। वास्तविकता यह है कि साहित्य समाज का दर्पण है और साहित्यकार उस दर्पण का निर्माता, जो अपने आस-पास के समाज और उस समाज के जीवन में झाँक कर ऐसे अनमोल मोती चुनता है, जिससे वह अपने साहित्य के माध्यम से समाज को वह दर्पण दिखाने का प्रयास करता है। चाहे वह ग्रामीण परिवेश से संबंधित समाज हो या फिर शहरी परिवेश से संबंधित। कहना गलत न होगा कि जिस माहौल में साहित्यकार पला-बढ़ा होता है, उसका सीधा असर उसके साहित्य पर पड़ता है। तत्पश्चात् यथार्थ की भूमि पर नयी सर्जना का जन्म होता है। शिवमूर्ति हिन्दी जगत में ऐसे ही कथाकार हैं। उनके सम्पूर्ण साहित्य में यदि अभिशप्त मानव जीवन का दस्तावेज़ है, तो उसे अभिशप्त बनाने वाली क्रूर, निर्मम, शोषक शक्तियों की चालबाजियाँ और साजिशें भी। दलित समाज, नारी जीवन और सांप्रदायिकता की समस्या को जिस सामर्थ्य और संवेदन के साथ शिवमूर्ति ने साहित्य में चित्रित किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। जब कोई साहित्यकार कम लिखकर ज्यादा चर्चा और बहसों में रहता है, तो उसके साहित्य का बार-बार विवेचन और विश्लेषण भी किया जाता है। कथाकार शिवमूर्ति के साथ भी यही हुआ है।

शिवमूर्ति मुख्यतः एक ग्रामीण कथाकार हैं। उनकी रचनाओं में उत्तर प्रदेश की आंचलिकता की अधिकता होने पर भी ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त भारत के गाँवों के यथार्थ चित्रण को उन्होंने पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। उनके कथा साहित्य के केंद्र में गाँव और ग्रामीण स्त्री है, इसके अलावा सांप्रदायिकता, जातिवाद

और किसान जीवन की त्रासदी को भी वे बड़ी मजबूती से स्वर देते हैं। अपने परिवेशगत स्थितियों के प्रति शिवमूर्ति हमेशा सजग रहते हैं, इसलिए उनका कथा साहित्य पाठकों के अन्तर्मन को झकझोरने का काम करता है। जिस परिवेश में लेखक पला-बढ़ा, उसे भोगा उसका सीधा प्रभाव उसके कथा-साहित्य पर पड़ा। शिवमूर्ति का साहित्य उनके भोगे हुए यथार्थ पर आधारित है। अतः उनके कथा-साहित्य का विवेचन-विश्लेषण करते हुए कहा जा सकता है कि उनके यहाँ सामाजिक परिधि की यथार्थता को अभिव्यक्ति मिलती है। उनके साहित्य में अवध क्षेत्र की मिट्टी की गंध और महक बखूबी अनुभव की जाती है। वे वंचितों के असली प्रवक्ता हैं। उनके व्यक्तित्व की विशेषता यह भी है कि वे एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में अपनी सेवा देते हैं। शिवमूर्ति अपने समय के सारे सवालों से टकराते हैं, जो स्वातंत्र्योत्तर भारत के बड़े सवालों में गिने जाते हैं। इन सवालों में सांप्रदायिकता, दलित, दलित स्त्री, किसान जीवन आदि बड़े सवाल हैं। इन सवालों में ‘स्त्री’ और ‘दलित’ पर विमर्शों का भी काफी ज़ोर रहा। शिवमूर्ति इन विमर्शों से कभी बँधे न होकर गहन संवेदना के धरातल पर अपने को प्रतिष्ठित करके लिखते हैं। इनके यहाँ स्त्री बचाव की नहीं, खबरदार की भाषा बोलती है। दलित स्त्री का यह तेवर युग परिवर्तन की सूचना देता है। दलित पुरुष पियारे तो ‘तर्पण’ का अर्थ ही बदल देते हैं। पियारे पुरखों की जड़ता, प्रतिक्रियाहीनता और सहनशीलता का ही तर्पण कर देते हैं। उनका समर्पण क्रांति का बिगुल है।

‘नयी कहानी’ के दौर में जो कथाकार लिख रहे थे, वे कहीं न कहीं व्यक्तित्व के कोने को उभार रहे थे, चाहे निर्मल वर्मा हों, मोहन राकेश हों, अथवा राजेंद्र यादव हों। इसमें कहीं न कहीं शेखर जोशी की कहानियाँ भी शामिल थीं। ये सभी कथाकार

समाज की बात करते हुए व्यक्तित्व को ज्यादा महत्व दे रहे थे। 'अकहानी' आंदोलन व्यक्तित्व के विरोध में खड़ा हुआ था। उसमें भी व्यक्तित्व का रूपांतरण ही हो सका था, चाहे रवीन्द्र कालिया हों, चाहे ज्ञानरंजन हों। ज्ञानरंजन की कहानी 'पिता' में समाज के संकेत तो हैं, लेकिन कहीं न कहीं व्यक्ति ही केंद्र में है। सत्तर के दशक में कथा का परिदृश्य फिर बदलता है। नक्सलवादियों का प्रभाव 1968-69 में दिखने लगा था। शिवमूर्ति इसी दौर में साहित्य पटल पर उभर कर सामने आए। शिवमूर्ति की कहानी 'तिरिया चरित्तर' एक स्त्री के व्यक्तित्व की कहानी है, लेकिन यह 'नयी कहानी' और 'अकहानी' के व्यक्तित्व से एकदम अलग किस्म की कहानी है। इस कहानी में जिस तरह से स्त्री को देखने की कोशिश की गयी है, उस तरह से कभी किसी ने नहीं देखा। नयी कहानी में भी स्त्री का संघर्ष है, लेकिन जो जद्दोजहद शिवमूर्ति की 'विमली' करती है, जो हर जगह 'मिसफिट' होती है, वह एक स्त्री के माध्यम से शिवमूर्ति लाते हैं।

साहित्यकार भी एक व्यक्ति है। जैसा उसका व्यक्तित्व होगा, वैसा ही उसका कृतित्व होगा। व्यक्तित्व का प्रभाव कृतित्व पर पड़ना अवश्यंभावी है। रचनाकार के व्यक्तित्व का निर्माण उसके परिवार और समाज के परिवेश से होता है। ऐसी स्थिति में रचानकार की कृतियों का अध्ययन करते समय उसके व्यक्तित्व का अध्ययन भी महत्वपूर्ण हो जाता है। व्यक्तित्व में रचनाकार का न केवल रूप, रंग, पोशाक आदि शामिल है, बल्कि उसकी सम्पूर्ण प्रकृति, उसके विचार, आदर्श एवं स्थायीभाव उसमें सम्मिलित हैं। शिवमूर्ति हिन्दी साहित्य में आठवें दशक के बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी रचनाकार हैं। उनका साहित्य प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ रेणु की परंपरा को आगे बढ़ाता है। उनके साहित्य को पढ़कर हम जान सकते हैं कि भारतीय गाँव में

आज दलित, दलित स्त्री और अल्पसंख्यक की वास्तविकता क्या है? शिवमूर्ति का साहित्य न केवल साहित्यिक दृष्टि से, बल्कि समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। उनके साहित्य में कल्पना के लिए कोई जगह नहीं है। शिवमूर्ति आप बीती और जग बीती के भेद को समाप्त कर देते हैं। वे अपने संघर्ष के अनुभवों से दृष्टि पाकर न जाने कितनों के दुखों का कारण तलाश करते हैं। नयी पीढ़ी के लिए निश्चित ही शिवमूर्ति का व्यक्तित्व प्रेरणदायी है।

एक संवेदनशील रचनाकार अपनी परिवेशगत परिस्थितियों से सदा बँधा रहता है। वह मनुष्य के भीतर बसी हुई अनुभूतियों को अपने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। कथाकार शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में अपने निजी अनुभवों एवं संघर्षों से मानवीय संवेदना को छूने का प्रयास किया है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था, पुरानी व नई पीढ़ी-संघर्ष, पितृसत्तात्मक समाज, टूटता दाम्पत्य जीवन, अवैध यौन संबंध, मूल्यहीन राजनीति, दलित संवेदना, नारी संवेदना जैसे तमाम ऐसे मुद्दे हैं, जिन्हें शिवमूर्ति ने 'कसाईबाड़ा', 'तिरिया चरित्तर', 'अकाल-दंड', 'केशर कस्तूरी', 'भरतनाट्यम्', 'सिरी उपमा जोग', 'कुच्ची का कानून' आदि अपनी कहानियों में उठाया है। वे अपनी सभी कहानियों में ठेठ और अक्खड़ गँवई  भूमिका निभाते हैं। समाज में हो रहे शोषण, अमानवीयता आदि के खिलाफ शिवमूर्ति अपने पात्रों को खड़ा करते हैं, विशेष रूप से ग्रामीण स्त्रियों की वे आवाज़ बनते हैं। वे स्त्री की सही पहचान समाज को देते हैं। शनिचरी, विमली, केशर, लालू की माई जैसी स्त्रियों की त्रासदी का बयान करते हुए शिवमूर्ति अपनी कोख की स्वतन्त्रता की माँग करती 'कुच्ची' से हमारा परिचय कराते हैं जो गाँव में रहकर भी आधुनिक सोच की वाहक बनती है। 'सुरजी' इतनी बहादुर है कि उसके प्रति कुदृष्टि रखने वाले बदचलन

सेक्रेटरी के शरीर का नाजुक हिस्सा ही वह अलग कर देती है। अन्य कथाकारों के पास ऐसे नायाब पात्रों का मिलना कठिन है। शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में स्त्री के हर रूप से हमारा परिचय कराया है। अपनी कहानियों में ग्रामीण जीवन, विशेषकर दलित स्त्रियों की समस्याओं का यथावत चित्रण करके उन्होंने पाठकों को उनके प्रति जागरूक कर उन्हें वास्तविकता से अवगत कराया है।

शिवमूर्ति की कहानियों का विवेचन-विश्लेषण करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि आज भी सामंती मानसिकता समाज में काम कर रही है। इस मानसिकता में पढ़े हुए और अनपढ़ सभी जी रहे हैं। चारित्रिक पतन सवर्णों के साथ-साथ दलित समाज में भी मौजूद है। उनके घर की बहू-बेटियाँ भी उन्हीं से सुरक्षित नहीं हैं। शिवमूर्ति की कहानियों में जो दृष्टि उभरकर सामने आई है, वह यह कि जब समस्याओं के समाधान के सभी दरवाजे बंद हो जाते हैं, तब ऐसी स्थिति में स्त्री ही कोई स्वीकार्य रास्ता निकालती है, चाहे वह केशर हो, कुच्ची हो, सुरजी हो या मामी हों। ये सभी बड़े सुलझे हुए पात्र हैं।

शिवमूर्ति का उपन्यास साहित्य भी विषय-वैविध्य लिए हुए है। 'त्रिशूल' उपन्यास में 'सांप्रदायिकता', 'तर्पण' उपन्यास में दलित समस्या और 'आखिरी छलांग' में 'किसान जीवन' को सामने रखकर शिवमूर्ति समाज के परिवर्तन की दिशा निर्धारित करते हैं। इस तरह शिवमूर्ति अपने उपन्यासों में समाज का वस्तुगत यथार्थ प्रस्तुत करते हैं। समाज की वास्तविकता का भयावह रूप मासूम महमूद के अराजक बन जाने के सफर पर खत्म होकर समाज में सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने वालों की पोल खोल देता है। दलित समाज में शिक्षा के कारण आई जागरूकता का परिचय भी शिवमूर्ति हमें देते हैं। सांप्रदायिकता, अगड़ी और पिछड़ी जाति के बीच का संघर्ष और

किसान का आत्महत्या के खिलाफ लगाया जाने वाला आखिरी छलांग लेखक के अपने भोगे हुए यथार्थ का परिचय देते हैं। शिवमूर्ति ने अपने तीनों उपन्यासों में पात्रों का नियोजन बड़ी कुशलता से किया है। उन्होंने पात्रों का चुनाव अपनी आस-पास की जिंदगी से किया है। वे कल्पना की उपज न होकर यथार्थ के धरातल से उपजे हैं। शास्त्री जी, महमूद, पाले, जनार्दन तिवारी, पियारे, भाईजी, धरमू पंडित, चंदर, रजपतिया, पहलवान ऐसे ही पात्र हैं। ये सभी शिवमूर्ति के उपन्यासों के अमर पात्र हैं, जो हमें आज के समाज की वास्तविकता बताते हैं।

सांप्रदायिकता को लेकर लेखक का स्पष्ट मत है कि यदि समाज को प्रगति के पथ पर ले जाना है तो सांप्रदायिकता के संकीर्ण दायरे से बाहर निकलकर परस्पर सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाना होगा। समाज में वर्णवादी व्यवस्था की आवश्यकता किसी जमाने में रही होगी, लेकिन आज यह व्यवस्था अपनी अर्थवत्ता खो चुकी है। लेखक का मानना है कि सवर्णों को दलितों के सम्मान की भी चिंता करनी होगी। लेखक किसानों के विषय में कहता है कि अब किसान आत्महत्या नहीं, अपनी समस्याओं से लड़ने की क्षमता रखता है। उसमें अनंत संभावनाएँ हैं।

शिवमूर्ति कथा साहित्य के अलावा अपने कथेतर साहित्य में एक अलग अंदाज़ में हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं। उनका संस्मरण ‘सृजन का रसायन’ उनकी रचना प्रक्रिया के साथ-साथ उनके जीवन से जुड़े अनेक लोगों से हमारा साक्षात्कार कराता है। ये लोग लेखक के जीवन के प्रेरक तत्व हैं। इन लोगों का अस्तित्व लेखक के व्यक्तित्व-निर्माण की संजीवनी है, जो समय-समय पर उसकी मूर्छा को जिंदा करती है। ये लोग हैं - जियावान दर्जी, डाकू नरेश, धन्नू बाबा, संतोषी काका और जंगू आदि। ‘सृजन का रसायन’ संस्मरण में लेखक ने अपने माता-पिता, परिवार,

रिश्तेदार और गाढ़े दिनों में काम आने वाली मित्र-सहचरी शिवकुमारी आदि के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञपित किया है। लेखक का मानना है कि उसके आसपास के लोग और पारिवारिक परिस्थितियाँ ही उसे लिखने के लिए प्रेरित कीं। इसमें उनकी पत्नी सरिता जी का विशेष योगदान रहा। अपने यात्रा वृतांतो में लेखक अपने प्रिय लेखक 'जैक लंडन' और 'लू शुन' के विषय में बताता है कि अमेरिका और चीन में किस प्रकार अपने साहित्यकारों का सम्मान किया जाता है। काश, वैसा ही अपने देश में होता। शिवमूर्ति की कहानियों के नाट्य-सिने रूपान्तरण में यह देखा गया है कि उनकी कहानियों के संवाद, पात्र, परिवेश एवं भाषा इतने चुस्त-दुरुस्त हैं कि रूपांतरणकारों और पटकथा लेखकों को कुछ खास करना नहीं पड़ा है। हाँ, अभी उनके उपन्यासों का नाट्य-सिने रूपांतरण संभव नहीं हो सका है। इस तरह शिवमूर्ति का कथेतर साहित्य भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से सर्वोत्तम है।

शिवमूर्ति भाषा और शैली के अद्भुत शिल्पी हैं। उनकी भाषा में सामान्य बोलचाल के शब्द, मुहावरे, कहावतें, लोकोक्तियाँ, बिम्ब, प्रतीक, गीत आदि के प्रयोग से हर जगह अवध क्षेत्र की मिट्टी की गंध महसूस की जाती है। यथार्थ को बहुत छोटे-छोटे वाक्यों और बहुत छोटे-छोटे क्षणों में पकड़ने की उनकी क्षमता अपने-आपमें अनूठी है। उनकी रचनाओं में पशु-पक्षी की उपस्थिति इतनी मायने रखती है कि उनके भी नाम होते हैं और उनके स्वभाव और आचरण की तुलना भाषा के माध्यम से मनुष्य के कपटपूर्ण व्यवहार से की गयी है। वैसे तो शिवमूर्ति ने अपने कथा साहित्य में अनेक शैलियों का प्रयोग किया है, किंतु ज्यादातर उन्होंने आत्मकथात्मक शैली 'मैं' का प्रयोग किया है, जिससे उनकी रचना की विश्वसनीयता और पठनीयता बढ़ी है। यहाँ इतना कहना जरुरी है कि भाषा और शैली पर शिवमूर्ति

की गहरी पकड़ है। स्वानुभूति से निकले उनके शब्द हमेशा वास्तविकता का दामन थामे रहते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शिवमूर्ति का रचना काल काफी दीर्घ है। सन् 1968 में प्रकाशित उनकी पहली कहानी 'पानफूल' से लेकर आज तक वे निरंतर लिख रहे हैं। इस दीर्घ रचनाकाल में शिवमूर्ति की रचनाओं की सूची  अत्यंत संक्षिप्त है। उनके लिए संख्या नहीं, विशिष्ट लेखन मायने रखता है। कम लिखकर ज्यादा बहसों में रहने वाले शिवमूर्ति अपने समय के अकेले कथाकार हैं। उनकी यही विशेषता उन्हें अपने समाकालीनों से विशिष्ट बनाती है। शिवमूर्ति का रचना संसार साहित्य की विविध विधाओं में फैला हुआ है। उनका साहित्य किसी वाद या विशेष विमर्श में बँधा न होकर स्वतंत्र रूप से शोषितों, पीड़ितों और वंचितों के हक़ में खड़ा होता है। उन्हें अपने संघर्ष में आगे बढ़ने के लिए शक्ति देता है और उनका पथ प्रदर्शन करता है। शिवमूर्ति के रचना संसार का हर दृष्टिकोण से विवेचन-विश्लेषण करना मेरे शोध प्रबंध की प्रमुख उपलब्धि है।

शोध एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसे किसी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। शोधकार्य के विस्तार को देखते हुए शिवमूर्ति की कहानियों पर बने धारावाहिक एवं वृत्तचित्र मेरे शोध की सीमा में नहीं आ सके हैं। अतः इन्हें विषय के साथ जोड़कर अलग से शोध-कार्य किया जा सकता है।

# संदर्भ ग्रंथ-सूची

## आधार ग्रंथ-सूची


**1.** शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, कहानी संग्रह राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991

**2.** शिवमूर्ति, कुच्ची का कानून, कहानी संग्रह राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2017

3. शिवमूर्ति, त्रिशूल, उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995

4. शिवमूर्ति, तर्पण, उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004

**5.** शिवमूर्ति, आखिरी छलांग, उपन्यास, नया ज्ञानोदय, जनवरी, 2008

**6.** शिवमूर्ति, सृजन का रसायन, संस्स्मरण, राजकमल प्रकाशन, 2014

7. शिवमूर्ति, जैक लंडन के देश में, यात्रा वृत्तांत, shivmurty,blogspot.com 2012

8. शिवमूर्ति, लू शुन के देश में, यात्रा वृत्तांत, shivmurty,blogspot.com 2015

9. शिवमूर्ति, कसाईबाड़ा, नाट्यरूपांतरण, पराग प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984

10. शिवमूर्ति, मेरे साक्षात्कार सीरीज़, “मेरे साक्षात्कार”, किताब घर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013,

## सहायक ग्रंथ सूची

1. प्रो कमला प्रसाद, स्त्री: मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009,
2. डॉ. गंभीर एस. के. साठोत्तरी हिन्दी कविता में राजनीतिक चेतना, 2009
3. डॉ. जवाहर सिंह, हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्प विधि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1986
4. डॉ. नामवर सिंह, कहानी नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1982 पृ. 14-15
5. डॉ. पुष्पपाल सिंह, समकालीन कहानी: युगबोध का संदर्भ, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1977
6. फणीश्वरनाथ रेणु का कथा साहित्य: समाज शास्त्रीय विश्लेषण, https://shodhganga.infibnet.ac.in/handle/10603/1311
7. डॉ. माधवी जाधव, मन्नू भण्डारी के साहित्य में चित्रित समस्यायें, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012
8. विभूति नारायण राय, सांप्रदायिक दंगे और भारतीय पुलिस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004,

9. डॉ. सच्चिदानंद राय, हिन्दी उपन्यास: सांस्कृतिक एवं मानवतावादी चेतना, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, 1979,
10. सफ़दर हाश्मी, मोटेरम का सत्याग्रह - प्रेमचंद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली,1988

## शब्द कोश

1. सं. देवेंद्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, हिन्दी साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 1987
2. सं. डॉ. नगेंद्र, मानविकी परिभाषा कोश, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली 1968
3. सं. रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, पाँचवाँ खंड, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1964

## पत्र-पत्रिकाएँ

**1.** सं. अरुण सिंह, 'इंडिया इनसाइड' साहित्य वार्षिकी, 2016
**2.** सं. किशन कालजयी, 'संवेद'-73-75 फरवरी-अप्रैल, 2014
**3.** सं. विजय गुप्त, 'मंच' जनवरी-मार्च, 2011
**4.** सं. विजय राय, 'लमही' अक्टूबर-दिसंबर, 2012

# वेबसाइट्स


1. **shivmurti,blogspot.com**

2.https://shodhganga.infibnet.ac.in/handle/10603/13161

3. http://ppup.ac.in